

रसखान : काव्य तथा भक्ति भावना

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच०डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

माजिदा खातून

मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़

१९६४



T445

T445



प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल को उसका स्वर्ण युग कहा जाता है, उसमें भी विशेष महत्वपूर्ण ^{समय} तृगुण भक्ति-काव्य का है। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि मुस्लिम शासन के उस युग में हिन्दुओं के समान ही मुसलमान कवियों ने भी हिन्दी में प्रचुर भक्ति-साहित्य का निर्माण किया। तुफ़ी मुसलमान कवियों की तुलना में रसखान जैसे भक्त कवि के द्वारा हिन्दू धर्म में स्वीकृत अवतार कृष्ण की भक्ति और लीला का वर्णन निःसंदेह अध्यतम्य है। काव्य की दृष्टि से भी रसखान की कविता को हिन्दी के इतिहास-कारों और बालीषकों ने मुक्त कंठ से सराहा है। उनकी कविताओं की लोक-प्रियता निर्विवाद है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी उनकी रचनाओं का व्यवस्थित अनुशीलन अपेक्षित है।

जब तक जैक विद्वानों ने रसखान, उनके काव्य तथा उनकी भक्ति भावना पर विचार व्यक्त किये हैं जिनमें बाचार्य शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० रामकुमार वर्मा का हिन्दी साहित्य का बालीषात्मक इतिहास, बाचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य वादि प्रसिद्ध हैं। भवानीशंकर याज्ञिक जी के पीछे जमिनन्दन सम्बन्धी लेख, परशुराम चतुर्वेदी जी के मध्यकालीन धर्म साधना में संगृहीत रसखान सम्बन्धी लेख तथा विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित रसखान सम्बन्धी लेखों से, 'रसखान शतक', 'रसखान पदावली', 'रसखान रत्नावली', 'रसखान ग्रंथावली' तथा 'रसखान और घनानंद' वादि काव्य संग्रहों की भूमिकाओं से 'रसखान और उनका काव्य', 'रसखान जीवन और कृतित्व' वादि लघुकाय पुस्तकों से रसखान पर कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है।

उपर्युक्त रचनाओं तथा संग्रहों की भूमिकाओं में रसखान के विषय में जो कुछ लिखा गया है वह प्रारम्भिक प्रयास मात्र है। उसमें रसखान विषयक विभिन्न प्रमाणों की सम्यक ज्ञानबीन नहीं की गई है, रसखान के जीवनवृत्त का प्रमाण सम्मत व्यवस्थित निरूपण नहीं है, उनके काव्य की विशेषताओं का तत्वाभिव्यक्ति अनुशीलन नहीं है, और रसखान की भक्ति भावना का सूक्ष्मनिर्देश पूर्वक विवेचन नहीं है। अतएव इस बात की नितान्त आवश्यकता बनी हुई थी कि

हिन्दी साहित्य गगन के इस जाज्वल्यमान नक्षत्र के काव्य और भक्ति भावना का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। प्रस्तुत अनुसंधात्री ने इस शोध-प्रबन्ध में उस कभाव की पूर्ति करने का विनम्र प्रयास किया है।

यह शोधप्रबन्ध आठ अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में विभिन्न साध्यों के आधार पर रसज्ञान का प्रामाणिक जीवनवृत्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। द्वितीय अध्याय में रसज्ञान की प्रामाणिक रचनाओं का विवरण है। तृतीय, चतुर्थ और पंचम अध्यायों में रसज्ञान के काव्य सौन्दर्य की व्यापक विवेचना की गई है। षष्ठ अध्याय में साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक दृष्टियों से रसज्ञान की भाषा का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सप्तम अध्याय का प्रतिपाद है रसज्ञान की भक्ति भावना और दर्शन। अष्टम अध्याय में उपसंहार है जिसमें रसज्ञान के प्रभाव और योगदान का मूल्यांकन किया गया है। प्रबन्ध के अन्त में दो अनुबन्ध हैं। पहले अनुबन्ध में रसज्ञान की अप्रकाशित रचनाएं उद्धृत की गयी हैं जो रसज्ञान-विषयक अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी हैं। दूसरे अनुबन्ध में सहायक ग्रन्थों की सूची है।

यह शोधप्रबन्ध वादरणीय श्री शिवशंकर शर्मा 'राकेश' की देख-रेख में प्रणीत हुआ है। मैं हृदय से उनकी कृतज्ञ हूँ। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हिन्दी के वाचार्य और अध्यापक डा० हरवंशलाल शर्मा के प्रति भी मैं विशेष आभारी हूँ जिनके स्नेह और पांडित्यपूर्ण पथप्रदर्शन से यह शोधप्रबन्ध सफलतापूर्वक निष्पन्न हुआ है।

सकेत

पृ० २० = सुजान-रसज्ञान

पृ० वा० = प्रेम-वाटिका

माजिका झालूम

‘रसज्ञान’-काव्य तथा भक्ति भावना

(रूपरेखा)

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय -

रसज्ञान का जीवन-वृत्त
 रसज्ञान के उन्मूल्य में - बाह्यसाध्य
 वन्तः साध्य
 रसज्ञान का जन्म संवत्
 रसज्ञान का जन्म स्थान,
 रसज्ञान का नाम तथा उपनाम,
 बाल्य काल और शिक्षा,
 मयुरा वागमन,
 जीवन घटनाएं,
 मृत्यु

द्वितीय अध्याय -

रसज्ञान की रचनाएं
 १-रसज्ञान-हृत्तर कवियों का काव्य-संकलन
 रसज्ञान-दोहावली
 रसज्ञान-कवितावली
 २-संदिग्ध रचनाएं
 वष्टयाम
 दान ठीला
 वन्य पद
 याज्ञिक संग्रह
 ३-विभिन्न ग्रन्थों में संकलित रसज्ञान की रचनाएं
 १- रसज्ञान-शतक गौस्वामी किशोरीलाल जी

- २- रसज्ञान-पदावली प्रमुदत ब्रह्मचारी
 ३- रसज्ञान-रत्नावली महाकवि किंकर
 ४- रसज्ञान और उनका काव्य चन्द्रशेखर पांडे
 ५- रसज्ञान का वमर काव्य दुर्गाशंकर मिश्र
 ६- रसज्ञान-ग्रन्थावली पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
 ७- रसज्ञान जीवन और कृतित्व देवेन्द्र प्रताप उपाध्याय
- सौज रिपोर्ट स्व रसज्ञान की रकारें -

- १- बारह्वां त्रैमासिक विवरण
 २- पन्द्रह्वां ,, ,,
 ३- चौलह्वां ,, ,,
 ४- बठारह्वां ,, ,,

तृतीय अध्याय -

रसज्ञान के काव्य का वर्ण्य विषय और उसका वर्गीकरण

(खंड क) कृष्ण लीलारं -

- | | |
|----------------|----------------|
| १- बाल लीला | २- गोचारण लीला |
| ३- चीरहरण लीला | ४- पनघट लीला |
| ५- रास लीला | ६- कुंज लीला |
| ७- दान लीला | ८- मुरलीवादन |

(खंड क) अन्य वर्णन -

- | | |
|------------------|------------------|
| ९- युगल-जोड़ी | १०- हौली वर्णन |
| ११- वसंत वर्णन | १२- दिवाली वर्णन |
| १३- कुवल्या-वध | १४- भ्रमर गीत |
| १५- मृग हरि शंकर | १६- शिव स्तुति |
| १७- गंगा गरिमा | १८- अष्टमय |

प्रेम निरूपण तथा भक्ति निरूपण -

(खंड क) स्पर्शन -

काव्य में स्पर्शन की परम्परा

नायक नायिका का विशिष्ट स्थान
 नायिका के रूप वर्णन की परम्परा
 रसज्ञान द्वारा नायिका का चित्रण
 रसज्ञान द्वारा नायक (कृष्ण) का रूप चित्रण
 कृष्ण के रूप का चित्रण
 नख शिख निरूपण
 नेत्र, विलसाण चितवन, मुकुट निरूपण, पै मुल, केश, वस्त्र,
 बाभूषण, कुंडल, माला कुंडल, मोर पखा, राज सज्जा, कृष्ण
 के कर्ण-कलत्र, शृंगारी चैष्टारं, मुत्कान-निरूपण, बांसुरी

चतुर्थ अध्याय -

रसज्ञान के काव्य का भाव पदा

रस व्यंजना -

(क) रस के वर्ग -

बालम्बन निरूपण, नायक, नायिका वर्णन, नायिका भेद,
 परकीया, परकीया नायिका के भेद, ऊढ़ा, मुदिता, वक्ता-
 विदग्धा, क्रिया विदग्धा, वन्य संभोग दुःखिता, मानवती
 नायिका, वागत्पत्निका, प्रीतिपत्निका, मुग्धा, उदीपन-
 विभाव, संचारी भाव, अनुभाव, स्थायीभाव -

रति, वात्सल्य रति, भक्ति, निर्वेद, हास, उत्साह

सर्व चित्रण अन्तःकृति निरूपण

(ख) रस के भेद -

शृंगार रस

शृंगार रस के भेद

संयोग शृंगार - संभोग शृंगार

वियोग शृंगार ---

पूर्व राग, मान, प्रवास

विरह दशारं -

स्मृति, गुण-कथन, प्रलाप, प्रमरगीत, प्रमरगीत काव्य की परंपरा और रसज्ञान

वात्सल्य रस, भक्ति रस, शान्त रस

भाव चित्रण (वन्तर्वृत्ति निरूपण)

(ग) प्रकृति चित्रण -

प्रकृति ^{पृष्ठभूमि} के रूप में , प्रकृति उद्दीपन रूप में , प्रकृति वर्णन रूप में , रसज्ञान का कतु वर्णन

पंचम अध्याय -

रसज्ञान के काव्य का कला पक्ष

काव्य रूप - प्रबन्ध काव्य, मुक्तक, गीत

रसज्ञान द्वारा प्रयुक्त मुक्तक, शृंगार मुक्तक, स्वतन्त्र मुक्तक

शब्द-विधान -

रसज्ञान की ^{उद्देश} योजना

तवैया - दुमिल, मदिरा, मत्तार्यद ,

किरीट

घनाक्षरी, दोहा, शीरठा, धमार,

चरंग राग

वर्णन-योजना

वर्णनार्थ का वर्गीकरण, साम्यमूलक वर्णन, विरोधमूलक

वर्णन, शृंगारमूलक वर्णन, वसंतमूलक, गूढार्थप्रतीतिमूलक

शब्दवर्णन -

अनुप्रास, द्वैकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, यमक, समं यमक,

असं यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, ध्वन्यर्थव्यंजना

वर्णनार्थ -

साम्यमूलक, उपमा, रूपक, चरंग रूपक, निरंग रूपक,

परंपरित रूपक, प्रतीप, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, वृत्तिव्योक्ति

व्यतिरेक, पर्याय

विरोधमूलक, विरोधाभास, अवंगति, एकावली

बन्य संसर्ग मूलक अलंकार , उदाहरण

बन्य अलंकार : अनुमान, लौकौक्ति, मानवीकरण ।

~~छन्दः~~ ~~कौञ्च~~

षष्ठ अध्याय - रसज्ञान की भाषा

ठ(क) साहित्यिक विवेचन -

शब्द शक्ति- चमत्कार

वर्णिता, लक्षणा, व्यंजना

रसज्ञान की भाषा में मुहावरे

उक्ति-वैचित्र्य और वक्रोक्ति , स्वाभाविकता एवं

चित्रात्मकता, धारावाहिकता, नादात्मकता,

संघटना (गुणाचित शब्द-योजना, गुण वृत्ति)

(ख) भाषावैज्ञानिक विवेचन

रसज्ञान के काव्य में स्वरों के सानुनासिक स्वर,
व्यंजन

शब्द समूह

तत्सम, तद्भव, कृष्ण के लिए प्रयुक्त शब्द, देशी, विदेशी
शब्दावली

विभिन्न बोलियाँ या देशी भाषाओं के शब्द

सप्तम अध्याय -

भक्ति-भावना और दर्शन

प्रस्तावना-

प्रस्तावना, भक्ति का स्वरूप, भक्ति की मालिनी, प्रेमाभक्ति,

प्रेमाभक्ति की विशेषताएं, रसज्ञान द्वारा निरूपण, भक्ति

के प्रकार, ग्यारह आत्मवक्तियाँ, पंचधा भक्ति, नवधा भक्ति,

मुक्ति और भक्ति के साधन, मुख्य प्रतिपाद्य : भगवान् कृष्ण

और उनकी लीला -

रसज्ञान का दर्शन

रसज्ञान और सुफी सिद्धान्त , वाक् की चार अवस्थाएं,
फनाफिलसैस, वाचना की चार अवस्थाएं , प्रेम (इश्क)

अष्टम अध्याय -

उपसंहार

रसज्ञान के कवित्व का मूल्यांकन

परवर्ती कवियों पर उसका प्रभाव

रसज्ञान और कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय

स्वच्छन्द काव्य द्वारा, रसज्ञान और स्वच्छन्द काव्य द्वारा

रसज्ञान का स्थान

अनुबन्ध

१- परिशिष्ट - रसज्ञान की अप्रकाशित रचनाएं

२- ग्रन्थ-सूची ।

प्रथम अध्याय

रसखान का जीवन वृत्त

सांसारिक रेश्वर्य को अवहेलना की दृष्टि से देखने वाले कवि एवं साहित्यकार यश एवं वर्थलोलुपता से दूर रह कर 'स्वान्तः सुखाय' के सिद्ध ही कविता कामिनी को सुसज्जित करते रहे हैं। सैयद आहीम रसखान को भी इसका अपवाद नहीं कहा जा सकता। उनका जीवन-वृत्त भी तमसा-वृत्त नहीं रहा। इसलिए उनके विषय में दृढ़तापूर्वक कुछ कहना कठिन है। केवल प्रचलित जनश्रुतियों एवं किंवदन्तियों के आधार पर उनके जीवन के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। यद्यपि इस महाकवि के विषय में कतिपय शोटे शोटे ग्रन्थों की रचना हो चुकी है, किन्तु दृढ़तापूर्वक 'हृदमित्थम निरूपणं' कठिन है। वास्तव में रसखान की जन्मतिथि और जीवन-वृत्त सदेहास्पद हैं, किन्तु उनके अस्तित्व को अस्वीकार करने की जरा भी गुंजायिश नहीं है।

रसखान के जीवन-वृत्त को नियमित करने के लिए हम उपलब्ध समसामयिक एवं परवर्ती सामग्री पर विचार करेंगे। रसखान की जीवन वृत्त सम्बन्धी सामग्री दो रूपों में प्राप्त होती है।

१- बाह्यसाक्ष्य के रूप में।

२- अन्तः साक्ष्य के रूप में।

बाह्य साक्ष्य के रूप में अधिगत सामग्री दो प्रकार की है - १. रसखान के जीवन से सम्बद्ध वे घटनाएँ जिनका उल्लेख समसामयिक तथा परवर्ती प्राचीन लेखकों एवं कवियों ने अपनी कृतियों में किया है। इसके अन्तर्गत साम्प्रदायिक साहित्य, वार्ता साहित्य, परवर्ती कवियों तथा भक्तों द्वारा किये गये उल्लेख एवं तत्कालीन इतिहास ग्रन्थ आते हैं। २. रसखान सम्बन्धी आधुनिक सामग्री जो हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों और आलोचनात्मक प्रबन्धों के अन्तर्गत मिलती है।

अन्तः साक्ष्य के अन्तर्गत रसखान के आत्म विषयक-कथन आते हैं, जिनके दर्शन उनके पद्यों में यत्र-तत्र होते हैं। प्रायः कवि की रचनाओं में उसके जीवन की

अनुभूतियां भांगती हुई दृष्टिगोचर होती हैं , यह सत्य ही है ।

रसखान के सम्बन्ध में बाह्य साक्ष्य

बाह्य साक्ष्य के रूप में प्राप्त सबसे महत्वपूर्ण सामग्री वार्ता साहित्य है। उससे रसखान की जीवन घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है ।

दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता -

वार्ता साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता है । इस वार्ता के अनुसार रसखान दिल्ली में रहते थे । एक बनिये के पुत्र के प्रति वे आसक्त थे ।^१ इस आसक्ति की चर्चा होने लगी । कुछ वैष्णवों ने रसखान से कहा कि यदि इतना प्रेम तुम भगवान् से करो तो उद्धार हो जाय । रसखान ने पूछा कि भगवान् कहाँ हैं ? वैष्णवों ने उनको कृष्ण भगवान् का एक चित्र दे दिया ।^२ रसखान चित्र को लेकर भगवान् की तलाश में ब्रज पहुँचे । वनेक मन्दिरों में दर्शन करने के उपरान्त अपने आराध्य की लीज में ये गोविन्द कुंड पर जा बैठे , और श्रीनाथ जी के मन्दिर को टकटकी लगा कर देखने लगे । आरती के पश्चात् श्रीनाथ जी इनका ध्यान करके द्रवीभूत हो गये^३ और चित्र वाला स्वरूप

१. सौ वह रसखान दिल्ली में रहत हत्तौ । सौ वह एक साङ्गार के बेटा के ऊपर बौहीत आसक्त भयो । सौ वाकी अहर्निश देखे । और वह झोहरा कछु लाती तो वाकी जुंठनि लेई और पानी पीवतौ तो हू वाकी फूटो पीवे ।

वार्ता २१६ दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता

२. तब वा वैष्णवन की पाग में श्रीनाथ जी को चित्र हत्तौ । - - - सौ काढ़ि के रसखान को दिखायो तब चित्र देखत ही रसखान को मन फिरि गयो ।

वार्ता २१६ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

३. तब श्रीनाथ जी मन में विचारे , जो रसखान की तो कछु देहानुसंधान है नाहीं । - - - यह दत्ता देखि के श्रीनाथ जी के मन में दया आई ।

वार्ता २१६ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

बना कर दर्शन देने जाये ।^६ रसखान उन्हें अपना महबूब जान कर पकड़ने दौड़े ।^७ श्रीनाथ जी अन्तर्धान होकर गोकुल पधारे और श्री गौसाई जी को सम्पूर्ण घटना सुनाई । उसके बाद श्री गौसाई जी ने रसखान को दर्शन दिये और अपने मन्दिरमें बुलवा लिया ।^८ रसखान दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुए । वहीं रह कर लीला गान करने लगे । इस वार्ता के अनुसार उन्हें गोपी भाव की सिद्धि हुई ।

इस वार्ता से यह पता चलता है कि रसखान का सम्बन्ध स्वामी विट्ठलनाथ जी से रहा । वार्ता में वर्णित कुछ घटनाओं के उक्त रसखान के काव्य में भी मिलते हैं । रसखान ने भी प्रेमवाटिका में शिव दर्शन^९ की चर्चा की है । सुजान रसखान में लीला वर्णन भी मिलता है । वार्ता के अनुसार ये लीला के दर्शन^{१०} करके ही कविच, तैय्यों और दोहों की रचना करते थे और इन्हें गोपी भाव भी सिद्ध हुआ था ।

१. जैसी सिंगार वा चित्र में हती तैसीई वस्त्र आभूषण अपने श्री हस्त में धारण किये । गाय ग्वाह सब साथ लै के आप पधारे ।

वार्ता २१८, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

२. जो ऐसी निरधार करि के श्रीनाथ जी को पकरन दौरयो ।

वार्ता २१८, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

३. तब श्री गुसाई जी ने कृपा करिके वाकी नाम सुनायो पाये स्वास जो कही, जो इनको मंदिर में ले जाव्यो । तब रसखान ने श्रीनाथ जी के दर्शन किये, जो बहुत प्रसन्न भयो ।

वार्ता २१८, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

४. प्रेम वाटिका, दोहा नं० ५०

५. जो जहां जा लीला के दर्शन करते तहां ता लीला के कविच दोहा, चौपाई तैय्या करते । जो इनकी गोपी भाव सिद्ध हुआ ।

वार्ता २१८, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

नव भक्त माल

इसके रचयिता श्री राधाचरण गोस्वामी ने रसखान के सम्बन्ध में लिखा है ।^१ इस वर्णन में तथा 'दो जी बावन वैष्णव' की वार्ता में मुख्य अन्तर यही है कि नव भक्त माल के कर्ता के अनुसार दर्शन न पाने पर व्यंग्य रचना कर रसखान ने भगवान से कुछ उपालम्भ-पूर्ण वचन कहे । भक्तमाल की टीका के अनुसार रहीम ने ऐसी ही परिस्थिति में व्यंग्यपूर्ण दोहे रचे थे । अनुमानतः गोस्वामी जी ने यही बात रसखान के सम्बन्ध में भी कह डाली ।

उचराई भक्तमाल

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी रसखान की कविता के अत्यन्त प्रेमी थे । 'उचराई भक्तमाल' में आपने अपने एक हृष्य अंश में अन्य मुसलमान भक्तों के साथ रसखान का केवल नाम ही गिनाया है, कोई विशेष परिचय नहीं दिया ।^२

१. कवि कौन मितार्ई कह सके श्रीनाथ साथ रसखान की ।

दिल्ली नगर निवास बादशा वंश विभाकर ।

चित्र देख मन हरी परो मन प्रेम तुषाकर ।

श्री गोवर्धन वाय जौ दर्शन नहिं पाय ।

टेढ़े वैढ़े वचन रचन निर्भय है गाय ।

तब आप वाय सुमनाय कर शुरुषा महमान की ।

कवि कौन मितार्ई कह सके श्रीनाथ साथ रसखान की । नव भक्तमाल, पृ० ७

२. इन मुसलमान हरिजन पै कौटिन हिन्दुन वारियै ।

कलीखान पठान सुता सह ब्रज रखवारे ।

सेत नबी रसखान मीर अहमद हरि प्यारे ।

निरमल दास कबीर ताज सां बेगम वारी ।

तानसेन कृष्णदास विजापुर नृपति डुलारी ।

पिर जादि बीबी रास्तो पद रज नित तिर धारियै ।

इन मुसलमान हरिजन पै कौटिन हिन्दुन वारियै ॥

उचराई भक्तमाल, पृ० ३१, संग विलास प्रेस बांकीपुर ।

उँई मक्तमाल

बम्बाला निवासी तुलसीराम जी ने 'मक्तमाल' तथा उसकी 'प्रदीपन' की सं० १६१६ में रचना की और उसका हिन्दी रूपान्तर संवत् १६२३ में 'मक्त कल्पद्रुम' (मक्तमाल) के नाम से किया गया। उसमें रखतान सम्बन्धी कथा में कंठीमाल के प्रसंग के साथ लिखा है कि वे मुसलमान थे। अपने पीर के साथ वृंदावन में जा पहुँचे और वहीं श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त होते ही वहीं रह गए। अपने पीर के समझाने बुझाने पर भी ब्रज नहीं छोड़ा।^४

१. उँई मक्तमाल , पृ० १४६,

رس كهان جي ٻرم بهگت بهگوت ڪرے هوے ٻهليے مسلمان ٿھے بهوض طواف ڪمبه
جو بند راہن مین بهونجیے ٿھلیے جنھن نیر ٿوابن نیر ظھو ڪیا یعنی برج چند مہاراج
ڪرے اس سروپ سوچا یمان برج سندرسے ھو ڪٽ ڪر یون مالا ٻھنیے ھوئے زیورات ھوایک
عضو مین ہراجمان پھول بجایجا ڪٿیے ھوئے لباس زرق برق کا سوھت ایک ھائے مین
مولیٰ اور دوسرے ھائے مین چھڑی ڪٿی چرائیے ھین۔ درشن ھوئے بموجب دیکھیے اس
روپ مادھری اور دلہر باد ڪرے ڪچھ حالات ڀورھی ھوئی۔ اسروپ مین محو ھو ڪو
پر ھوئرمین پر ڪر پڑیے مرشد ھمراہ ٿھا۔ غش سمجھ ڪر درپرے علاج ھوایا ڪہ ڪہ ٿھن
ڪھول رسڪھان جي نیر ڪہان ڪو اس وقت سب علوم و مطالب ٿا ھرو باطن شاعری سے
ٻھرے ھو ڪیا ٿھا۔ ڪبت مین اس منور ھوئی کا جو دیکھی ٿھی بیان ڪرے آخر مین ڪہا۔ ڪہ
آٽڪھن ڪیا ڪھولون۔ وہ ھوئی دل مین پس ڪٿی ھے۔ مرشد نیر ڪہا ڪہ ڪمبه ڪو چلو۔
رسڪھان نیر ڪٿھ جواب دیا ڪہ ڪہا ڪمبه اور ڪہا قبلہ۔ جو ھے سب بیان موجود ھے۔ اور
اب مین ڪہا جاتا ھون۔ برج کا ھو ڪا ھون اور ایک ڪبت مین بیان ڪہا ڪہ اگر آدمی جسم
ملیے کا ٿو برج ڪرے ڪوال ڪوال لوکون مین رھونگا۔ اور اگر ٿو ٿو پشون ٿو ٿونند یا ڪرے ڪٿو ڪٿون
مین اور اگر سنگ ھو ٿو ڪری راج کا اور اگر پرند ھو ٿو برج ڪرے درختون کا مرشد ڪو ان ڪلمات
سے تعجب ھو اور چاھا ڪہ رتھ ٻوڙال ڪر زبردستی لیر جاوے۔ رسڪھان جي ٻھاگ ڪرین
ھین پاچا چھیرے اور پرند اہن مین پاس ڪرے ھزار ھا ڪبت بند راہن ڪرے وصف ٻھاو و سوھا پر پر ٿھم
ڪرے تصنیف ڪرے بھینٹ ڪیرے اور لباس و شنوی دھارن ڪہا۔ مالا ڪٿو ٻھنا ڪرے ٿھے ڪس نیر
ٻوچھا ڪہ ایک دو مالا ٻھی کافی ھین اس قدر ڪثرت کی ڪہ ضرورت ھے جواب دیا ڪہ
مالا اشخاص مثل سنگ کو ٻھی سنسار سندرسے پار اٿار دیتی ھے۔ سو جو شخص
مثل چھوٽے پنھر ڪرے ھے اسکو ٿو ایک دو مالا کافی ھے اور مین مثل سنگ ڪٿو ڪلان
ڪرے ھون مجھکو بہت مالا رکھنا واجب ھے۔

मूल गीताई चरित

संवत् १६८७ में रचित बाबा वेणीमाधव दास कृत मूल गुसाई चरित में भी रसखान का उल्लेख मिलता है। उसमें लिखा है कि 'रामचरितमानस' की रचना दो वर्ष सात मास और छत्तीस दिवस में सं० १६३३ में समाप्त हुई। सबसे पहिले मिथिला के स्मारण्य स्वामी ने बयोध्या में इसका श्रवण किया। फिर उन्हीठे के हरदोई जिला के स्वामी गंदलाल के शिष्य 'दयाल दास' बध्मा दलालदास ने उसकी एक प्रति लिखी और अपने स्थान पर लौट कर तीन वर्ष तक यमुना तट पर मानस को अपने गुरु को और रसखान को सुनाया। मूल ग्रंथ का यह अंश इस प्रकार है -

मिथिला के सुसंत बुजाने हते। मिथिलाधिप भाव पगे रहते ॥ बुचि नाम स्पासन स्वामि जुतो। तिहि बिबर^१ बाध में बायो हुतो। प्रथम यह मानस तेई बुने। तिहि अधिकारी गुसाई गुने। स्वामी नंद (बु) लाल^२ को शिष्य पुनी। तिस नाम दलाल बुदास गुनी लिखि के सोई पौधि स्व-
ठाम गयी। गुरु के दिग जाइ पुनाई दयी। जमुना-तट पर त्रय वत्सा लो + रसखानि जाई बुन वत माँ।^३

इस उल्लेख के अनुसार संवत् १६३४ से १६३६ पर्यन्त तीन वर्ष तक रसखान ने 'रामचरितमानस' की कथा सुनी। रसखान राम सम्बन्धी किसी पद की रचना न करते हुए भी मानस प्रेमी अवश्य रहे होंगे। क्योंकि उनका दृष्टिकोण उदार था। वे सबको समान भाव से देखते थे। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उन्होंने शिव, गंग बादि पर श्रद्धा लिखी। यदि उन्होंने राम के सम्बन्ध में काव्य रचना नहीं की तो उनके सम्बन्ध में यह धारणा बना लेना तर्क संगत नहीं है कि वे राम काव्य को सुनना भी पसन्द नहीं करेंगे। अर्थात् उन्होंने रामचरितमानस की कथा बड़े चाव

१. रामचरित मानस की रचना समाप्त होने पर सं० १६३३ में

२. उन्हीठा तैं जाई के, वसु स्वामी नंदलाल

३. पौदार अभिनन्दन ग्रंथ, भक्त कवि रसखान, पृ० ३०५

से सुनी होगी । मूल गोशार्वरित के अनुसार रसखान तीन वर्ष तक यमुना तट पर रामचरितमानस की कथा सुनते रहे ।

वार्ता साहित्य

हरिहरनाथ टंडन जी ने 'वार्ता साहित्य' में पृ० १८६ पर चौरासी वैष्णवों की वार्ता के नाम गिनाते हुए ३५ वां नाम रसखान का गिनाया है । वार्तासाहित्य में रसखान के सम्बन्ध में लिखा है -^१

वर्तमान काल - संवत् १६१५ से १६८५, जन्म संवत् १६१५, पिता का नाम वजात, जाति मुसलमान, निवास स्थान दिल्ली, शरण काल सं० १६४० के समीप अन्त समय १६८५ सं० ।

इन्होंने दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता की ही कथा को अपनाया है। उल्लेख वार्ता-साहित्य में यह भी बताया है कि 'भाव प्रकाश' में रसखान को 'सैयद पठान' लिखा है ।

शिवसिंह सरोज

शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास-ग्रंथ में लिखा है कि 'रसखान कवि' सैयद ख्वाहीम पिहानी वाले संवत् १६३० में हुए । ये मुसलमान कवि थे । श्री वृन्दावन में जा कर कृष्णचन्द्र की भक्ति में ऐसे हुए कि फिर मुसलमानी धर्म त्याग कर माला कंठी धारण किए हुए वृन्दावन की रज में मिल गये । उनकी कविता निपट ललित माधुरी से भरी हुई है । उनकी कथा भक्तमाल में पढ़ने योग्य है ।^२

मिश्रबन्धु विनोद

'रसखान समय १६४५ । इनको बहुत लोग सैयद ख्वाहीम पिहानी वाले समझते हैं । परन्तु यह महाशय वास्तव में दिल्ली के पठान थे । ज्ञाता कि दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में लिखा है । रसखान ने अपना समय अनुचित व्यवहारों

१. वार्ता साहित्य, पृ० ३११

२. शिवसिंह सरोज, पृ० ४३६

में भी व्यतीत किया था, अतः उनकी कविता का आदिकाल भी २५ वर्ष की अवस्था से प्रारंभ होना अनुमान सिद्ध नहीं है। विठ्ठलेश जी का मरण काल सं० १६४३ है, जो सं० १६४० के लगभग उनका शिष्य होना जान पड़ता है। अतः उनका जन्म काल हम १६१५ के लगभग समझते हैं। उनकी अवस्था ७० वर्ष की मानने से उनका मरण काल सं० १६८५ मानना पड़ेगा।^१

हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास

अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है वैयद ख्वादीम उपनाम रसखान कवि, हरदोई जिले के अन्तर्गत पिहानी के रहने वाले, जन्म काल १५७३ ई०। यह पहले मुसलमान थे। बाद में वैष्णव होकर ब्रज में रहने लगे थे। उनका वर्णन भक्तमाल में है। उनके एक शिष्य कादिर बख्श हुए।^२

हिन्दी साहित्य का इतिहास

वाचार्थ रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में रसखान के जीवन के सम्बन्ध में लिखा है। 'दिल्ली के एक पठान सरदार थे। उन्होंने 'प्रेम-वाटिका' में अपने को शाही वंश का कहा है। संभव है पठान बादशाहों की कुल परम्परा से उनका सम्बन्ध रहा हो। ये बड़े भारी कृष्ण भक्त और गौस्वामी विट्ठलनाथ जी के बड़े कृपापात्र शिष्य थे। उनका रचना काल सं० १६४० के उपरांत ही माना जा सकता है क्योंकि गौसाईं विट्ठलनाथ जी का गौलीक़्वाच संवत् १६४३ में हुआ था। प्रेम वाटिका का रचनाकाल सं० १६७१ है।^३

हिन्दी साहित्य

वाचार्थ हजारिप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने इतिहास में दो रसखान बताये हैं। जब में प्रमुख है बादशाह वंशी की ठाक शीड़ने वाले जुजान रसखानि। इस नाम

१. मित्र बन्धु विनीत, प्रथम भाग, पृ० २६२

२. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १०७

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १७६

के दो मुसलमान भक्त कवि बताए जाते हैं - एक तो सैयद अब्राहीम पिशानी वाले और दूसरे गौसार् विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र शिष्य सुजान रसखान । दूसरे अधिक प्रसिद्ध हैं । संभवतः यह पठान थे । इसीलिये अपने को बादशाह वंश का लिखा है ।^१

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

कहा जाता है कि उनके जीवन का प्रारम्भिक भाग भौतिक प्रेम मय था । उनकी प्रेमाशक्ति के विषय में दो कथारं प्रसिद्ध हैं । एक तो बनिये के लड़के से प्रेम की कथा और दूसरे एक मानवती स्त्री की प्रेम सम्बन्ध की कथा । दोनों ही कथाओं में उनके भौतिक प्रेम की प्रतिक्रिया के रूप में श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट होने की बात है ।

दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता के अनुसार तो यह एक बनिये के लड़के पर आश्रित थे । लोगों को इन्होंने कहते हुए सुना कि जैसा रसखान का प्रेम उस बनिये के लड़के पर है वैसा प्रेम भगवान में होना चाहिए । रसखान यही बात सुन कर विरक्त हो विट्ठलनाथ जी के पास गये और उनसे दीक्षित हुए । उनका कविता काल संवत् १६७१ माना जाता है क्योंकि उसी समय उनकी प्रसिद्ध रचना 'प्रेम वाटिका' लिखी गई ।^२

हिन्दी साहित्य

डा० श्याम सुन्दर दास ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि 'कृष्ण भक्त कवियों के इस व्युत्थान काल में हम अत्यन्त सरस पदों के रचयिता सच्चे प्रेम मग्न कवि रसखान को नहीं भूल सकते , जो विधर्मी होते हुए भी ब्रज की अनुपम मधुरिमा पर मुग्ध और कृष्ण की ललित लीलाओं पर लट्ट थे । जाति पांति के बन्धनों के बहुत ऊपर शुद्ध प्रेम का सात्विक बन्धन है । उसी में रसखान बसे थे । हिन्दी के मुसलमान कवियों में रसखान का स्थान बहुत ऊँचा है ।'^३

१. हिन्दी साहित्य, पृ० २०५

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५३५

३. हिन्दी साहित्य, डा० श्यामसुन्दर दास , पृ० २३० कृष्ण संस्करण

डा० श्याम सुन्दर दास जी ने रसखान के समय तथा जीवनी पर प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया ।

हिन्दी कृष्ण काव्य धारा में मुसलमान कवियों का योगदान

हरिसिंह नलवा जी इस ग्रन्थ में डा० शिवसिंह सेंगर, मिश्र बन्धु विनोद वासोरी गंगाप्रसाद सिंह, बाबाय रामचन्द्र शुक्ल, पं० विश्वनाथ प्रसाद वादि के रसखान जन्म एवं जीवन सम्बन्धी मत देकर अन्त में यह तथ्य निकाली हैं -

‘उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह पहले इस्क मजाजी में फंसे हुए थे , चाहे वह किसी के भी प्रति रहा हो और जब संयोग से इनकी कृष्ण हवि का दर्शन हुआ तो इनका ‘इस्क मजाजी’ इसके हकीकी में परिवर्तित हो गया । यह कृष्ण भक्त हो कृष्ण प्रेम में पूर्णतया रंग गये । स्वामी मिट्ठलनाथ जी ने इनकी पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया । इसके अतिरिक्त इनकी जीवन सम्बन्धी घटनाओं के लिए कोई प्रामाणिक आधार नहीं है ।’

हिन्दी के मुसलमान शौरा (उर्दू)

अब्दुल्लाबट के अनुसार नाम सैयद अब्दाहीम रसखान । यह बहुत बड़े शहर हुए हैं । बापने खालिस ब्रज भाषा में शाहरी की है । बापकी ज़मान की मीयारी करार दिया गया है । बाज भी हिन्दुओं की कसीर तादाद (बड़ी संख्या) उनके कवित्त सुबह की पूजा के वक्त पढ़ती है । और इस मुसलमान के अल्फाज़ (शब्द) हर मंदिर और ठाकुरदारे में गुंजा करते हैं ।

फ़ादिर बरखा रसखान इन्होंने भी हिन्दी में अच्छी शाहरी की है ।^१ अब्दुल्ला-

१. हरिसिंह जीका, यह शोध प्रबन्ध जलीगढ विश्वविद्यालय से पी एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ है , अभी अप्रकाशित है ।

२. हिन्दी के मुसलमान शौरा, पृ० ८६

बट ने रसखान के शिष्य कादिर बख्श को भी रसखान का नाम देने की भूल की है।

हिन्दी के मुसलमान शायर - (उर्दू)

तैयद अमीर खान नूरानी ने रसखान का नाम तैयद अब्बासी रसखान लिखा है और उनकी जीवनी न मिलने पर तैद प्रकट किया है। उनके अनुसार -¹ आप हिन्दी ज्ञान के बहुत बड़े शाहर थे। ज्ञान बहुत सस्त इस्तेमाल करते थे। उनकी बाज़ (कतिपय) मशहूर ^{कवि} कुतुब (प्रसिद्ध पुस्तकें) हिन्दू धर्म के लोग तुबह को पूजा में पढ़ते हैं। उनका कलाम (काव्य) स्याहीवाम (सबमें) में बहुत मम्बूल (लोकप्रिय) हुआ। अफ़सोस कि इस बा-कमाल शाहर के हालाते ज़िन्दगी (जीवनचर्या) दस्तयाब नहीं हुए।^१

हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेम काव्य

गुरुदेव प्रसाद वर्मा ने 'हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेम काव्य' नामक पुस्तक में लिखा है कि आपके जन्म संवत् के बारे में मतभेद है। यह प्रसिद्ध है कि रसखान ने श्री बल्लभाचार्य के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली। विट्ठल नाथ की मृत्यु संवत् १६४२ विक्रमी में हुई अतः दीक्षा इसके पूर्व ही ली होगी। यदि दीक्षा ग्रहण का समय संवत् १६४० माना जाय और उस समय उनकी अवस्था २५ वर्ष मानी जाय तो अनुचित न होगा। इस प्रकार जन्म संवत् १६१५ विक्रमी के आस पास माना जा सकता है। जनश्रुति है कि रसखान के हृदय में भगवद् विषयक रति का आविर्भाव श्रीमद्भागवत के फारसी अनुवाद को पढ़ने से हुआ। भागवत में गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम को पढ़ कर उन्हें ध्यान हुआ कि उसी से क्यों न मन लगाया जाय, जिस पर इतनी गोपियां अपने प्राण अर्पण करती हैं। यह विचार कर ये वृन्दावन चले गये।^२

१. हिन्दी के मुसलमान शायर, पृ० ५४

२. हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेम काव्य, पृ० ७६

इस पुस्तक में भी अन्य पुस्तकों से मिलते जुलते तथ्यों का निरूपण किया गया है ।

२ हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर

एफ. ई. के. ने अपनी इस पुस्तक में रसखान के विषय में कहा है कि 'यह पहले मुसलमान थे और उनका नाम सैयद खादीम था । ये कृष्ण के भक्त हुए हैं । उनकी प्रशंसा में काव्य रचना की, जो वृत्ति सुन्दर एवं मधुर है । उनके एक शिष्य कादिर बख्श थे । उन्होंने भी हिन्दी में काव्य रचना की ।'^१

पौदार अभिनन्दन ग्रंथ

इस ग्रन्थ में भवानी शंकर याज्ञिक जी ने बड़े परिश्रम और होज के साथ 'भक्त कवि रसखान' नामक एक लेख लिखा है जिसके अनुसार रसखान का जन्म संवत् १५६० में हुआ । सं० १६१२ के लगभग ये दिल्ली छोड़ ब्रज में गए । सं० १६२७ के बाद वैष्णव धर्म ग्रहण कर लिया सं० १६३४ से १६३७ तक तीन वर्ष पर्यंत मानस की कथा सुनी और सं० १६७२ में प्रेम वाटिका रची । उनकी मृत्यु इसके कुछ वर्ष बाद लगभग ८५ वर्ष की अवस्था में सं० १६७५ के आस पास हुई होगी । इस प्रकार उनका जीवन काल गौस्वामी तुलसीदास जी और गंग कवि के समय से पांच वर्ष के हैर फेर से मेल खाता है । अष्टादश के चार शिष्य उनके समकालीन थे , परन्तु रसखान के निधन के ३०-३५ वर्ष पूर्व अष्टादश के सभी कवियों की मृत्यु हो चुकी थी । रहीम कवि रसखान से छोटे थे और तानसेन तथा बीरबल के निधन के बाद भी रसखान जीवित थे ।^२

नया दौर - उर्दू

अगस्त १६६० में 'सरस्वती शरण कैफ' के लेख हिन्दी के मुसलमान शाहर

१. २ हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर, पृ० ६८

२. पौदार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ३१५

में उन्होंने रसखान के सम्बन्ध में लिखा है कि रसखान का जसली नाम मालूम नहीं । ये दिल्ली के एक पठान सरदार के लड़के थे । ज्ञानी में यह एक बनिये के लड़के पर वाशिक हो गये और इसके पीछे दीवानावार घूमने लगे । एक रोज उन्होंने बाजार में किसी को कहते सुना कि भगवान् कृष्ण से ऐसी ही मुश्किल करनी चाहिये ऐसी रसखान को बनिये के लड़के से है । इस जुमले (वाक्य) ने रसखान के रूहानी रज्जर (वात्मा को) को जाा दिया और ये वृन्दावन को चल सके हुए । वहाँ जाकर गोसाईं विट्ठलनाथ के भेले हो गये और रूहानियत के इस दर्जे पर पहुँच गये कि उनका जिह्वा (बर्षा) मशहूर मज़हबी किताब 'दो ली बादन वैष्णवर्ष' की वाता में आ गया ।^१

रसखान : जीवन और कृतित्व

देवैन्द्र प्रताप उपाध्याय ने अपनी इस पुस्तक में कहा है कि रसखान का जन्म-संवत् १६३०, जीवन से विराग संवत् १६६४, प्रेम वाटिका की रक्ता संवत् १६७१ और मृत्यु संवत् १६६० के लगभग माना जाय तो अधिक संगत होगा । इस प्रस्ताव में यह स्मरणिय है कि संवत् १६६२-६४ में ही जहाँगीर और कुसरो का भयानक संघर्ष भी होता है ।^२

अन्तः साध्य

जहाँ तक बाह्य साध्य का सम्बन्ध है, उसके आधार पर रसखान के समय, स्थान आदि के विषय में कोई अकाट्य प्रमाण उपलब्ध नहीं है । अतएव उनकी रचनाओं के अन्तःसाध्य के आधार पर ही उनके जीवन-सम्बन्धी कुछ तथ्यों का उल्लेख किया जा सकता है ।

कृष्ण-काव्य में गीति-काव्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है । संवत् १६०० से पहले लगभग सभी भक्तों ने पद रचना की अपनाया । विद्यापति के काव्य में हमें

१. नया दौर उद्ग, पृ० ५६

२. रसखान जीवन और कृतित्व, पृ० ४८

असका वृत्तपात मिलता है । कबीर ने भी पद रचना की । मीरां से लेकर वाष्पहाप के कवियों ने भी इसी पद्धति को अपनाया । संवत् १६०० के बाद ही कविच सवैया की परम्परा बारम्भ होती है । इसलिए रसखान का रचना काल १६०० से पूर्व नहीं माना जा सकता ।

प्रेमवाटिका के कुछ दोहों से रसखान के जीवन पर प्रकाश पड़ता है ।^१

रसखान के समय में दिल्ली में राज-सत्ता के लिए गदर एवं युद्ध हुआ जिसे देख कर रसखान ने बादशाह वंश की उसक झोड़ दी क्योंकि दरबार से या शहंशाह वक्त से जो सम्बन्ध थे उनको त्याग कर रसखान ब्रज जाये और गोवर्धन पर्वत को अपना निवासस्थान बनाया । श्री कृष्ण के जुगल-स्वरूप ने ही उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया ।

रसखान ने मौखिनी स्त्री के मान तथा मानिनी से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया । कृष्ण-कवि का दर्शन कर के वे वस्तुतः 'रसखान' हो गये । इस प्रकार उन्होंने अपनी चित्तवृत्तियों का उदात्तीकरण किया । १६७२ में उन्होंने अपने मन के उल्लास को व्यक्त करने के लिए 'प्रेम वाटिका' की रचना की । यह कृति कृष्ण के पादपद्मों में समर्पित है जो श्रेष्ठ रसिकों के लिए उसी प्रकार आनन्दप्रद है जिस प्रकार कमल भ्रमरों के लिए ।

१. दैखि गदर हित-साखी, दिल्ली नगर मजान ।
 क्षिप्रि बादसा-वंस की, उसक झोरि रसखान ॥
 प्रेम निकैतन श्रीबनहिं, जाइ गोवर्धन - धाम ।
 लह्यौ सरन चित बाहिकै, जुगल-स्वरूप ललाम ॥
 तौरि मानिनी तैं हियौ, फौरि मौखिनी मान ।
 प्रेम देव की कबिहि लखि मर मियां रसखान ॥
 विधु सगैर रसै रन्दु, सुम वरस सरस रसखानि ।
 प्रेम वाटिका रचि लुचिर चिर हिय हरण बखानि ॥
 बरपी श्रीहरि-बरन जुग-मदुम पराग निहार ।
 विचरहिं या मैं रसिकवर, मधुर-निकर अपार ॥

प्रेम वाटिका, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२.

रसखान के इन दोहों के आधार पर प्रायः सबही लेखकों ने रसखान को बादशाह वंश का बताने की भूल की है । चन्द्रशेखर पांडे ने कहा है -

देखि गदर हित-साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।

झिन्हि बादशा-वंश की, ठसक झौरि रसखान ॥

रसखान के इस दोहे से पता चलता है कि यह बादशाह वंश के थे ^१ । श्री देवेन्द्रप्रताप उपाध्याय ने भी कहा है कि 'अपने बादशाह वंश की ठसक उन्होंने झोड़ दी। दिल्ली नगर को त्यागा और गौवर्धन धाम में जा कर कृष्ण राधा की शरण ली ।' ^२

किन्तु मेरे विचार से इनका सम्बन्ध शाही वंश से कुछ न था , यह केवल दरबार में किसी पद पर आसीन थे । मुगल बादशाहों के राजसत्ता के लिए दुर युद्ध से उन्हें ग्लानि हुई । बादशाह वंश की ठसक झोड़कर यह वहां से चले बाये ।

जुजान रसखान के कुछ पदों से भी रसखान के सम्बन्ध में कुछ पता लगता है किन्तु इस और विद्वानों का ध्यान नहीं गया है -

देस विदेस के देस नरेखन रीफ की कौऊ न बूफ करैगी ।

तातें तिन्हें तजि जानि गिरयौ गुन, जौ गुन औगुन गांठि परैगी ।

बांबुरी वारो बड़ो रिफवार है त्याम जु नैसुक डार डरैगी ।

ठाढ़लौ झेल वही तो वहीर कौपीर हमारे हिये की हरैगी ॥^३

इस पद से पता चलता है कि रसखान ने कई राजाजों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहा किन्तु किसी ने उनसे रीफकर बात नहीं की अर्थात् उन पर किसी की अनुकम्पा नहीं हुई ।

रसखान ने प्रजा, प्रजापति, दरबार^४ आदि शब्दों का व्यवहार भी किया है । राज दरबार का वैभव विलास रसखान के अचेतन मन में था जो कविता बन कर

१. रसखान और उनका काव्य, पृ० २

२. रसखान जीवन और कृतित्व , पृ० ४०

३. पु० २०, ७

४. पु० २०, ६

निवृत्त हुआ । उसको क्षिप्ताने के लिए अन्त में उन्होंने कह डाला कि यह सब होने पर यदि कृष्ण से स्नेह न हो तो व्यर्थ है -

‘कंचन-मंदिर अंचे बनाई के मानिक लाइ उदा कलकैयत ।

प्रात ही तें अगरी नगरी नग मोतिन की तुलानि तुलैयत ।

जयपि दीन प्राजान प्रजापति की प्रभुता मथवा ललचैयत ।

ऐसे मर ती कहा रसखानि जी आवरे ग्वारं सों नैह न लैयत ॥ ^६

कलघात के धाम भी रसखान की स्मृति में जाते हैं । उन्हें वे करील कुंजों पर वार^१ कर अन्तोष कर लेते हैं । रसखान ने किा सुन्दर ढंग से शाही शान के दर्शन कराये हैं-

लाल लौ पगिया सब के, सब के पट कोटि गुगंघनि पीने ।

अंगनि अंग सजे सबहीं रसखानि अनैक जराव न-वीने । ^२

लाल पगिया, जरतारी पगिया, गुगन्धित वस्त्र, अंग में जराउ बाभूषणों, मोतियों की मालारें इन सबका सम्बन्ध सरदार अमीरों से था । यह उपकरण रसखान के जीवन के इस तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि उनका दरबार से सम्बन्ध अवश्य रहा।

किसी संकट काल में रसखान ने यह विचार कर भी अन्तोष किया -

काहे की सोच करै रसखानि कहा करि है रवि नंद विचारो ।

ताखन जाखन राखिये माखन चाखन हारो जो राखन हारो ॥ ^४

ऐसा भी प्रतीत होता है कि किसी ने इनकी चुगली शाह^३ वक्त से की । उसी लीला कर निर्भीकतापूर्वक रसखान ने यह दोहा कहा -

कहा करै रसखानि को कौज चुगुल उबार ।

जो पै राखन हार है माखन-चाखन हार ॥ ^५

१. गु० २०, ६

२. गु० २०, ३

३. गु० २०, २३७

४. गु० २०, १८

५. गु० २०, १८

अन्तः साक्ष्य तथा बाह्य साक्ष्य के आधार पर रसखान के जीवन पर प्रकाश डाला जाएगा ।

रसखान का जन्म-संवत्

रसखान के जन्म संवत् के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है ।
 अनेक विद्वानों ने इनका जन्म संवत् १६१५ माना है ।^१

शिवसिंह सरोज और उन्हीं के आधार पर श्री देवेन्द्रप्रताप उपाध्याय ने
 रसखान का जन्म संवत् १६३० विक्रमी माना है ।^२

यदि रसखान का जन्म-संवत् १६१५ मान लिया जाए तो इनके ब्रज में जाने का समय क्या होगा ? इसका अनुमान लगाना कठिन हो जाएगा । रसखान ने स्वयं बतलाया है कि जब गदर के कारण दिल्ली नगर शम्शान बन गया तब वे उगे झौड़ कर ब्रज चले गये ।^३ ऐतिहासिक साक्ष्य^४ के आधार पर पता चलता है कि उपर्युक्त गदर सं० १६१३ में हुआ था । इससे स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि उनका जन्म सं० १६१३ से बहुत पहले हो चुका था और वे इतने वयस्क हो चुके थे कि गदर के बाद ही ब्रज चले गये । इसलिए सं० १६१५ में उनका जन्म मानना ग्राह्य नहीं प्रतीत होता ।

संवत् १६३० को जन्म संवत् मानना भी नितान्त भूल होगी । संवत् १६३० में उत्पन्न हो, संवत् १६४० में दीक्षा लें, ऐसा जीवन हास्यास्पद है । शिवसिंह सरोज ने शिवसिंह सरोज की भूमिका में लिखा है कि इस ग्रन्थ की रचना उन्होंने

१. 'बाह्य-साक्ष्य' के अन्तर्गत इनकी चर्चा की जा चुकी है ।

२. रसखान जीवन और कृतित्व, पृ० ४८

३. देखिए गदर हित साक्षी, दिल्ली नगर मजान

शिवसिंह बादशा-बंस की, उसक झौड़ रसखान

प्रेम्भाटिका, ४८

४. वाक्यान्ते दारुललुलूमत देहली, पृ० ३०८

वुने वुनार आधारों पर की है।^{१५} इसलिए उनके कथन को यथावत मान लेना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

देवेन्द्र प्रताप उपाध्याय जी ने डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता को अप्रामाणिक मान कर रसखान का जन्म संवत् १६३० माना है। दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता को अप्रामाणिक मानते हुए भी हम रसखान पर वैष्णव प्रभाव को बखीकार नहीं कर सकते। यह उन पर कब और कैसे पड़ा, देवेन्द्रप्रताप उपाध्याय जी ने इस विषय में कुछ नहीं बताया। दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में कुछ अंश सौंपक रूप में जोड़ दिया गया है। ऐसा हो सकता है जो हिन्दी साहित्य की पुरानी परिपाटी रही है; किन्तु इस आधार पर सम्पूर्ण ग्रन्थ को अप्रामाणिक मानना भूल ही होगी।

वास्तव में रसखान का जन्म संवत् १५६० में हुआ। म्वानीशंकर याज्ञिक जी ने भी यही माना है। अनेक तथ्यों के द्वारा उन्होंने अपने इस मत की पुष्टि भी की है। ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर भी यही तथ्य सामने आते हैं।^{१६} अतः यह मत अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। १५६० में जन्म लेने के बाद संवत् १६२३ के लगभग रसखान दिल्ली से मथुरा जाए और इस मत के अनुसार रामचरितमानस की कथा सुनते समय उनकी अवस्था ४४ वर्ष ठहरती है और दीक्षा के समय उनकी आयु लगभग ५० वर्ष होती है, जो उचित ही है।

जन्म स्थान

रसखान के जन्म स्थान के विषय में भी अनेक मत हैं। रसखान ने सम्भवतः पिहानी बख्सा दिल्ली को ही जन्म लेकर पवित्र किया होगा। दिल्ली शब्द का प्रयोग केवल एक बार उनके काव्य में मिलता है जिससे यह सिद्ध होता है कि राज-सचा के लिए हुए युद्ध के कारण दिल्ली नगर को शमशान-भूमि के रूप में देखकर रसखान

१. देखिये, शिवसिंह सरोज की भूमिका

२. देखिये पौदार अभिनन्दन ग्रंथ का रसखान सम्बन्धी लेख।

वहाँ से मथुरा चले बाये ।^१ इस बाथार पर यह कहना असंगत ही प्रतीत होता है कि रसखान का जन्म दिल्ली में हुआ , दिल्ली दरबार से उनका सम्बन्ध अवश्य रहा ।

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत है कि पिहानी सैयद पठानों की बस्ती है ।^२ किन्तु यह कहते समय वे भूल गये हैं कि सैयद पठान नहीं हो सकते और पठान सैयद नहीं । वह इसलिये कि सैयद और पठान मुसलमानों की चार प्रसिद्ध उपजातियों में से हैं । सैयद तो रसूले इस्लाम शजरत मुहम्मद की बाल बीठाद की सीधी च्छी जाती परम्परागत पीढ़ी को कहते हैं । पठान अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं । उनके नाम के साथ 'खान' शब्द का प्रयोग होता रहा है । यह 'खान' शब्द वीरता का पर्यायवाची बन गया । वीरता के कार्य करने पर खान की उपाधि दी जाने लगी । यदि किसी सैयद ने किसी युद्ध में साहस दिखाया या दुश्मन को परास्त कर दिया तो उसको खान की उपाधि मिल जाती थी । इस उपाधि की प्राप्ति बड़े गर्व के साथ स्वीकार की जाती थी । सैयद लोग भी उपाधि प्राप्त होने पर अपने नाम के बाद खान या खां लिखने लगे । जिला हरदोई सैयदों की बस्ती है । वहाँ सैयदों को खां की उपाधि मिली , इसका साक्ष्य बिलग्राम (जिला हरदोई) का इतिहास है ।^३ वहाँ के सैयद परम्परा से खां खान की उपाधि को आज भी निबाह रहे हैं । शेरशाह सूरी के पीछा करने पर हुमायूँ को कन्नौज के काजी सैयद अब्दुल गफूर ने आश्रय दिया । इसे प्रसन्न हो कर अपनी कृतज्ञता का प्रकाशन करते हुए उसे हुमायूँ ने हरदोई जिले की तहसील शाहबाद परगना पिंढरावा में ५००० बीघे का जंगल और पांच गांव दिये । पिहानी की बस्ती के मूल में ये ही गांव हैं ।^४

१. प्रेम वाटिका, ४८

२. रसखानि (ग्रन्थावली) प्रस्तावना, पृ० २४

३. देखिये किसी भी सैयद या पठान का वंश वृक्ष (शजरत)

४. देखिये तारीख बिलग्राम

५. रसखानि (ग्रन्थावली) प्रस्तावना, पृ० २४

यह स्वाभाविक ही है कि इन गांवों के साथ हुमायूं ने सैयद अब्दुल गफूर को खान की उपाधि भी दी। सैयद अब्दुल गफूर पिहानी में रहने लगे। सम्भवतः सैयद ख़ाहीम इनकी ही वंश के थे। हुमायूं की मृत्यु के बाद अकबर की भी इस स्थान के प्रति वृत्ति बराबर बनी रही^१ और सैयद ख़ाहीम रसखान परिवार उचित आकर दिल्ली रहने लगे हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। स्वी हैं वे 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के लेखक ने यह कह दिया 'श्री गुसाईं जी के सेवक रसखान पठान दिल्ली में रहते तिनकी वार्ता'^२ किन्तु दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में यह नहीं लिखा कि रसखान का जन्म भी दिल्ली में हुआ अतः हम शिवसिंह सरोज तथा हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास^३ तथा उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों के अन्य पुष्ट प्रमाणों के आधार पर रसखान की जन्म भूमि पिहानी जिला हरदोई मानते हैं। पिहानी, बिलग्राम आदि ऐसे स्थान हैं जहां हिन्दी के उत्तम कोटि के मुसलमान कवि पैदा हुए^४ उनमें से रसखान भी एक हैं।

नाम तथा उपनाम

रसखान के नाम के सम्बन्ध में भी अनेक मत हैं। प्रामाणिक सामग्री के अभाव में रसखान के नाम के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक कल्पनारं की जो सर्वथा निराधार हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने भी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य' में दो रसखान लिखे हैं - एक का नाम सैयद ख़ाहीम और दूसरे का नाम सुजान रसखान है।^५

वास्तव में सुजान रसखान नाम का कोई कवि नहीं। सुजान रसखान तो

१. रसखानि (ग्रन्थावली) प्रस्तावना, पृ० २४

२. वार्ता संख्या २१६, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

३. जार्ज ग्रियर्सन, पृ० १०७

X ४. 'माधेरुलकराम' में इनकी चर्चा विस्तार के साथ की गई है। *सर्वज्ञानसंग्रह*

५. हिन्दी साहित्य, पृ० २०५

केवल विमर्शार्थ
उल्लेख है।

रसखान की एक रचना का नाम है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल से ही बाचार्य जी ने कृति का कृतिकार के रूप में उल्लेख कर दिया है।

‘रसखान’ का बसली नाम शैयद ख्वाहीम था और ‘खान’ उनकी परम्परागत उपाधि^१ थी। अधिकांश विद्वानों ने उन्हें शैयद ख्वाहीम लिखा है।^२

श्री देवैन्द्रप्रताप उपाध्याय जी ने लिखा है कि तुलुभ सामग्री के अनुसार स्पष्ट है कि कवि का बसली नाम शैयद ख्वाहीम था। दूसरा नाम रसखान तो हिन्दू होने के बाद जब कवि ने काव्य रचना प्रारम्भ की तब प्रचलित हुआ। जब वह प्रेम देव की इवि लख कर मियां से रसखानि हुए तो उनमें मुस्लिम नाम की बू तक न रह गई और भक्ति के क्षेत्र में बाकर वे पूर्ण रसखान ही हो गए।^३

श्री देवैन्द्र प्रताप उपाध्याय जी ने यहां साम्प्रदायिक भावुकता से काम लिया है। मेरे विचार से यह मान्यता तर्कसंगत नहीं है कि रसखान अपना धर्म परिवर्तन करके मुसलमान से हिन्दू हो गए। वास्तविकता यह है कि भगवान के प्रति परम प्रेम (भक्ति) उत्पन्न हो जाने पर उनकी दृष्टि में साम्प्रदायिक धर्म का कोई महत्व ही नहीं रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि रसखान की निम्नांकित पंक्तियों ने बालीचकों को उनके धर्म परिवर्तन के विषय में कल्पना करने के लिए प्रेरित किया है -

‘प्रेम देव की इवि लखि मये मियां रसखान।’

उन्होंने मये मियां रसखान का अर्थ किया है ‘मियां’ (मुसलमान) शैयद ख्वाहीम खान रसखान (हिन्दू भक्त) हो गए। किन्तु इस प्रकार के अर्थ निरूपण के पक्ष में कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता। ‘मियां’ से मुसलमान और ‘रसखान’ से हिन्दू का तात्पर्य निकालना स्वमनीषा से की गई उद्भावना मात्र है।

उपरोक्त पंक्ति का उचित अर्थ यह है कि प्रेम देव की इवि देख कर मये मियां रसखान अर्थात् रसखान मियां हो गए। मियां शब्द का अर्थ पति के

१. देखिये रसखान की बन्मस्थान चर्चा।

२. देखिये बाह्य साक्ष्य

३. रसखान जीवन और कृतित्व, पृ० ३८

बाल्यकाल और शिक्षा

रसखान एक जागीरदार पिता के पुत्र थे । इसलिए उनका लालन पालन बड़े ठाढ़ प्यार के साथ हुआ । यदि ऐसा न होता तो उनके काव्य में एक विशेष प्रकार की कटुता पाई जाती । सम्पन्न परिवार में उत्पन्न होने के कारण उन्हें उच्च शिक्षा दी गई । उनकी विद्वत्ता के दर्शन उनके काव्य की साधिकार बहिर्व्यक्ति में होते हैं । ये फारसी, हिन्दी एवं संस्कृत के ज्ञाता थे । श्री-मद्भागवत के फारसी अनुवाद सुनने की घटना से उनके फारसी ज्ञान का पता चलता है ।^१ संस्कृत और हिन्दी भाषा के ज्ञान का साक्ष्य उनका काव्य है ।^२

रसखान के मकतब जादि में जा कर पढ़ने की चर्चा नहीं मिलती । समुद्रिशाही होने के कारण उनके पिता ने उनकी शिक्षा के लिए मुल्ता और पंडित नियुक्त किये । इनसे वे घर पर ही पढ़ते होंगे । घन विलासिता का कारण बन जाता है और विलासिता से जीवन में बुराईयां आ जाती हैं । रसखान के जीवन में भी कुछ बुरी बातों के दर्शन विलासिता के कारण ही होते हैं ।

मधुरा वागमन

यह तो निश्चित ही है कि रसखान दिल्ली में राजसत्ता के लिए हुए युद्ध को देखकर जीवन बाया।^३ यह गदर कब पड़ा, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है । चन्द्रशेखर पांडे जी लिखते हैं कि 'उन्होंने एक दोहे में लिखा है - देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान, किन्तु उनके समय दिल्ली में ऐसा कोई राजविप्लव नहीं हुआ था जिसमें दिल्ली नगर शमशान हो गया हो ।

संभव है बह्मयंकारी दिल्ली में ही मारे गये हों और रसखान के किसी परिचित पर भी आंच पहुंची हो । अतः रसखान ने उसे गदर लिख दिया हो और दिल्ली को शमशान बनाया हो ।^४

१. देखिये- हिन्दी के सुलतान अलिशर आ डिमनाय, पृ. ६१

२. देखिये - रसखान की भाषा, अष्ट अध्याय ।

३. प्रेमवाटिका, ४८, ४९

४. रसखान और उनका काव्य, पृ. ११

व्यतिरिक्त नैक मला, उज्ज्वल भी है^१। मियां कह कर प्रेम भाव से झोटों और बड़ों सबको सम्बोधित भी किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि रसखान में जो सांसारिक बुराईयां (बनिये के लड़कै की वंगति, स्त्रीमोह) थीं वे प्रेम देव की शक्ति देख कर दूर हो गईं और वे उज्ज्वल हो गए। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि मियां शैयद खाहीम रसखान हो गए तो भी रसखान शब्द का अर्थ रसखानि अर्थात् रस की खान नहीं है। इस पंक्ति में रसखान ने 'रसखानि' नहीं 'रसखान' शब्द का प्रयोग किया है।

नवलगढ़ के राजकुमार संग्रामसिंह जी द्वारा प्राप्त रसखान के चित्र पर नागरी लिपि के साथ साथ फारसी लिपि में भी एक स्थान पर 'रसखान' तथा दूसरे स्थान पर 'रसखान' ही लिखा हुआ है।^२

इससे भी यही सिद्ध होता है कि रसखान को रसखानि (रस की खान) नहीं बनना था केवल अपना तखल्लुस (उपनाम) रसखान रस कर कविता करना ही उनका उद्देश्य रहा। यदि उपनाम की परम्परा को लिया जाय तो उसके दर्शन हमें प्राचीन संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि में नहीं होते। डा० हरदेव बाहरी का मत इस विषय में उल्लेखनीय है -

'पुराने हस्त लेखों की एक बड़ी समस्या यह है कि लेखक के विषय में वास्तविकी से अनुमान नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि लेखक अपना नाम कहीं भी नहीं देते। यह विशेषकर संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के काव्य में मिलता है। भारतीय परम्परा आत्मगोपन की है। सुसरो और सूफ़ी कवि अधिकतर अपने नाम का प्रयोग किया करते थे। कबीर ने लगभग हर पद में अपना नाम लिखा और यह परम्परा वहीं से चल पड़ी। प्रारम्भ में कवि अपना नाम संक्षेप में ही दिया करते थे। जैसे मलिक मुहम्मद जायसी के लिए 'मुहम्मद', कबीरदास के लिए 'कबीर', अबदुल रहीम खान खाना के लिए रहीम।'^३

१. देखिये मूल लुगात चतुर्थ भाग, पृ० ७२३

२. यह चित्र रसखानि ग्रन्थावली के प्रारम्भ में लगा है।

३. One of the most important problems about old manuscripts is that the authorship of a work cannot be easily identified because the author himself does not mention his name anywhere. This is particularly so in poetical works - San

इसे फ़ारसी परम्परा कहिए या मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव । उस काल के तथा बाद के हिन्दी कवियों ने भी इस परम्परा को अपनाया ।

इस परम्परा का पालन रसखान ने भी अपने पूर्वजों की भांति किया । उन्होंने इस परम्परा को अपनाया और 'खान' के साथ 'रस' शब्द को लेकर मौलिकता के दर्शन करार और रसखान अर्थात् रस से भरे या रसीले ज्ञान होकर काव्य रचना की । रस की उनके जीवन में कमी न थी । पहले लौकिक रस का वात्सादन करते रहे फिर बलौकिक रस में लीन हो काव्य-रचना करने लगे । एक स्थान पर उनके काव्य में 'रसखान' शब्द का प्रयोग भी मिलता है -

नैन दलालनि चौहटे मन मानिक पिय हाथ

'रसखान' ठोल बजार के बैचियो हिय जिय साथ ।^१

यह कुछ कहना कि उनमें मुस्लिम नाम की बू तक न रह गई^२ थांपलेबाजी के सिवा कुछ नहीं । इस सुगन्ध (मुस्लिम बू) के दर्शन केवल उनके नाम में ही नहीं उनके काव्य में भी सर्वत्र मिलते हैं^३ । रसखानि का प्रयोग जहाँ भी रसखान ने किया है केवल पाद पूर्ति के लिए किया है । उनका तसल्लुस (उपनाम) रसखान था जिसका संक्षिप्ततर रूप रसखान में मिलता है ।

Apbhransa, and even old Hindi. Indian tradition enjoined self abnegation in such deeds called Yajnas. Khusro and Soofi poets have used their names very often, and Kabir used his name almost in every Pada and Saloka. This became a regular fashion in course of time. In the early stages a poet would give his short name as Muhammed (for Malik Mohammed Jaysee) Kabir (for Kabir Dass) Rahim (for Abdul Rahim Khan Khana) -----

Persian Influence on Hindi P.78

१. सु० २०, ७१

२. रसखान जीवन और कृतित्व, पृ० ३८

३. दसहर प्रस्तुत प्रबंध के पृ० ३४४ से ३५५ तक

पं० विश्वनाथ प्रसाद जो^६, परशुराम चतुर्वेदी^७ के अनुसार इस घटना के लिए युद्ध तथा विद्रोह दमन की संज्ञा देना अधिक उचित है। वास्तव में इसे गदर कहना ठीक नहीं। क्योंकि गदर^३ शब्द बरबी का है। बरबी में इसका अर्थ बैवफाई है, और उर्दू में बगावत, हंगामा और बलवा आदि। यह घटना इस अर्थ पर पूरी नहीं उतरती। अकबर बादशाह का अपने भाई से यह युद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से इसनी महत्वपूर्ण घटना नहीं है कि इसे गदर मान लिया जाय। दिल्ली में तो कदाचित् एक भी गोली नहीं चली। किसी भी इतिहासकार ने इस घटना को गदर की संज्ञा नहीं दी, फिर रसखान इसे दिल्ली का गदर क्यों कहते। बाचार्य चन्द्रबली पांडे के अनुसार रसखान के मतान शब्द का सम्बन्ध तत्कालीन किसी गदर से नहीं है बल्कि स्वयं दिल्ली नगर से है। यह आवश्यक नहीं कि गद्दार लोग दिल्ली नगर में ही गदर मचा कर उसे मतानवत् बना दें, तभी रसखान उसे मतान कहें। अब तो यह है कि दिल्ली नगर जिस राजवंशों का मतान कोई दूसरा नगर नहीं। औरवों से लेकर पठानों तक न जाने कितने राजवंश दिल्ली नगर में नष्ट हो चुके थे। अतः रसखान का दिल्ली नगर को मतान कहना ठीक ही था।^४

बाचार्य चन्द्रबली पांडे ने बिना किसी आधार के केवल कल्पना के बल पर ही दिल्ली को मतान बना दिया। दिल्ली के रूप रंग को देखकर उसके मतान होने की कल्पना कोई कवि भी नहीं कर सकता।

इस घटना को गदर मानने में एक आपत्ति यह भी है कि यदि रसखान ने सं० १६३८ की घटना को देख कर दिल्ली छोड़ी तो इससे पूर्व सं० १६३४ से १६३६ तक 'रामचरितमानस' की कथा कैसे गुनी। एक मजे की बात यह भी है कि इस घटना को गदर मानने वाले सभी विद्वानों ने रसखान का जन्म समय सं० १६१५ लिखा है, जिसके अनुसार रसखान की अवस्था उस समय १८ वर्ष की होती है।

१. रसखान ग्रन्थावली की भूमिका, पृ० २७

२. मध्यकालीन प्रेम वाचना, पृ० १४८

३. मूल लुगात (उर्दू शब्द कोष), पृ० ५७८

४. हिन्दी कवि चर्चा, पृ० २७१, तीसरा भाग

१८ वर्ष के लड़के से यह वाशा करना कि वह इस घटना से प्रभावित हो कर इस प्रकार की रचना करेगा, केवल कौरी कल्पना है ।

श्री देवैन्द्र प्रताप उपाध्याय ने और अधिक पाण्डित्य का प्रमाण इस घटना को जहांगीर से मिला कर दिया है । उनके अनुसार १६७१ संवत् , जो प्रेम वाटिका का रचना काल है, वह निश्चय ही जहांगीर का शासन काल था । इस समय कवि को यदि किसी बादशाह की ठाक हो सकती है तो बादशाही मुगल वंश की ही । वह ग़दर या साहिबी की लड़ाई भी बादशाही घराने तक ही सीमित थी । चाहे वह अकबर या उनके पुत्र जहांगीर की लड़ाई हो या जहांगीर या हुसरो की । इसमें पहली सं० १६१८ में हुई और दूसरी संवत् १६६२-६४ में ।^६

श्री देवैन्द्र प्रताप उपाध्याय जी ने यहां एक नया मत सड़ा करके अपनी मौलिकता के दर्शन अवश्य करार किन्तु इसमें तार कुछ भी नहीं । उनके अनुसार रसखान का जन्म सं० १६३० में हुआ । तो क्या ये दस वर्ष की अवस्था में चिट्ठलमाथ जी से जा मिले ? दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता को नितान्त अप्रामाणिक मानना अनुचित है । जिन घटनाओं को उपाध्याय जी ने लिया है , उनको ग़दर की संज्ञा नहीं दी जा सकती , वह तो साधारण गृह-कलह है ।

ग़दर उसी घटना को कहा जायगा जिसका प्रभाव सम्पूर्ण देश पर पड़े , साथ ही राजधानी में भी उपद्रव मने , जनता पर भी उसका कुप्रभाव पड़े । रसखान ने जिस ग़दर का वर्णन किया है वह संवत् १६१२ और १६१३ का है । भवानीशंकर याज्ञिक जी ने उसे ही माना है ।^७

सं० १६१२, २३ जनवरी सन् १५५६ ई० में अपने पुस्तकालय की लीढ़ी से गिरने के कारण हुमायुं की अचानक मृत्यु हो गई और अकबर १४ फरवरी सन् १५५६ ई० (सं० १६१३ वि०) को गद्दी पर बैठा । उसने पठानों को सदैव सदैव कर अवशक्त कर दिया । कुछ ही वर्षों में उसका दमन कर पूरे वंश का नाम

१. रसखान जीवन और कृतित्व, पृ० ४५

२. पौदार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ३१३

मिट्टा दिया । सिकन्दर शाह तुर अकबर से सन्धि करके शेष जीवन बंगाल में बिताने लगा और वहीं तीन वर्ष पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई ।

महमूद शाह बादिल को , जो चुनार गढ़ में था, बंगाल के महमूद खां के पुत्र खिज़िर ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए तुरजगढ़ में परास्त कर मरवा डाला । ख़ाहीम खां हेमू से बार बार पराजित होकर बुंदेलखंड और फिर उड़ीसा भाग गया और कुछ वर्षों में मर गया । हुमायूँ की मृत्यु का समाचार मिलते ही हेमू पानीपत के मैदान में सेना से लड़ने गया और ५ नवम्बर १६५६ ई० को बैरमखां द्वारा मारा गया ।^४

इस इतिहास प्रसिद्ध युद्ध को रसखान ने गुदर का नाम दिया । ठीक उसी समय सं० १६१२ में दिल्ली में भीषण अकाल पड़ा , जिसके कारण जनता की बड़ी दुर्दशा हुई । देश में अराजकता फैल गई । युद्ध और दुर्भिक्ष ने जनता में हाहाकार मचा दिया । मनुष्य बड़ी संख्या में मरने लगे ।

प्रसिद्ध इतिहासकार अबदुल कादिर बदायूनी ने अपनी पुस्तक मुनतखिरु-वारीस में दुर्भिक्ष और युद्ध पीड़ित जनता का बड़ा हृदय विदारक वर्णन किया है - 'इस समय (सं० १६१३ वि०) में एक भयंकर अकाल पड़ा, जो जागरा, बयाना और दिल्ली में विशेष रूप से प्रचण्ड था । एक तेर ज्वारी (१०००) का मूल्य २॥ ठै (चिक्का विशेष) तब हो गया था । इस ऊँचे भाव पर भी वह अप्राप्त था । बहुतों ने विवश होकर मरने के लिए उद्यत हो अपने घरों के द्वार बन्द कर लिये जिसमें दल बीस या उनसे भी अधिक प्राणी मरने लगे । अनेक लोगों को कफन मिला न कबर । हिन्दु जनता भी इसी प्रकार मरी । मनुष्य काटेदार बकूल जादि वृक्षाँ के बीज, जंगली घास और पशुओं की खाल पर जो धनी वर्ग द्वारा बेची जाती थी, निर्वाह करते थे । कुछ दिनों में हाथ पैरों में सूजन बाने पर मृत्यु होती थी । मैंने स्वयं अपनी जाँखों से देखा है कि मनुष्य नरमांस मसाले हो गये थे । दुर्भिक्ष पीड़ित जनता की मुखाकृति इतनी भयंकर हो गई थी कि उनकी ओर देखना कठिन था । वर्षा की कमी, दुर्भिक्ष और अन्न का अभाव

तथा दो वर्ष के लगातार युद्ध के कारण समस्त देश मरुस्थल हो गया । कृषि के लिए कृषक नहीं बचे थे । लुटेरों ने भी नगरों को लूट लूटा ।^१

इस दुर्भिक्ष की चर्चा बशीरुद्दीन अहमद ने भी की है । उनके अनुसार अफगानों में जो बाहमी (बापसी) कशाकश (वैमनस्य) और बैस्तजामी रही इसमें हेमू एक जंगी और बा-ज्ज्वाल (तैजस्वी) राजा बन गया ।

पुल्य जा रही थी । ढाई रुपये के मकई का भाव था और वह भी हाथ न जाती थी ।^२ हेमू की यौन्यता और सूफ बूफ ने इस दशा में भी सेना के भोजन का प्रबन्ध रखा । किन्तु जब ईश्वर अपना कोप दिखाता है तो चारों ओर से मानव को घेर लेता है । बदली अफगान तो बागरी से लश्कर ले कर निकल गया । खर उधर अपने शत्रुओं को दबाता फिरता था । किले में एक अफगान सरदार भोजन और युद्ध प्रबन्ध के लिए आया । वह एक दिन उबरे दीपक लिए हुए हुजारों (कौठरियों) को देख रहा था कि कहीं चिराग का गुल फट पड़ा । कौठे बालूद के थे या पहले उनमें बालूद रह चुकी थी । पल भर में आधा किला उड़ गया । पत्थर की तिलें, महराबें उड़ उड़ कर दरिया पार कहीं की कहीं जा पड़ीं । हजारों आदमी और जानवर उड़ गए ।^३

पानीपत के युद्ध में हेमू को हरा कर अकबर ने बागरी को राजधानी बनाया और इस कारण दिल्ली बिल्कुल वीरान हो गई ।^४

रसखान ने अकाल और युद्धों से पीड़ित दिल्ली को देखा न गया । इस दुर्दशा को उन्होंने 'गुदर'^५ की संज्ञा दे दी । इसके बाद ही रसखान दिल्ली शीढ़ कर मथुरा आये ।

१. पौदार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ३१४ से उद्धृत

२. वाक्याते दारुल हुकूमत देहली, पृ० ३१६

३. वाक्याते दारुल हुकूमत देहली, पृ० ३११

४. वाक्याते दारुल हुकूमत देहली, पृ० ३११

५. प्रेम वाटिका, पद ४२

मृत्यु

इस महान् साहित्यकार की मृत्यु सं० १६७१ के बाद हुई। इनका मृत्यु स्थान मयुरा वृन्दावन को मानना पड़ेगा। इन्होंने स्वयं भी कहा है -

प्रेम निकैतन श्री बनहिं जाई गौवर्धन धाम ।

लक्ष्मी सरन बित्त बाहि के, जुल सख ललाम ॥१॥

इस दोहे के अनुसार रसखान गौवर्धन धाम के निकट रहने लगे। वहाँ उनकी मृत्यु हो गई। उनके मरने के बाद महावन में उनकी समाधि बनाई गई जो 'रसखान की कब्र' के नाम से प्रसिद्ध है।

वन्तःसाध्य और बाह्यसाध्य पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि रसखान का जन्म सं० १५६० में पिहानी में हुआ। बाल्यावस्था में इन्होंने वहाँ से दिल्ली को प्रस्थान किया। वहाँ सं० १६१३-१६१४ में हुए भीषण काल और गुदर को देख कर ये ब्रज चले गये। सं० १६३४ से १६३७ तक रामचरितमानस का पाठ हुआ। १६४० में बल्लभ-उम्पदाय के सम्पर्क में आये। उसके बाद काव्य-रचना की। सं० १६७१ के बाद उनकी मृत्यु हो गई।

द्वितीय अध्याय

रसखान की रचनाएं

कविवर रसखान का उद्देश्य ग्रन्थ रचना न होगा । वे तो भावमग्न हो कर हृदय के उद्गारों को लय के साथ अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण के गुण-गान के रूप में प्रस्तुत करते थे । भावनाओं की उमंग के साथ , कंठ से जो राग-रागिनियां निःसृत हुई उन्होंने कवित्त-खैंयों का रूप धारण किया । उनके कवित्त-खैंयों को सुन कर प्रेमीजन रसमग्न हो गया करते थे । कहा जाता है कि रसखान के कवित्त-खैंयों का प्रचलन उनके समय में ही होने लगा था । रसखान के कवित्त-खैंयों अपनी मधुरता के कारण इतने प्रसिद्ध हुए कि उनका नाम 'रसखानि' पड़ गया । जनता में 'रसखानि' सुनने की परम्परा हो गई । अतः रसपूर्ण रचना ही 'रसखानि' कहलार जाने लगी । रसखान के प्रेमी भक्तों ने लोगों से पूछताछ कर खर उखर से प्राप्त करके उनके पदों को संगृहीत करना प्रारम्भ कर दिया । भावुक कृष्ण भक्त रसखान ने स्फुट पद अधिक संख्या में गार होंगे , किन्तु जब तक प्राप्त पदों की संख्या बहुत अधिक नहीं है । यह एक साहित्यिक दुर्घटना है ।

रसखान-इतर कवियों का काव्य-संकलन

रसखान के खैंयों इतने मधुर और भाव-पूर्ण हैं कि पाठक सुनते ही मुग्ध हो उठता है । रसखान के काव्य के माधुर्य का प्रभाव यह पड़ा कि रसखान शब्द ही माधुर्य का प्रतीक हो गया और रसखान के नाम से मधुर रचनाएं होने लगीं ।^१

रसखान दोहावली

यह पुस्तक भार्गव पुस्तकालय काशी से प्रकाशित हुई है । यथार्थ यह है कि रसखान दोहावली रसखान के बहुत समय बाद की लिखी हुई रचना प्रतीत होती है ।

१. काशी नागरी प्रचारिणी मंडल के संग्रहालय में रसखान-उम्बन्धी सामग्री की खोज करते समय मुझे उनके नाम से दो रचनाएं प्राप्त हुईं - 'रसखान दोहावली' और 'रसखान कवितावली' ।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है -

रसखान दोहावली । अर्थात् स्वाल जवाब तथा प्रेम के दोहे ।

‘प्रथम मज भवानी बुभारि के, गौरी पुत्र गणेश - वाणी वर बुद्धि दीजिये,
कोटी सकल कलेश ।

रूपवती के दुश्न पर, के एक भये फकीर ।

कोई पर्वत पर तप कर कोई गंगा के तीर ॥

रसखान दोहावली में बरबी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य है जो रसखान की काव्य-
शैली के विपरीत है । उदाहरण के लिए -

स्वाल - रंज उठाया है बहुत , दिल में हुआ हिराज ।

दिल मेरा बेचैन है, दुई वल्ल की प्यास ॥

जवाब - दो दिन से तुम्हें इश्क है, हुआ तेरा यह हाठ ।

लानत ऐसे इश्क में, जीना तेरा मोहाल ॥

प्रश्नोत्तर रूप में प्रेमी एवं प्रेमिका का वातालाप है । शृंगार अश्लीलता की चरम सीमा
को लाँच कर बाजारूपन तक आ जाता है । रसखान जैसे उच्चकोटि के परम भक्त कवि
से इस प्रकार की पुस्तक-रचना की आशा करना ^{अनुचित} ~~सुखकर~~ है ।

इस सम्पूर्ण रचना में ‘रसखान’ नाम कहीं नहीं मिलता , ‘बुजान’ सम्बोधन
कहीं कहीं अवश्य दिखाई पड़ता है -

बलिहारी इस रूप की , बुनिये चतुर बुजान ।

वाके यौवन देखि के, कीन्हों श्याम स्वाल ॥^६

रसिक लाल तु बावला, कहती तुम्हें बुजान ।

विधि हरि हर गनपति सहित, सब सुरस है तुमाय ॥

रसखान के कवित्त जैयों की भाषा में और इन पदों की भाषा में भी बहुत अंतर
है । यहाँ उस्ते, बाजारू, अश्लील साहित्य के दर्शन होते हैं । स्वाल जवाब के बाद
‘प्रेम के दोहे’ शृंगार से कुछ दोहे मिलते हैं -

प्यारी यह मत जानियो, तुम बिछुड़े मोहि बैन ।

तुझे बन की लाकड़ी जुलगत है दिन रैन ॥

कान चहै बुनिबो सदा, सज्जी तेरो बैन ॥

बन्त में चिट्ठी पर लिखने के दोहे मिलते हैं। यहाँ भी साहित्यिक दृष्टा के दर्शन नहीं होते। पुस्तक का पूर्ण अवलोकन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना रसखान द्वारा रचित नहीं कही जा सकती।

रसखान कवितावली

यह पुस्तिका मार्ग्व पुस्तकालय काशी से प्रकाशित तीसरे पृष्ठों की छोटी सी रचना है। इसमें बिहारी, कृष्णकवि, लालकवि, दीनदयाल, ठाकुर, हरिश्चन्द्र, ग्वाल कवि, पद्माकर और कवि मंडन आदि के सरस पदों का संग्रह है। सरसता एवं रसिकता के कारण इस पुस्तिका का नाम 'रसखान कवितावली' रस दिया गया होगा। इस पुस्तक में रसखान का एक भी पद नहीं है।

संदिग्ध रचनाएं

संदिग्ध रचना से अभिप्राय रसखान की उन रचनाओं से है जिन पर किसी दूसरे कवि की रचना होने का भी संदेह किया जा सकता है।

अष्टयाम

जनवरी १९५२, कल्याण (गौरसपुर) के सन्तवाणी अंक में रसखान के नाम से अष्टयाम शीर्षक के अन्तर्गत २६ दोहे प्राप्त हुए हैं। इन दोहों की प्रामाणिकता विचारणीय है।^१ इसमें कृष्ण के प्रातः समय उठने से लेकर बंसी बजाने, गायें चराने, बन में विविध क्रीड़ाएं करने, गाय दुहने तथा शयन करने तक की दिनचर्या का व्यौरा निरूपण है।

इसकी भाषा इतनी सरस और प्रवाहमयी नहीं जितनी कि रसखान के अन्य दोहों की है। भावों में तथा भाषा में प्रौढ़ता तथा प्रांजलता न होकर तुक-बन्दी की प्रतीत होती है। इन खूबीस दोहों में से बीस (२०) दोहे नये हैं। ६ दोहे जुजान रसखान में भी मिलते हैं। यह कहना कठिन है कि यह रचना रसखान की है या नहीं।

१. कल्याण के सम्पादक से पत्र व्यवहार के बाद भी मैं यह जानने में असमर्थ रहा कि उन्हें यह रचना कहाँ से प्राप्त हुई अथवा रचना का स्रोत क्या है।

दान-लीला

गोपी-कृष्ण या राधा-कृष्ण संवाद के रूप में मिलती है। गुजान रसखान^१ से प्राप्त होने वाले दान-लीला-सम्बन्धी पद इन पदों के साथ नहीं पाये जाते, न भाव का और न भाषा के रूप में साम्य मिलता है। दान-लीला के ग्यारह छंदों में से एक भी छन्द मुक्तक-रूप में नहीं मिलता। रसखान की समीक्षित सवैया-रचना की और अधिक है। घनाक्षरी में तो उन्होंने कम लिखा है, किन्तु दान लीला में सवैया पाँच और घनाक्षरी छः हैं। रसखान अपने पदों में अपने नाम का उल्लेख करते हैं, किन्तु दानलीला के ग्यारह ११ पदों में केवल एक बार (दूसरे पद में) 'रसखान' शब्द का प्रयोग है जो कवि की छाप प्रतीत नहीं होती। अतएव इसके रसखान-रचित होने में शन्देह हो सकता है। दूसरी ओर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सौज-विवरण में रसखान के नाम से इसका उल्लेख है और हिन्दी की मध्यकालीन स्वच्छंद काव्यधारा के बन्धुतम अनुसंधायक आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे रसखान की प्रामाणिक रचना मान कर 'रसखानि-ग्रंथावली' में इसका समावेश किया है।

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखानि-ग्रंथावली' के कुछ पद ऐसे हैं जो दूसरे लेखकों द्वारा अन्य कवियों के नाम से उद्धृत हैं, उदाहरण के लिए—
 'चोर की चटक लटक नव कुंदल की, माँह की मटक नेह बांझि दिखाउरे।
 मोहन गुजान गुन-रूप के निधान फेरि, बाँसुरी बजाई तनु-तपन चिराउरे।
 रही बनवारी बलिहारी जाउं तेरी बाजु, मेरी कुंज बाई नैकु मीठी तान गाउरे।
 नंद के कस्तूर चितचोर मोर पंख वारे, बंसीवारे ताँवरे पियारे स्त बाउरे।'^२
 कुछ पाठ भेद के साथ शिवचिह्न उरोज में यह पद 'बादिल कवि' के नाम से मिलता है
 मुकुट की चटक लटक बिंबि कुंदल की, माँह की मटक नैकु बांझि दिखाउरे।
 यही बनवारी बलिहारी जाउं तेरी मेरी गैलकिनि बाई मैक गाइनि चराउ रे।

१. गु० २०, पद ३८, ३९, ४२, ४३, ४४, ४५

२. गु० २०, ७३

बादिल बुजान रूप गुण के निधान कान्ह बांसरी बजाई तन तपनि बुकाई रे।

नंद के किशोर चित चोर मोर पंखारे, वंशी वारे तांवरे पियारे हत बाउ रे।

यह पद प्रभुदत्त ब्रह्मचारी की पदावली में रागरत्नाकर से उद्धृत किया गया है।

चन्द्रशेखर पांडेय ने इसे अपने संग्रह में स्थान दिया। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी इसे रसखान द्वारा रचित माना है। इसी प्रकार निम्नलिखित पद भी रसनायक तालिब ज़ली बिलग्रामी के नाम से मिलता है।

जल की न घट मरै मग की न पग धरै

घर की न कछु करै बैठी मरै संसु री

एकै सुनि लोट गई एकै लोट-पोट मरै

एकनि के दृगनि निकसि जाय बांसु री

कहै रसखानि सौ ब्रज बनितानि बधि

बधिक कहाय हाय मरै कुलहांसु री।

करिये उपाय बांस डारिये कटाय

नाहि उपजैगौ बांस नाहि बाजै फेरि बांस री।^१

शिवसिंह सरोज में रेखांकित पाठ भेद के साथ यह पद निम्नप्रकार है -

जल की न घट मरै मग की न पग धरै। घर की न कछु करै बैठी मरै संसु री।

एकै सुनि लोटि गई एकै लोट पोट मरै। एकन के दृगते निकसि जाये बांसु री।

कहै रसनायक सौ ब्रज बनितानि बीज। बधिक कहाय हौई कुल हांसु री।

करिये उपाय बांस डारिये कटाय नाहीं उपजैगौ बांस नाहीं बाजो फेरि बांसुरी।।^२

‘राग रत्नाकर’ में भी यह पद रसनायक के नाम से दिया हुआ है जिसका प्रारम्भ

इस प्रकार से है - ‘तट की न घट मरे मग की न पग धरै’-----

तीसरी चरण में शुद्ध पाठ ‘कहै रसनायक सौ ब्रज बनितानि न बधि है। इस प्रकार

रसनायक को रसखान बना देना एक चमत्कारपूर्ण घटना ही हो सकती है। प्रभुदत्त

१. शिव सिंह सरोज, पृ० ११

२. पृ० २०, ५०

३. शिवसिंह सरोज, पृ० २५६ (सं० १६३४)

ब्रह्मचारी जी ने रागरत्नाकर^१ से निम्नांकित पद लेकर अपने संग्रह में शामिल कर लिया है-

मिचकूक तिहारे कहाँ ? बलि मुख ताला जहाँ
 संपनि की संगी ? कहूँ हूँ है दारि तर में
 ररी बहुरंगी बैल वारी कहाँ नाचत है
 कीन्हें तिर-भंगी कहूँ हूँ है ग्वाल गन में ।
 चाउर चबैया ? कहाँ हूँ है सुदामा पात
 विष की बहारी कहाँ ? पूतना के घर में ।
 तिन्यु बुता जानि मिली तर्कें तो तर्क करी
 गिरजा मतिव्यात जात फारा लिये कर में ।^२

इस कन्द में रसखान की छाप भी नहीं है और न ही भाव एवं भाषा की दृष्टि से यह रसखान रचित प्रतीत होता है। भाषा का माधुर्य और शानुप्राप्तिकता जो रसखान की प्रवृत्ति है, वह भी इसमें नहीं लगती।

प्रमुदत ब्रह्मचारी जी के संग्रह के अतिरिक्त अन्य किसी संग्रह में इस पद के दर्शन भी नहीं होते।

लैलिये फाग निरंक हूँ आज मयंक मुखी कहै भाग हमारी ।
 तेहु गुलाल दुजौ कर में पिचकारिन में रंग हिम मंह डारो ।
 भावै तुमोहि करो रसखान जू पांव परी जति घूघट टारो ।
 वीर की लौह हो देखि हो कैो अबीर तो जांस बनाय के डारो ।^३
 इस पद के दर्शन रसखान के किसी प्रामाणिक संस्करण में नहीं होते ।^४

१. राग रत्नाकर, पृ० ३७१ (श्रीकृष्णचन्द्र जी के कवित्त)

२. रसखान पदावली, पृ० ८३, पद १२४

३. स्वतन्त्र भारत होली विशेषांक, लखनऊ, ५ मार्च, १९५८ ई०

४. श्री पुल्लाल शर्मा 'उदंड' ने लखनऊ के 'स्वतन्त्र भारत' के होली विशेषांक (बुधवार ता० ५ मार्च १९५८ ई०) में इसे उद्धृत किया है। इस कन्द की प्राप्ति उन्हें कहाँ से हुई इसका उल्लेख वे अपने लेख में नहीं करते।

निम्नलिखित पद हिन्दी शब्द बागर के पृ० १३५३ भाग ३ पर बागर शब्द के वन्तगीत रसखान के नाम से उद्धृत किया गया है -

नन्द महर के बागर तन जब मेरे को जाय ।

नाटक कहुं गड़ि जायगी हित कांटौ मन पाय ॥

किन्तु डा० भवानी शंकर याज्ञिक जी के कथनानुसार यह दोहा वास्तव में रसनिधि कृत 'रतन खारार' का है । रसखान और रसनिधि के नाम में गड़बड़ हुई है ।

'गंगा' मासिक पत्रिका ^१ (गंगांक प्रवाह १ तरंग ६ ज्येष्ठ सं० १९५८) में रसखान के नाम से पं० रामदत्त मिश्र काव्य तीर्थ ने गंगा-महिमा-सम्बन्धी दो श्लोक प्रकाशित किये थे । गंगा-महिमा पर रसखान-रचित हर्षे हृन्द हिन्दी में प्राप्त हैं,^२ किन्तु उनकी कोई संस्कृत-रचना नहीं सुनी जाती । उम्मेद दोनों हृन्दों को रहीम रचित माना जाता है । मिश्र जी को ये श्लोक कहां से प्राप्त हुए, पता नहीं रसखान रचित मानने का क्या कारण है ।

निम्नांकित पद भी रसखान द्वारा रचित नहीं कहा जा सकता -

कैता है यह देश निगौरा । जग होरी ब्रज होरा ।

मैं जल जमुना भरत जात ही देखि बदन मेरा गौरा ।

मोर्ती कहै चलो कुंज में तनक तनक से होरा ।

परे बांखिन मैं होरा ।

जियरा देखि डरात सखी री लाज मरम की जोरा ।

का बूढ़े का लोग लुगाई, एक ते ढिटोरा । न काहु रों काहु को जोरा ।

मन मेरी हययी नंद के न सखि चलत लगावत जोरा ।

कहै रसखान सिखाई सखान रों , सब मेरा बंग टटोरा । न पावत करत निहोरा ।^३

१. स्वतन्त्र भारत, होली विशेषांक , लखनऊ ५ मार्च १९५८ ई०

२. ५० २० २१२

३. स्वतन्त्र भारत , लखनऊ १८ सितम्बर १९६०

यह पद रसखान के इन्दों के संग्रह तथा कीर्तन संग्रह में नहीं मिलता । श्री बल्लिेश मिश्र ने अपने 'ब्रज साहित्य में ब्रज भूमि' शीर्षक लेख में कहीं से प्राप्त कर 'स्वतन्त्र भारत' लखनऊ के वाश्विन कृष्णा १३ सं० २०१७ (रविवार १८ सितंबर १९६०) के अंक में प्रकाशित किया ।

'पद्माकर की काव्य साधना' में रसखान के नाम से एक पद मिलता है । जिसमें नायिका की रति-दृढ़ता अवलोकनीय है -

प्रीतम संग प्रवीन प्रिया रसकैलि प्रसंगन में बनुरागी ।

बुंभन वीं परिमन के विपरीत विलासन में निशि जागी ।

तेज परी बिलसै 'रसखानि' सबै सुख मानि धिरै रस पागी ।

मौद मयी मुक्तान के मंजुल काहे ते हार उतारन लागी ॥^१

बाबूरी गंगाप्रसाद सिंह को इस पद की प्राप्ति कहाँ से हुई, यह उन्होंने नहीं बताया । रसखान के किसी प्रामाणिक संग्रह में यह पद नहीं मिलता ।

याज्ञिक संग्रह

जून १९६१ में डाक्टर भवानी शंकर याज्ञिक जी के अनुग्रह से रसखान के कुछ पद प्राप्त हुए । कहा जाता है कि मया शंकर याज्ञिक जी का नागरी प्रचारिणी का हस्तलेख बस्ता नं० २२ भी भवानी शंकर जी के पास है जिसमें बनेक हस्तलेख हैं । वैसे भी भवानीशंकर जी के पास हस्तलिखित साहित्य का अच्छा भंडार है ।

भवानीशंकर याज्ञिक जी के अनुग्रह से प्राप्त पदों की संख्या लगभग चालीस है, जिसमें भक्ति सम्बन्धी, बाल लीला, रासलीला, मुरलीवादन, संयोग, वियोग होली दिवाली सम्बन्धी विभिन्न पद हैं ।^२ इन पदों की प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि नागरी प्रचारिणी खोज विवरण में भी मायाशंकर याज्ञिक जी का नाम है ।^३

१. पद्माकर की काव्य साधना, पृ० १३४

२. देखिये परिशिष्ट

३. पन्द्रहवां श्राविक खोज विवरण

मुझे यह पद भवानीशंकर जी के मसविदे (कापी) से प्राप्त हुए जो उन्होंने 'रसखान कवितावली' प्रकाशित करने के लिए बनाया था। मैं उनसे हस्तलिख देखने का वाग्रह किया तो उन्होंने बताया कि कुछ मास पूर्व गौमती में भयंकर बाढ़ आई और हस्तलिख उनकी भेंट हो गये। इन पदों में से अधिक रसखान के प्रकाशित पदों से, भाव तथा भाषा का साम्य रहते हैं। किन्तु कुछ का अर्थ ठीक नहीं बैठता। साथ ही भाषा तथा भाव की दृष्टि से वे रसखान के नहीं प्रतीत होते।^१

याज्ञिक जी की कापी के यह पद रसखान के किसी प्रकाशित संग्रह में नहीं मिलते। इन पदों को अप्रामाणिक कहना भी ठीक नहीं क्योंकि यह पद मायाशंकर जी द्वारा संगृहीत रसखान के पदों में से हैं। साथ ही पूर्णतया प्रामाणिक भी किसी सबल वाधार के बिना नहीं कहा जा सकता।

विभिन्न ग्रन्थों में संकलित रसखान की रचनाएं

रसखान के काव्य की खोज के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पंडित प्रताप-नारायण मिश्र, बाबू राधाकृष्ण दास, पंडित राधाचरण गोस्वामी आदि ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु पंडित किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा संगृहीत सामग्री से अधिक उन्हें प्राप्त न हो सका। अन्य सज्जनों ने भी प्रयास किया। लखनऊ से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सुधा' (वर्ष १ खंड २ संख्या ५) में रसखान शतक, तथा रसखान के इन्दों की प्राप्त करने के लिए एक विज्ञप्ति भी प्रकाशित हुई थी परन्तु उस समय कुछ नई सामग्री हाथ न लगी^२ रसखान की रचनाओं के अब तक लगभग नौ संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनकी चर्चा अपेक्षित है।

रसखान शतक

रसखान की रचनाओं को सर्वप्रथम प्रकाशित करने का प्रयास गोस्वामी किशोरीलाल जी ने किया। उन्होंने रसखान के कवित्त सदैयों का संग्रह करके

१. देखिये परिशिष्ट १।

२. देखिये पौदार अभिनन्दन ग्रन्थ में डा० भवानी शंकर याज्ञिक का रसखान सम्बन्धी लेख।

‘रसखान शतक’ नाम से स्या विलास प्रेस बांकीपुर से प्रकाशित कराया । इस संग्रह के पदों की संख्या में वृद्धि करके उन्होंने ‘सुजान रसखान’ के नाम से भारत जीवन प्रेस काशी द्वारा सन् १९१६ में छपाया । और उसमें कुल कवित्त, सवैये, दोहे एवं खोरठे मिला कर १३३ श्रुतों को संगृहीत किया । गौस्वामी जी ने इसके पहले सन् १९०७ ई० में वहीं के ‘हित चिंतक’ यंत्रालय से प्रेम वाटिका का भी प्रकाशन कराया था।^१ भवानी शंकर याज्ञिक जी के कथनानुसार गौस्वामी जी ने कानपुर के पंडित प्रतापनारायण मिश्र जी से संपादित करा कर १०५ श्रुतों का यह संग्रह प्रकाशित कराया । तदुपरान्त ‘सुजान रसखान’ सं० १९४८ में और दूसरी बार सं० १९७६ में प्रकाशित कराया । सं० १९४८ में उन्हें प्रेम वाटिका की एक प्रति मिली जिसे उन्होंने दो बार छपाया ।^२ गौस्वामी जी का संग्रह हिन्दी जात में प्रथम होने के कारण बहुत महत्वपूर्ण है । यद्यपि इसमें उन्होंने पदों को क्रमिक ढंग से नहीं रखा है । वे संख्या देकर एक के बाद दूसरा पद्य रखते चले गये । उनके संग्रह में अन्य संग्रहों से पाठ-भेद भी मिलते हैं ।

रसखान पदावली

रसखान पदावली नामक एक संग्रह सं० १९८६ में हिन्दी प्रेस प्रयाग से श्री प्रभुचंद्र ब्रह्मचारी जी ने प्रकाशित कराया । इस संग्रह में ‘प्रेम वाटिका’ भी सम्मिलित है । ब्रह्मचारी जी के इस संग्रह में १३४ पद हैं जबकि गौस्वामी जी के ‘सुजान रसखान’ में १२२ कवित्त सवैये हैं । ब्रह्मचारी जी ने इन अधिक पदों की खोज ‘रागरत्नाकर’ से की है । इन सवैयों की भावशैली से रसखान शृंगारी अधिक प्रतीत होते हैं । उन्होंने विस्तृत भूमिका भी लिखी है जिसमें रसखान के जीवन पर पूर्ण प्रकाश डाला है । साथ ही काव्यालोचना भी भावपूर्ण है । प्रवचन में उनकी भावुकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है। वे रसखान की चर्चा कम भावुकता का राग अधिक बलापते हैं ।

१. मध्यकालीन प्रेम वाचना, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १५४

२. पौदार अभिनन्दन ग्रन्थ, डा० भवानीशंकर याज्ञिक, पृ०

वन्य संग्रहों से तुलना करने पर पाठ-भेद तो मिलता ही है साथ ही पदों की पुनरावृत्ति के भी दर्शन होते हैं। इसमें ब्रह्मचारी जी का दोष नहीं। लगभग सभी संग्रह कर्तवियों के संग्रहों में यह अपवाद कुछ हेर फेर के साथ मिलता है। प्रमुदच ब्रह्मचारी जी के संग्रह में निम्न पदों की पुनरावृत्ति इस प्रकार है -

एक समे एक गोपवधू भई आवरी नेकु न वंग संभारै ।

माय सुगाय के टोना तों दूँढति वासु सखानी सयानी पुकारै ।

यों रसखानि कहै सिंगरी ब्रज वान की वान उपाय विचारै ।

कोउ न मोहन के करतैं यह बैरिनि बाँसुरिया गहि छारै ।

जाजमटू एक गोप वधू भई आवरी नेकु न वंग संभारै ।^१

मात बघात न देवनि पूजन वासु सयानी सखानी पुकारै ।

यों रसखानि धिस्यौ सिंगरी ब्रज कौन को कौन उपाय विचारै ।

कोउ न कान्ह के कर तैं वहि बैरनि बाँसुरिया गहि जारै ॥

जादिन ते वह नंद को खोहरौ या वन धेनु चराई गयो है ।

मीठिही ताननि गोधन गावत बेनु बजाइ रिफाई गयो है ॥

वादिन तों कहु टोना तों के 'रसखानि' हिय में समाई गयो है ।

कोऊ न काहु की कानि करै सिंगरी ब्रज वीर विलाइ गयो है ॥

+ + +

र तजनी वह नंद को साँवरौ या वन धेनु चराई गयो है ।

मोहिनि ताननि गोधन गावत बेनु बजाइ रिफाई गयो है ।

ताही घरी कहु टोना तों के 'रसखानि' हिय में समाई गयो है ।

कोऊ न काहु की बात सुनै सिंगरी ब्रज वीर विकाई गयो है ।^२

यह मूल केवल ब्रह्मचारी जी तथा किंकर जी के संग्रह में ही ऐसा नहीं है, लगभग समस्त संग्रहों में है।

१. रसखान पदावली, पृष्ठ २६

२. रसखान पदावली, पद ६२, पृष्ठ ५०

कंचन मंदिर उंचे बनाई के मानिक लाय सदा फलकावै ।
 प्रातहि ते उगरी नगरी गुन मोतिन ही की तुलानि तलावै ।
 प्रजानि प्रजापति तौ बन संपति तौ मथ वाहि लजावै ।
 एसी भयो तौ कहा 'रसखानि' जु सांवरे ग्वाल तौ नेह लगावै ।

+

+

+

कंचन मंदिर उंचे बनाई के मानिक लाय सदा ललकैयत फलकैयत ।
 प्रातहि ते उगरी नगरी गुन मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
 जयपि दीन प्रजानि प्रजा तिनकी प्रभुता मथवा ललकैयत ।
 एसी भयो तौ कहा 'रसखानि' जु सांवरे ग्वाल तौ नेह न लैयत ॥

इस पद में विशेष अन्तर नहीं केवल 'फलकावै' और फलकैयत, तुलावै और तुलैयत तथा लजावै और ललकैयत का भेद है। ब्रह्मचारी जी ने राग रत्नाकर से भी रसखान के कुछ सवैये खोज कर अपने संग्रह में सम्मिलित किये हैं। उन्होंने पदों को किसी क्रम विशेष से नहीं संजोया है।

रसखान रत्नावली

कवि किंकर जी ने बालोक पुस्तक माला के प्रथम पुष्प के रूप में 'रसखान रत्नावली' नामक रसखान का एक संग्रह भारतवासी प्रेस दारागंज से सन् १९४१ ई० में प्रकाशित कराया। इस संग्रह में संक्षिप्त भूमिका के पश्चात् रसखान की जीवनी संक्षेप में मिलती है। इस पुस्तक में एक सौ बीस (१२०) कवित्त सवैये हैं तथा प्रेम वाटिका को मिला कर चौंसठ दोहे हैं। किंकर जी ने पहले कवित्त उसके बाद सवैये तथा दोहे लिखे हैं। अन्य संग्रहकारी की भांति अपने 'सुजान रसखान' तथा प्रेम वाटिका नाम भी नहीं दिया। अन्यत्र संग्रहों के खोरेखों को भी फलट कर दोहे बना दिये। पहले प्रेम वाटिका के दोहे लिखे हैं बाद में सुजान रसखान में पाये जाने वाले दोहों को स्थान दिया है। रसखान के दो घोर शृंगारी पदों^६ को भी

१. बागन काहे को जाबो पिया, घर बैठे ही बाग लगाय दिखाऊं ।

एही जनार सी मौर रही, बहिया दोउ बपे सी डार न्वाऊं ।

वपने संग्रह में स्थान नहीं दिया । भक्त कवि किंकर रसखान को घोर शृंगारी कवि के रूप में स्वीकार न कर सके ।

अन्य संग्रहों में एक पद होली का भी मिलता है । किंकर जी ने उसे भी वपने काव्य में स्थान नहीं दिया ।

रसखान और उनका काव्य

इस निबन्ध में रसखान के संक्षिप्त परिचय के बाद तत्कालीन काव्य धारा का स्वरूप, रचना तथा वर्ण्य विषय, भक्ति भावना, काव्य भाषा हिन्दी साहित्य में स्थान के पश्चात् रसखान के १३५ पद्य संगृहीत किये हैं । ये पद्य पहले संग्रह कर्तावों में भी मिल जाते हैं । इनमें पाँडे जी ने समस्त संग्रहों को सामने रखकर संयुक्त पाठ की निबन्धना की है । उसके पश्चात् प्रेम वाटिका के अन्तर्गत पचास दोहे रखे हैं । उन्होंने १७ दोहों सौरठों को लिया है । अन्त में 'धमार' होली का भी एक पद्य है ।

पाँडे जी ने रसखान के कवित्त सवैयाँ का विषयानुसार विभाजन नहीं किया है । एक के बाद दूसरा पद्य रखते चले गये हैं । रसखान के काव्य पर की गई जालौचना एक विद्यार्थी का श्रद्धान्ध मात्र है । पाठ भेद का भी उन्होंने बल से निरूपण नहीं किया । सबसे मजे की बात यह है कि उन्होंने सहायक ग्रन्थों की सूची भी नहीं दी ।

रसखान का वमर काव्य

दुर्गाशंकर मिश्र जी ने सन् १९५८ में पवन प्रिंटिंग प्रेस लखनऊ से 'रसखान का

ज्ञातिन में रस के निबुवा बरु घूँघट सौल के दास चलाऊँ ।

टांगन के रस के बसके रति फूलनि की रसखानि लुटाऊँ ।

बंगनि बंग मिलाइ दौड रसखानि रहे लिपटे तरु जाहीं ।

संगनि संग बनंग को रंग सुरंग जनी पिय दे गलबाही ।

बैन ज्यों भैन सुरेन समेह की लूटि रहे रति अंतर जाहीं ।

नीबी गहै कुच कंचन कुंभ कहै बनिता पिय नाही जु नाही ॥

पृ० १०, १२१, १२२

अमर काव्य' नामक एक संग्रह प्रकाशित कराया । इस पुस्तक के तीन संह हैं ।

प्रथम संह 'अन्तर्दर्शन' के अन्तर्गत रसखान के परिचय के पश्चात् उनकी कृतियाँ, भाषा, अलंकार, भाव, रस, प्रेम तत्त्व, भक्ति भावना, वर्णन शैली के विषय में विचार प्रकट किये गये हैं ।

द्वितीय संह के अन्तर्गत रसखान के काव्य को लिया है । एक ती बीस कवित्त सवैये हैं जिनका विभाजन इस प्रकार है - भक्ति भावना, हरि शंकर, शंकर, गंगागरिमा, बालकृष्ण, कालिय दमन, कृष्ण लीला, पुरली-माधुरी, होली, कंस वध, विरह वर्णन । इसके पश्चात् दोहावली के अन्तर्गत प्रेम वाटिका के पचास दोहे हैं ।

तृतीय संह परिशिष्ट के अन्तर्गत रसखान के विषय में उन्होंने विभिन्न विद्वानों के मत दिये हैं जिनमें स्वर्गीय डा० श्यामसुन्दर दास, बाबाय रामचन्द्र शुक्ल, वियोगी हरि, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, परशुराम चतुर्वेदी, डा० लक्ष्मी-सागर वाष्णीय एवं हंसराज अग्रवाल आदि उल्लेखनीय हैं ।

रसखानि ग्रन्थावली

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रसखानि ग्रन्थावली नाम से रसखान के काव्य का सम्पादन किया । अब तक प्राप्त संग्रहों में यह उत्तम संग्रह है । सं० २०१० में 'बाणी विज्ञान भवन' से इसका प्रकाशन हुआ । इसका दूसरा संस्करण सं० २०१६ में प्रकाशित हुआ ।

इस संग्रह में अन्य संग्रहों से अधिक पद मिलते हैं । इसमें २१४ कवित्त-सवैये संगृहीत हैं । ५३ दोहों की प्रेम वाटिका के साथ साथ ११ पदों की 'दान लीला' भी मिलती है जिसके दर्शन अन्यत्र नहीं होते । प्रकी णक के अन्तर्गत दो पद होली के एवं सगुनीती मिलती है । दान लीला और प्रकी णक के पद मिश्र जी के अनुसंधान का परिणाम है ।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी का यह संग्रह प्रत्येक दृष्टिकोण से पूर्ण एवं उत्तम संग्रह कहा जा सकता है । उनका यह परिश्रम हिन्दी-जगत् में सराहनीय है । इस संग्रह की प्रस्तावना में मध्यकालीन स्वच्छन्द काव्य धारा पर २४ पृष्ठों में

प्रकाश डाला गया है। लगभग आठ पृष्ठों में मियां रसखान की जीवनी तथा उनके समय पर विचार व्यक्त किये गये हैं। उसके उपरान्त कवित्त सवैर्यों को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है जिसमें भक्ति, बाल लीला, गीतारण, बीर-हरण, कुंज लीला, रास लीला, पनघट लीला, दान लीला, बन लीला, गौरस लीला, राधा रूप-कृष्ण, वय सन्धि सुकुमारता, वंशी, पूर्वाग, अफिलाष, प्रेम माधुरी, प्रेम भाव, कृष्ण रूप माधुरी, चैतावनी, प्रेम लीला, दधि दान, उलाहना, सपत्नी भाव, मिलन, वियोग, चौपड़, रिफाना, मानिनी, प्रिया विदग्धा, सुरत, सुरतांत, शुद्ध शृंगार, मुगल जोड़ी, होली, ब्रमरगीत, हरिशंकर, फल-श्रुति आदि प्रसिद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त लगभग प्रत्येक पद में पाठ-भेद का निरूपण भी उन्होंने अपने सामने अनेक हस्तलिखित प्रतियां रखकर पाद टिप्पणी में किया है। कठिन शब्दों के अर्थ भी दिये हुए हैं। पाठकों की सुविधा के लिए अन्त में प्रतीकानुक्रमण भी रखी है।

रसखान जीवनी और कृतित्व

दिसम्बर सन् १९६२ में देवेन्द्रप्रताप उपाध्याय ने बानन्द पुस्तक भवन से इस पुस्तक का प्रकाशन कराया। यह पुस्तक उनकी २५० २० की धीसिस का किंचित परिवर्तित रूप है। पूरी पुस्तक सुविधा की दृष्टि से तीन खण्डों में विभाजित की गई है। जीवनी खण्ड में कवि से सम्बन्धित अब तक की सुलभ सामग्री को एकत्र करके उन पर तार्किक दृष्टि से विचार किया गया है।

द्वितीय खंड (रचना खंड) कवि की रचनाओं से सम्बन्ध रखता है।

तृतीय खंड (बालोचना खंड) में परम्परा और तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के अन्तर्गत रसखान की कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अन्त में रसखान का साहित्य भी दिया हुआ है जो पं० विश्वनाथ जी की ग्रन्थावली के आधार पर है। इसमें सुजान रसखानि के कवित्त सवैर्यों को अलग किया है। २६ दोहों के अष्टयाम को भी इन्होंने कल्याण के संतवाणी अंक से

लेकर उद्धृत किया है ।

खोज रिपोर्ट और रसखान की रचनाएं

नागरी प्रचारिणी सभा की चार^१ खोज रिपोर्टों से भी रसखान के ज्ञान पर प्रकाश पड़ता है ।

बारहवां श्राविक विवरण

इस विवरण के आधार पर रसखान द्वारा नागरी लिपि में लिखित ५ सवैया का पता चलता है । ये सवैया बीस पन्नों पर हैं । उनकी प्राप्ति वैद्य संत बरखी सिंह से गोदावा (बहराख) में होती है । इन सवैया का प्रारम्भ रसखान के इस प्रसिद्ध सवैया से होता है -

या लकुटी बरु कामरिया पर राज तिहुं पुर को तजि डारों ।
बाठ^२ सिद्धि नवीं निधि को सुख नंद की गाय चराई बिचारों ॥
रसखानि कबै इन नैनन तें ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारों ।
कौटिन्ह र कलघौत के घाम करील के कुंज ऊपर वारों ॥

इस रचना का अन्तिम सवैया यह है -

बजी है तू आज कसक भरी जुनि के वृषभानु कुमारि न जी है ।
नजीहै कदाचित कामिनी कौजु पै कान में जाह अचानक कपी है ।
पीहै विदेस से देस न आवत मेरी ही देह को मन सजी है ।
सजी जुहै मन कहा वसु है ब्रज बैरिनि वासुरी फेरि बजी है ।

पन्द्रहवां श्राविक विवरण

इस विवरण के आधार पर रसखान द्वारा लिखित कुछ पद माया शंकर जी याज्ञिक (अधिकारी गोकुलनाथ जीका मंदिर) गोकुल मथुरा के तीजन्य से नागरी लिपि में प्राप्त हुए हैं । इन पदों का प्रारम्भ रसखान के इस पद से होता है -

१. बारहवां श्राविक विवरण १९२३ से १९२५ तक
२. पन्द्रहवां श्राविक विवरण १९३२ से १९३४ तक
३. सोलहवां श्राविक विवरण १९३५ से १९३७ तक
४. अठारहवां श्राविक विवरण १९४१ से १९४३ तक

बलियां बलियां जी उकाय मिलाय छिलाय रिफाय हिय भरिबो ।
 बतियां बित बोरण की रस बाल चरित्र उच्चार बो ।
 रसखानि के बानि सुधा भरिबो अघरान पै त्यों अघरा धरि बो ।
 हस्तने अब मेन के मोहन जंत्र पै मन्त्र बली कर जी करिबो ॥

इस रचना का अन्तिम पद यह है -

जबते इन सौत स्वागनि ने मुख सों मुख जोरि लियो रसरी ।
 नित धौल रहे अघरानि धरी नित गावत गावत है मिय के जररी ॥
 मधुरे मधुरे गुर बाजत हैं इन प्रान लिय अबके कररी ।
 हमती ब्रज की बलिबो ही तज्जी ब्रज वैरिन बाधुरी तु बसरी ।

सोलहवां श्लोकाधिक विवरण

इस विवरण के आधार पर रसखान की नई रचना ककहरा रसखान का पता चलता है । इसके इन्दों का प्रत्येक चरण नागरी अक्षरों के क्रम से आरंभ होता है । इसका विषय प्रेम है जिसके लिए कवि विस्थात है । परन्तु प्रति में न तो रचना काल ही दिया गया है और न ही लिपिकाल । रचयिता के सम्बन्ध में कोई भी विवरण उपलब्ध नहीं है । अनुमान से ही यह रचना रसखान की कही जाती है ।

इस विवरण के आधार पर ही यह ज्ञात होता है कि इसकी रचना रसखान ने महावन में की थी । यह रचना २२ पृष्ठों पर आधारित नागरी लिपि में प्राचीन रूप में मिलती है । इसका प्राप्त स्थान - दुर्गा प्रसाद मट्ट, ठाठ दरवाजा मथुरा बताया जाता है । इस रचना का प्रारम्भ इस पद से होता है -

‘अपि कहा करि कै कक्षिौ वृषभान लली सों लला डग जोरत ।
 ता दिन ते अबुजान की धार रही नहीं जयपि लोग निहोरत ।
 बेगि बली रसखान बलाय ली क्यों अभिमान न माँह मरौरत ।
 प्यारे पुरन्दर होर न प्यारी अबै पल बाधक में ब्रज बोरत ।
 एक समै एक ग्वालनि के ब्रज जीवन पैलत दिष्टि परयो है ।
 बाल प्रवीन उही करि कै उरकाय के मोहन चरि धरयो है ॥

पौ रस ही रस ही रसखानि उबी अपनी मन भायो करयो है ।

नंद के लाडलै डांकि रे सीस दहा मेरी गोबर हाथ भरयो है ।

अन्तिम पदों का प्रारम्भ त, ह से होता है -

सास वही बरजी बिटिया जु बिलौके बलीक लगावत है ।

मोसु कहै जु कहूं वह बात कहीं यह कौन कहावत है ।।

चाहत काहु के मु - बढयो रसखानि भुके भुक जावत है ।

जबते वह ग्वाल गली में बच्ची तब से मोहि नाच नचावत है ।

हेरति बार ही बार उतै तुब बावरी बाल कहां धौ धरेगी ।

जो कहूं रसखानि लसै फिरि क्यों सन वीर री धीर धरेगी ।

मानि है काहुं की कानि नहीं जहूं रसखानि लसै फिरि क्यों धरेगी।

यातै कहूं तिस मानि मटू यह होनि तैरे पैर परे गी ।

इस रचना में राधा कृष्ण तथा अन्य उल्लेखों का शृंगार रसपूर्ण वर्णन है । ककार आदि क्रम से ह तक कृष्ण और गोपियों की प्रेमलीला एवं शृंगार का वर्णन है । यदि यह ग्रन्थ प्राप्त हो जाए तो साहित्य में एक अभाव पूर्ति हो जाएगी ।

बठारखाना शैलीय विवरण

इस विवरण का सम्पादन पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया है । इस विवरण के आधार पर रसखान की दो रचनाओं का पता चलता है - तुजान रसखान तथा दान लीला ।

'तुजान रसखान' की प्राप्ति बार्थ भाषा पुस्तकालय काशी नागरी प्रचारिणी सभा कम्पस बनारस में जयपुर से जाई पुस्तकों में होती है । इसकी लिपि नागरी है । इस रचना के लगभग समस्त पद 'रसखानि ग्रन्थावली' में पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं । इस रचना का प्रथम पद इस प्रकार है -

गाइ दुहाइन यावै कह न कहै यह मेरी गरी निकल्यो है ।

धीर समीर कालिन्दी के तीर बस्यो रहे बाज ही डीठि परयो है ।

जा रसखान बिलोकति ही सखा डीर रांग वी बांग ढरयो है ।

गावु घेरत हेरतु वी पर फेरतु टेरतु जानि बरयो है ।

अन्तिम पद -

तोई है रास में नै तक नाचि कै नाच नचायो किताँ सबको जिन ।

बार है री रसखानि किते मनुहारिन किते मनुहारनि तूधै चितौ

तन ही क्षि।

तो मै धौ कौन मनोहर भा उविलौकि है बस हाहा करै किन ।

बाँतर प्राये मिलै न मिलै फिरि नंदको मोहो कनो डो करै किन ॥

इसी खोज विवरण में दूसरी पुस्तक 'दान लीला' है । इसका रचना-स्थान

वृन्दावन कहा जाता है । इसकी प्राप्ति म्यूनिसिपल म्यूजियम ज्वाहारबाद से हुई

है । इस 'दानलीला' सम्बन्धी ग्यारह (११) पद हैं । यह रचना भी 'रसखानि' ग्रन्थावली में प्रकाशित हो चुकी है ।

निष्कर्ष

रसखान सम्बन्धी विभिन्न ग्रन्थों और आलोचना कृतियों के सूक्ष्म अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उनकी प्रामाणिक रचनारं केवल तीन हैं - सुजान रसखान, प्रेम वाटिका, दमनलीला । यह रचनारं पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखानि (ग्रन्थावली)' में संगृहीत हैं । अष्टयाम उनकी प्रामाणिक कृति नहीं है । याज्ञिक संग्रह से प्राप्त पद संदिग्ध हैं । अतएव उपर्युक्त तीन रचनाओं के आधार पर ही रसखान के काव्य और भक्ति भावना का विवेचन समीचीन है ।

तृतीय अध्याय

रसखान के काव्य का वर्ण्य-विषय और उसका वर्गीकरण

रसखान के काव्य के आधार, भक्तजनों के गले के हार, भगवान श्रीकृष्ण हैं। उन्होंने उनकी ही लीलाओं का गान किया है। उनके ही निकट सम्बन्ध रखने की इच्छा प्रकट की है। उनके ही स्वरूप का मार्मिक चित्रण किया है। उनकी ही भक्ति की गई है। केवल इतना ही नहीं तत्त्वयुक्त के स्वरूप को भी कृष्ण के माध्यम से प्रकट किया गया है।

सुविधा की दृष्टि से रसखान के काव्य के वर्ण्य-विषय को तीन सण्डों में विभाजित कर के उस पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है।

(सण्ड ७) कृष्ण लीलाएं

लीला का सामान्य अर्थ खेल अर्थात् कृष्ण (प्रभु) का खेल है। यह खेल ही सृष्टि माना गया है। सृष्टि का अर्थ रचना है। व्यापक रूप में सृजन एवं ध्वंस दोनों ही इसके अंग हैं। कृष्ण लीला और आनन्दवाद एक दूसरे से सम्बन्धित हैं जिन्होंने लीला को पहचान लिया है उसने आनन्दधाम को पहुँच हरिलीला के दर्शन कर लिये। बल्लभाचार्य जी ने इस लीला में भाग लेने को मोक्ष से भी बढ़ कर माना है।^१ अनासक्त पुरुष अपनी शक्ति प्रकृति के साथ क्रीड़ा कर रहा है। यह पुरुष ही कृष्ण है और प्रकृति राधा है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनासक्ति योग के अनुसार यदि प्रत्येक मानव क्रीड़ा करने लगे, तो वह पुरुष-प्रकृति, राधा-कृष्ण के इस शाश्वत खेल में, भाग लेने का अधिकारी हो जाता है। वैष्णव

१. आचार्य बल्लभ ब्रह्मूत्र ४-४-१४ के भाष्य में पृष्ठ १४१३-१४१४ पर लीला को कैवल्य और परम मुक्ति (मुक्ति से भी बढ़कर) बताते हुए लिखते हैं - "लीला विशिष्टमेव शुद्धं परं ब्रह्म न कदाचित् तद्वर्ति" इत्यर्थः। तेन च (लीलायाः) नित्यत्वम्। अस्मा लीला स्व कैवल्यम्, जीवानां मुक्तिरूपम्, तत्र प्रवेशः परमा मुक्तिरिति।

भक्ति में यह लीला प्रमुख स्थान रखती है , किन्तु इसका विशेष सम्बन्ध पुष्टि-मार्गीय भक्ति है । पुष्टिमार्गीय भक्ति का मुख्य लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति नहीं , प्रभु के प्रेम की प्राप्ति है ^१ यह प्रेम भगवत्कृपा से साध्य है । इसकी प्राप्त कर भक्त वैकुण्ठ जाना नहीं चाहता । वैष्णव कवियों ने इस प्रेम की प्रशंसा की है । इसके द्वारा कृष्ण से भेंट होती है । बिना प्रेम के हरि लीला के दर्शन असम्भव हैं । वास्तव में विश्व रचना प्रभु की शाश्वत लीला है । प्रभु लीला करना चाहता है इसलिए विश्व अस्तित्व में आता है । पुष्टिमार्गीय भक्ति के स्वरूप में हरिलीला के समावेश की नवीनता है । वेद और पुराण साहित्य में भी हरिलीला के दर्शन होते हैं। श्रीमद्भागवत के दशम एवं एकादश स्कंधों में इस लीला का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है । ऋषिदास के कवियों ने भी लीला-गान को विशेष महत्व दिया । रसखान ने कृष्ण लीलाओं की चर्चा की है । उनके अनुसार हरिलीला रसमयी है, वानन्दमयी है । रसखान के लीला वर्णन की व्याख्या करते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि उन्होंने किसी परम्परा का अनुसरण नहीं किया । लीलागान करते हुए भी वे पुष्टिमार्गी या वैष्णव कवि नहीं हैं । वे प्रेम के स्वच्छन्द गायक थे , प्रेम की अभिव्यक्ति उन्होंने कृष्ण को आधार बना कर की । इसलिए कृष्ण लीलाओं का निरूपण स्वाभाविक ही था । वास्तव में रसखान का उद्देश्य लीला-सम्बन्धी किसी दर्शन की व्याख्या नहीं था । इसी कारण वैष्णव भक्ति से प्रभावित होते हुए भी उनके काव्य में पुष्टिमार्गीय भक्ति का पूर्णतया निरूपण नहीं है । कृष्ण की अनेक लीलाओं के दर्शन उन्होंने अपने काव्य में कराये हैं । ये लीलारं साधारण मानव की क्रीड़ा के समान प्रतीत होता है , कहीं-कहीं आध्यात्मिक फलक भी मिल जाती है । रसखान के काव्य में बाललीला, गोचरण लीला, कुंजलीला, रासलीला, पनघटलीला, दानलीला, वनलीला, गौरस लीला आदि के दर्शन होते हैं । रसखान की रसि लीलागान में भी अधिक नहीं रही । हर लीला के सम्बन्ध में प्रायः दो या तीन पद्यां की रचना की है । इस वर्णन में उन्होंने कृष्ण को शृंगारी पुरुष के रूप में अधिक देखा । वे सूरदास की भांति

१. देखिये - ब्रह्म सूत्र अध्याय ३, पाद ३, सूत्र ३७ का अणु भाष्य, पृ० २१००

वनन्य भाव से श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण नहीं करते किन्तु उनका धानिध्य अवश्य चाहते हैं। उन्होंने पुष्टिमार्गीय सेवाविधि का पालन भी नहीं किया न ही मंगलाचरण शृंगार, म्वाह, राज्याग, उत्थान, योग, संध्या, बारती और शयन का उन्होंने वर्णन किया। वषात्सव की सेवाविधि में षड्भक्तुर्वी के उत्सव, वैदिक पर्व, अवतार लीलाओं का भी निरूपण नहीं किया। चुरदास ने जिस भक्ति भावना से हरि लीला का गान किया, रसज्ञान के काव्य में उसका जभाव है।

बाल लीला

यद्यपि रसज्ञान ने कृष्ण के बाल लीला-सम्बन्धी कुछ ही पदों की रचना की, किन्तु उनके ये पद भक्तजनों के कंठहार बने हुए हैं। वे प्रायः गाया करते हैं - 'काग के भाग बड़े उज्जनी हरि हाथ लों ठै गयो माखन रौटी'।^१ यद्यपि रसज्ञान को कृष्ण के मानवीय स्वरूप ने अधिक आकर्षित किया किन्तु यहाँ वे उनके ब्रह्मत्व को न भुला सके। यहाँ हरि शब्द का प्रयोग बहुत ही सार्थक है। काव्य के भाग्य की सराहना में कृष्ण के ब्रह्मत्व की ओर संकेत किया गया है। चुरदास के 'जाको दूरि दस देवनि कोँ, सो बांध्याँ ज्योमति ऊखल धरि'^२ की सी ध्वनि रसज्ञान के उपर्युक्त पद में मिलती है।

रसज्ञान ने कृष्ण को एक शिशु के रूप में दिखाया है। उनके लिए 'बाँकी' शब्द का प्रयोग बड़ा व्यंजक है। इस पद में नारी मनोभाव की ओर भी पूर्ण संकेत मिल जाता है -

बाज गई कुती मोर ही हों रसज्ञानि रई बहि नंद के मोनहिं ।
बाको जियो जुग लाख करोर ज्योमति को सुख जात कह्यो नहिं ।
तेल लगाई लगाई के जंजन भाँहि बनाइ ~~नगर~~ छिठोनहिं ।

१. जु० २०, २४

२. ~~जु० २०, २४~~ चुरसागर पद, १०१०

ढालि ह्मेलनि हार निहारत बारत ज्यौं चुनकारत झौनहिं ।^१

दूसरे पद में रसखान ने कृष्ण को खेलते हुए सुन्दर बालक के रूप में चित्रित किया है -

धूरि भरे अति सौमित स्यामजू सैखी बनी छिर सुन्दर चौटी ।

खेलत सात फिरँ अंगना पग पैजनी बाजति पीरी कछौटी

वा इवि को रसखान विलोकत बारत काम कला निज कोटी

काग के भाग बड़े सबनी हरि-हाथ उँ लै गयो माखन रौटी ।^२

रसखान के बाललीला-सम्बन्धी पद बहुत ही सुन्दर हैं। बाल-स्वभाव का चित्रण हृदयहारी है ^{१५०}रिझूल में भरे आंगन में खेलते-खाते हुए फिर रहे हैं। घुंघरू बज रहे हैं। हाथ में माखन रौटी है। कौजा जाता है, झीन कर उड़ जाता है। प्रायः बच्चों के हाथ से कुछ झीन कर ले जाना काग की वादत होती है। इस सत्य को काव्य भाषा में ढाल कर रसखान ने बड़ा हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है।

गौचारण लीला

कृष्ण बड़े हुए। न्वालों के साथ गायें चराने बन में जाने लगे। कृष्ण की हर अदा पर दिवानी गौपियाँ उनके गौचारण से प्रभावित हुए बिना किस प्रकार रहतीं। रसखान ने गौचारण लीला को बहुत सुन्दर ढंग से दर्शाया है।

कृष्ण धीर समीर कालिन्दी के तीर सड़े हुए गजरां चरा रहे हैं। गजरों घेरने के बहाने गौपियाँ से आकर बड़ जाते हैं -

“गजर दुहाई न या पै कबहुं, न कबहुं यह मेरी गरी निकत्यौ है ।

धीर समीर कालिन्दी के तीर सरायौ रहे बाजु ही डीठि परायौ है

जा रसखानि विलोकत ही सख्खा ढरि रांग वी आंग ढरयौ है ।

गाहन घेरत हेरत वी पट फेरत टेरत जानि अरयौ है ।^३

१. सु० १०, २०

२. सु० १०, २४

३. सु० १०, २२

कृष्ण वंशी बजाते गाय चराते हुए कुंजों में ढौलते हैं ।^१ गोपियां कृष्ण के गोचारण-रूप पर प्राण वारने को तैयार हैं ।^२ जिस दिन वे कृष्ण ने गुरं चराई हैं उसी दिन वे गोपियों पर टोना-ता हो गया है । केवल गोपियां ही नहीं, सम्पूर्ण ब्रज कृष्ण के हाथ बिक गया है ।^३

रसखान ने कृष्ण की गोचारण-लीला को मनोहर चित्रात्मक ढंग से दर्शाया है । अन्तःपटल पर एक के बाद एक दृश्य जाता रहता है ।

बीर-हरण लीला

रसखान ने बीर-हरण लीला के सम्बन्ध में केवल एक ही पद लिखा है । बीर हरण लीला बाध्यात्म पदा में आत्मा का नग्न होकर माया के आवरणों, सांसारिक संस्कारों से पृथक् होकर प्रभु से मिलना है । इसमें सखी सम्पूर्ण की सम्पूर्णता है, जिसमें अपना कुछ नहीं रहता, सब कुछ प्रभु का हो जाता है ।^४ जमना में नहाती हुई गोपियों की दशा का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं - गोपियां नहाने जाती हैं बीर कृष्ण उनके वस्त्र लेकर कदम्ब पर चढ़ जाते हैं । नहा कर गोपियां चारों ओर देखती हैं बीर मन में क्रोध करती हैं । वे हार जाती हैं तो पीठे वचन बोल कर कृष्ण से अपने वस्त्र मांगती हैं ।

एक समे यमुना-जल में सब मज्जन हैत धंसी ब्रज-गौरी

त्यौं रसखानि गयीं मन मोहन लैकर बीर कदंब की क्षीरी

न्हाइ जब निकसीं बनिता बहुं बीर चितै चित रोष करी रीं

हार स्थियें मरि भावन तौं पट दीने लला वचनामृत बीरी ।^५

रसखान के इस वर्णन में बहुत नाटकीयता है । साधारण शब्दों में सुन्दर चित्रात्मक वर्णन किया है । बाध्यात्मिक पदा में यमुना-स्नान का अभिप्राय

१. सु० २०, २३

२. सु० २०, २४

३. सु० २०, २५

४. भारतीय साधना और दूर साहित्य, पृष्ठ २७५

५. लु. २५, २६

भक्ति कलोलिनी में अवगाहन करना है। वैधी भक्ति के अनुष्ठान रूपी बीर (वस्त्र) पृथक् ही चुके हैं। भक्तों के अनुसार इसे रागानुगा भक्ति कहा जा सकता है।

कुंज-लीला

वृन्दावन की कुंजी में गौपियों का कृष्ण के साथ विहार आज भी प्रसिद्ध है। रसज्ञान ने इसका रूप चित्रण भी रमणीयता के साथ किया है। गौपियां जा रही हैं। कृष्ण उनकी मार्ग में धेर लेते हैं। मासूम गौपियां कृष्ण के रूप के धेरे में फंस जाती हैं।^१ कृष्ण कुंजी से मुस्काते हुए निकलते हैं।^२ सुखदायी कृष्ण रंगीली मुस्कान के साथ कुंजी से निकलते हैं उनका यह रूप देख कर गौपियों का घर से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है -

वारज-लाज बड़ाई का भी ध्यान नहीं रहता -

रंग भरयी मुसकात लला निकल्यो कल कुंज ते सुखदाई

+ + +

टूटि गयी घर की सब बंधन छूटि गी वारज-लाज बड़ाई^३

कृष्ण कुंजी से मुस्काते हुए मुंह में पान भरे हुए निकलते हैं^४ उनका यह रूप गौपियों के दिल में इस प्रकार बस गया है कि निकलते से भी नहीं निकलता। चुरदास के काव्य में भी इस प्रकार के पद मिलते हैं।

रास लीला

श्रीकृष्ण की लीलाओं में रासलीला का वाध्यात्मिक महत्त्व है। रास-लीला मानसिक भावना के साथ-साथ लौकिक धरातल पर अनुकरणात्मक हो कर दृश्य-लीला का रूप धारण करती है। अतः उसके प्रभाव की परिधि अन्य लीलाओं की अपेक्षा अधिक व्यापक हो जाती है।^५ रासैव सः^६ अर्थात् भगवान्

१. सु० २०, २७

२. सु० २०, २६

३. सु० २०, २७

४. सु० २०, ३१

५. देखिये राधावल्लभ सम्प्रदाय : विद्वान्त और साहित्य, पृ० २६४

६. उपनिषद् वाक्य कोश, भाग २, पृष्ठ ५४७

स्वयं रस-रूप है, वानन्द रूप है। रस अथवा वानन्द तीन प्रकार का है, एक लौकिक विषयानन्द, दूसरा अलौकिक ब्रह्मानन्द, तीसरा काव्यानन्द। तीसरे वानन्द को काव्याचार्यों ने 'ब्रह्मास्वाद सहीदरः' कहा है।^१ लौकिक विषयानन्द तथा काव्य-रस से उत्तर रस रूप श्रीकृष्ण के संसर्ग की लीलाओं में जो रस-समूह मिले वह 'रास' है और यह रस-समूह गोपी-कृष्ण की शरद रात्रि की लीलाओं में अपने पूर्ण रूप में स्थित बताया गया है।

'रास' शब्द का संसर्ग रस शब्द से भी है जो स्कान्त वानन्द का सूचक है। श्रीधर स्वामी ने भागवत की टीका में 'रास' का परिचय इस प्रकार दिया है - 'बहुनर्तकिबुक्ती नृत्यविशेषी रासः' अर्थात् बहुत सी नर्तकियों के वक्ति विशेष नृत्य का नाम रास है।^२ रासलीला के स्वरूप का विचार प्राचीन काल से ही होता आया है। लीला के समस्त रूप भगवान का ही प्रतिपादन करते हैं। गोपियां वेद की कचारं हैं और जिस प्रकार शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है उसी प्रकार कवा रूपी गोपियों का और भगवान का सम्बन्ध भी नित्य है। स्त्री से विद्वानों ने दुरासूय कल्पना द्वारा वेद में भी रासलीला की खोज कर ली।^३ भागवत पुराण में रासलीला का विस्तार से विवेचन मिलता है।

वष्टापाय के कवियों में सुरदास और नन्ददास ने रासलीला का वर्णन विस्तार से साध किया है। वास्तव में गोपी रूपी कृष्ण भक्तों का रास में कृष्ण से मिलनक बल्लभ-सम्प्रदायी भक्ति का फलात्मक रूप है। सुरदास ने भी इस रासरस को लोकानुभूत रसों से तथा ब्रह्मानन्द से भी उत्तर बद्धुत रस कहा है। सुर का अन्तिम लक्ष्य स्त्री रास में प्रवेश पाना है।^४ रसखान ने रासलीला का

१. साहित्यदर्पण, पृष्ठ १०५

२. वष्टापाय और बल्लभ सम्प्रदाय, भाग दो। पृष्ठ ४६७ से उद्धृत

३. देखिये - राधा बल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० २६८

४. मुनि शुक मुनि भागवत बखानी।

गुरु की कृपा मई जब पुरन तब रसना कहि मान्यो।

धन्य श्याम बृन्दावन को सुख संत मया ते जान्यो। शेष प्रगल्भ ५७५८

वर्णन कई पदों में किया है। उनका रास-वर्णन परम्परागत रास वर्णन से भिन्न है। उन्होंने राधा को वह महत्व नहीं दिया जिसकी प्रतिष्ठा वैष्णव कवियों ने की। राधा कृष्ण की पूरक शक्ति मानी गई है और रास में राधा कृष्ण के साथ रहती है। किन्तु रसखान ने राधा का चित्रण उस रूप में नहीं किया। उनके रास वर्णन में मुरली को वही प्रतिष्ठा प्राप्त है जो बुरदास आदि के रास निरूपण में है।

ॐ ॐ नाम सबनिकी टैरै, मुरली-धुनि सब ही के नैरै।^१

बुरदास की गोपियों के समान रसखान की गोपियां भी ध्वनि धुन कर बेचैन हो जाती हैं और यह अनुभव करती हैं कि कृष्ण मुरली के माध्यम से उन्हें बुला रहे हैं -

बधर लगाइ रस प्याइ बांसुरी बजाइ,

मेरी नाम गाइ हार जादू किया मन में।

नटखट नवल जुघर नंदनंदन नै,

करि के अवैत चैत हरि के जतन में।

फटपट उलट पुलट पट परिधान

जान लागीं लालन पै सबे बाम बन में।

रस रास सरस रंगीलौ रसखानि जानि,

जानि जोर जुगति बिलास किया जन में।^२

रास की चुकना मिलते ही गोपियां विवश हो जाती हैं। मार्ग की कोई बाधा उन्हें रास में सम्मिलित होने से नहीं रोक सकती। शीत की चिन्ता

जो रस रास संग हरि कीन्है वैद नहीं ठहरान्यो।

बुर नर मुनि मोहित सब कीन्है तिवहि समाधि मुलान्यो

बुरदास तहां नैन बसाइ और न कहूं पत्यानो।

बुरदागर दशम स्कंध, पद १७६१

१. बुरदागर, १६०७

२. सु० १०, ३२

न करते हुए वे चल देती हैं -

कीजै कहा जु पै लोग च्वाब सदा करिबो करि हैं ब्रज मारी ।

सीत न रौकत राकत कागु बुगावत ताहिरी गांव हारी ।

बावरी तीरी करे बखियां रसखान धनै धन भाग हमारी ।

बावत है फिरि बाज बन्याँ वह राति के रास को नायन हारी ।^१

रास में चलने की बात सुन गोपी की मुर्च्छा समाप्त हो जायगी ।

इतका वर्णन चित्रात्मक ढंग से रसखान ने किया है ।^२ गोपियाँ एक दूसरे से कह रही हैं कि वंशीवट के तट पर कृष्ण ने रास रचाया है । कोई भी सुन्दर भाव उनसे नहीं बच सका । गोपियों ने कुल मर्यादा की प्रतिष्ठा बनाये रखने का प्रण किया था किन्तु वे रास रचाये जाने की सूचना पाकर उसे देखे बिना नहीं रह सकीं और अपने प्रण से विचलित हो गईं -

बाज भट्ट मुरली-वट के तट नंद के सांवरे रास रच्यो री ।

नैननि नैननि नैननि तौ नहिं कौज मनोहर भाव बच्योरी ।

ज्यपि राखन को कुलकानि सबै ब्रजवालन प्रान पच्योरी ।

तथपि वा रसखानि के हाथ बिकानि को अंत लच्यो पै लच्यो री ।^३

सुरदास के कई पदों में इस बात की चर्चा है कि रास में कृष्ण-गोपी-

मिलन लोक की दृष्टि से कुल मर्यादा के विरुद्ध है -

संग ब्रजतारि हरि रास कीन्हो ।

सबन की बात पुरन करी श्याम लै त्रियनि पिय हैत मुख मानि लीन्हो ।

भेंट कुलकानि मर्याद-विधि वेद की त्यागि गृह नैह सुनि बैन धार्य ।

कबो जै जै करी मनहिं अब जै करी शंक काहु न करी आप मार्य ।^४

१. पद २५, मृगानीशंकर याज्ञिक के हस्तलिखित संग्रह (बस्ता नम्बर २२, नागरी प्रचारिणी सभा काशी) से उद्धृत

२. देखिये - सु० १०, ३३

३. सु० १०, ३५

४. सुरदासर, दशम स्कंध, पद १७५३

रसखान की गोपियों को भी कुल-मर्यादा का ध्यान बना रहता है किन्तु फिर भी वे रासस्थल पर पहुँच जाती हैं । रसखान के और अन्य वैष्णव कवियों के रास वर्णन में भिन्नता है । रसखान के कृष्ण चुर के कृष्ण की भाँति गोपियों को मर्यादा-पाठ नहीं पढ़ाते ।^१ न ही उन्होंने वष्टहाप के कवियों की भाँति गोपी-कृष्ण-रास में बाध्यात्मिक दृष्टि का आरोप कर के उसे दिव्य रूप देने का प्रयास किया है । किसी दर्शन विशेष का निरूपण भी इस वर्णन में नहीं मिलता वरन् कृष्ण रास की केवल विविध क्रीड़ाओं के दर्शन होते हैं ।

पनघट लीला

रसखान के पनघट लीला उम्बन्धी केवल तीन पद प्राप्त होते हैं । उनमें से एक पद में घोर शृंगार के दर्शन होते हैं । जमुना पर जल लै जाती हुई गोपियों को कृष्ण मार्ग में घेर उमंग में भर जालिंजन करते हुए बहाने से मुख चूम लेते हैं । गोपियाँ परेशान हैं कि लौकलाज को कैसे निभारें, हृदय में तो कृष्ण की साँवरी मूर्ति छा गई है ।^२

ब्रज-बालारं कृष्ण के डर से ठिठकती हुई जमुना में नहाने लगछि जा रही हैं । अचानक कृष्ण गाते बजाते आकर मिल जाते हैं । कामदेव उनकी बुद्धि का नाश कर देता है । चक्रौर की भाँति परिणाम का विचार न करती हुई ये स्नेह दिवानी होकर गिर पड़ती हैं -

बाई तबै ब्रज-गोपलली ठिठकी है गली जमुना-जल न्हाने ।

औक जाह मिलै रसखानि बजावत बैनु बुनावत ताने ।

हाहा करी सिस्कीं सिगरी मति मन हरी हियरा कुलवाने ।

१. तथा , यह विधि वेद-मार्ग बुनो

और कहा मयो जो हम पे बाई कुल की रीति गमाई ॥

बुरखानर, दशम स्कंध,

२. पु० १०, ३६

घूम दिवानी अमानी चकौर लीं और लीं दोऊ चले दृग बाने ।^१
 पनघट-लीला-वर्णन में रसखान ने कृष्ण को किसी विशेष रूप में नहीं दिखाया है । वे नहाने जाती हुई गोपियों से झेड़झाड़ करते हैं । गोपियाँ उसके रूप से प्रभावित होती हैं । इस वर्णन में किसी विशेषता के दर्शन नहीं होते ।

दान लीला

लगभग सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने दानलीला की चर्चा की है और कृष्ण को दूध दही मांगते हुए वर्णित किया है । जष्टदास के कवियों की रचनाएं दानलीला वर्णन के लिए प्रसिद्ध हैं । श्री भगवान् की भक्त के साथ झीझा कहा जा सकता है ।

रसखान की ग्यारह पद्यों की छोटी सी पुस्तिका 'दानलीला' के नाम से मिलती है । इसमें राधा कृष्ण के प्रणय-संवाद ग्यारह कवित्त-खंडों में वर्णित हैं । इसके अतिरिक्त 'सुजान रसखान' में भी दान लीला-सम्बन्धी लगभग छः पद्य मिल जाते हैं । इन छः पद्यों में गोपियों की मनोदशा का सुन्दर चित्रण है । वे दही बेचने जाती हैं । मार्ग में कृष्ण मिल जाते हैं ।

एक गोपी दूसरी गोपी को अपने साथ घटी हुई घटना का वर्णन कर रही है - मैं कल गौरस बेचने निकली न हरि से बात की, न हरि की बात सुनी, न ही मुल बोल लंसी । आज एक बार 'दही लेहु' कह कर कुछ लंसी । कृष्ण मुत्कुराने लगे । उनकी मुत्कान वैरी होकर प्राणों में बस गई है ।^२

गोपी दही लेकर पहले गोकुल में जाती है । कृष्ण उसको चखते हैं । और कामदेव की भाँति जड़ कर दधि-दान मांगने लगते हैं । गोपी तर से लेकर पैर तक डर कर उस प्रकार कांपने लगती है जैसे रावन में बादलों के बीच बिजली चमकती है ।^३

१. सु० १०, ३७

२. सु० १०५ ३८

३. सु० १०, ३६

गौपी कृष्ण से कहती है कि दारि के बहाने चीर क्यों फटते हो । लो बाज कितना दही पान करोगे । बत्तने के बहाने से माखन मांगते हो लो कितना माखन खावोगे ।

मैं खूब जानती हूँ , उतनी बात क्यों बढ़ा रहे हो । जो रस तुम चाहते हो वह तनिक जा भी नहीं मिल सकेगा ।^१ एक गौपी अपनी बत्ती से कहती है कि मैं दही बेचने जा रही थी । कृष्ण ने बाकर मार्ग में रोक लिया । दान में 'निलजी' कर बन्य रस का पान करने लगते हैं । उस व्यथा की कथा को किस प्रकार वर्णन करें। कृष्ण खूब हँस हँस कर मुत्काये, मैं अकेली पल्ले पड़ गई । कृष्ण ने खूब मनमानी की ।^२

कृष्ण को बुरा-भला सुनाती हुई गौपियाँ कहती हैं कि तुम नये दानी बाये हो तुम से कंस को बांधा नहीं जाता -

दानी नर भर मांगत दान तुनै जु पै कंस तो बाधे न जे हो ।

रौकत ही बन में रखानि पजारत हाथ महा दुख पै हो ।

टूटै क्षरा बहरादिक गोधन जोधन है तु तबै पुनि दै हो

जे है जा भूषन काहुँ तिया की तो मौल छ्वा के लछा न बिकै हो ।

दान-लीला-सम्बन्धी ११ कवित्त सवैयाँ में कृष्ण और राधिका के मधुर शृंगारिक संवाद हैं । कृष्ण राधा को रास्ते में छेड़ते हैं और दधि तथा माखन दान में मांगते हैं । राधा को कृष्ण धमकाते हैं किन्तु राधा पर उसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता । राधा के ताने और बातें सुन कर कृष्ण थक जाते हैं ।

किन्तु राधा अपनी जगह बटल है और कृष्ण को बुरा भला सुनाती है -

नौ लख गाय तुनी हम नंद के तापर दूध दही न अघाने ।

मांगत भीख फिरौ बन ही बन झूठि ही बातन के मन माने ।

१. सु० १०, ४२

२. सु० १०, ४३

३. सु० १०, ४४

बीर की नारिन के मुख जीवत लाज गहीं कहु होहु सयाने
जाहु भले जु भले घर जाहु चले बस जाहु बिंदावन जाने ।^१

रसखान का दान लीला वर्णन साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि का है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता राधा बीर कृष्ण के संवाद हैं जो बहुत स्वाभाविक बीर सरल हैं। इन संवादों में केशव की 'रामचन्द्रिका' के संवादों की सी झलक मिलती है। राधा ने कृष्ण को जो उच्चर दिये हैं, वे उक्ति-वैचित्र्य में अपनी समता नहीं रखते।

मुरली

कृष्ण भक्त कवियों ने मुरली के महत्त्व की उसकी वाध्यात्मिक विशेषता को स्वीकार किया है। श्रीकृष्ण की चर्चा मुरली के बिना अधूरी प्रतीत होती है। मुरली को शब्द ब्रह्म का नाम दिया गया है।^२ ब्रह्म के समान उसकी वाणी भी सर्वव्यापक है। अतः वंशी-ध्वनि परम ब्रह्म का शब्द-रूप है। वैष्णव आचार्यों के अनुसार अम्बुदय बीर निःश्रेयस दोनों प्रकार का सुख वंशी-निनाद से उत्पन्न सुख के सामने फीका पड़ जाता है। वैष्णु में तीन अक्षर हैं - व + इ + णु। 'व' ब्रह्म-सुख का धोतक है, 'इ' सांसारिक सुख को प्रकट करती है। इन दोनों प्रकार के सुखों को जो 'णु' अर्थात् पात करने वाली है, वह है वैष्णु। आचार्य बल्लभ ने वैष्णुनाद का कई प्रकार से निरूपण किया है। उनके अनुसार जब किसी मनुष्य की प्रभु का आग्रह प्राप्त हो जाता है तब उसके सामने वंशी बजने लगती है।^३ वास्तव

१. दान लीला, ११

२. तब लीमी कर-कमल जोग माया की मुरली,
अघटित-घटना-चतुर बहुरि अधरन सुर जुरली।
जाकी धुनि हैं निगम अगम प्रगटित बड़ नागर,
नाद ब्रह्म की जननि मौहिनी सब सुख-सागर ॥

रासपंचाध्यायी, प्रथम अध्याय, पृ० ५

३. पदा स्तु पुरुषः क्रिय मश्नुते वीणा अस्मै वाधते

श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध श्लोक की तुल्यधिनी टीका

में मुरली ध्वनि ब्रह्मानन्द से भी अधिक आनन्ददायक है ।

रसखान ने अपने काव्य में मुरली का विस्तार से वर्णन किया है । उनके मुरली वादन ने केवल गोपियों को ही विचलित किया है । सुरदास की भांति रसखान मुरलीवादन से सिद्धों की समाधि भंग नहीं करते ।^१ रसखान की गोपियाँ मुरली को बुरा मला कहती हैं , उस पर सीकती हैं कि ते तू ही ब्रज में वास कर, हम तो अब ब्रज त्याग कर जा रहे हैं -

हम तो ब्रज की बसिबोई तजो बसरी ब्रज बैरिन तूं बंसरी ।^२

रसखान ने मुरली के प्रभाव का निरूपण घोर शृंगारी रूप में किया है, गोपियों की काम-वासना तक को जागृत कर दिया है ।^३ सुरदास आदि अन्य भक्त कवियों में मुरली की इस रूप में चर्चा नहीं मिलती । मुरली-ध्वनि सुन कर गोपियाँ ऐसी मदहोश हुई कि गागर भरना भूल गई । पाँव उलटे-सीधे पड़ने लगे । घर की चिन्ता न रही । उतावें लेने लगीं । कोई मुरली सुन कर लौट पोट हो गई । किसी के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी । अन्त में हार कर वे कह उठीं -

करिये उपाय बाँध डारिये कटाय

नाहिं उपजैगी बाँध नाहिं बाजै फेरि बाँसुरी ।^४

यहाँ वे मुरली को समूल नष्ट करना चाहती हैं । रसखान ने गोपियों की मनो-भावना का सुन्दर चित्रण किया है । वंशी-ध्वनि सुन कर गोपियाँ कृष्ण-मिलन के लिए उतावली हो जाती हैं । ऊपर चढ़ कर कृष्ण को फाँकने लगती हैं -

मोहन की मुरली सुनि के वह बौरी ह्वै जानि अटा चढ़ि फाँकी ।^५

१. मेरी साँवरी अब मुरली बधर धरी ।

सुनि सुनि सिद्ध समाधि तरी । सुरसागर, पद १२४१

२. सु० १०, १६

३. देखिये - सु० १०, ६२

४. सु० १०, ५४

५. सु० १०, ५८

मोहन की मुरली से प्रभावित गौपियों की दशा देखिये -

दुध दुह्यो सीरो परयो तातो न जमायो करयो

जामन दयो तो घरयो घरयोई खटाइ गौ ।

जान हाथ जान पार सब ही के तब ही तैं ,

जब ही तैं रसखानि तानन सुनाइ गौ ।

ज्यो हरि नर त्यो ही नारी तैसीये तरुन बारी ,

कह्यो कहा री सब ब्रज बिल्लाइ गौ ।

जानिये न वाली यह झोहरा जसोमति को,

बांसुरी बजाइगी कि विष बगराइ गौ ॥^१

कृष्ण का मुरली के प्रति आकर्षण देख कर गौपियाँ निराश होकर कह उठती हैं -

कान्ह मर बस बांसुरी के अब कौन सखी, हमको चहि है ।

नित घोस रहै संग-साथ लगी यह जौतिन तापन क्यों चहि है ।

जिन मोहि लियो मनमोहन को रसखानि उदा हमको दहि है ।

मिलि आवी सब सखी, भागि चरै, अब तो ब्रज में बांसुरी रहि है ।^२

सूरदास ने भी मुरली को 'जौतिन' के रूप में चित्रित किया है -

अधर रस मुरली जौतिन लागी ।

जा रस की चटु कतु तप कीनों तो रस पिवत उमागी ॥

कहां रही कहं ते यह आई कौनै याहि बलाई ।

सूरदास प्रभु हम पर ताकों कीनी जौति बजाई ॥^३

रसखान ने सूरदास की भांति मुरली की तपस्या की तनिक भी कर्वा नहीं की । सूरदास के अनुसार मुरली ने ग्रीष्म की पंचाग्नि में तप कर अपना शरीर जला डाला । घोर शीतकाल में ठिठुर-ठिठुर कर यह कांटा हो गई । पावस

१. सु० २०, ६३

२. सु० २०, ६४

३. सूर सागर, पद १८३६

कतु में एक पैर से खड़ी रह कर उसने अपना शरीर गला दिया । घोर तप के बाद ये बन से काटी गई, फिर गर्म तक्रुर से इसमें छेद किये गये , फिर भी अविकल खड़ी रही । बरी गोपियो, तुम वंशी को व्यर्थ बुरा-भला कहती हो । उसने अपने गुणों के कारण सबको आकर्षित करने वाले कृष्ण को भी अपने प्रति आकर्षित कर लिया ।^१

रसखान ने मुरली वादन द्वारा केवल गोपियों को ही प्रभावित दिखाया है , अन्य वृष्टि को नहीं । उनका मुरली-वर्णन भी भक्ति परम्परा की परिधि से कुछ भिन्न ही प्रतीत होता है ।

रसखान के लीला निरूपण से यही निष्कर्ष निकलता है कि इन्होंने भक्त कवियों के लीलागान का बन्धानुसरण नहीं किया । लीलावर्णन में रासलीला, दानलीला, बीरहरण, गौचारण लीला, पनघट लीला और कुंज लीला का निरूपण किया है । इस वर्णन में किसी 'दर्शन' विशेष का स्वरूप भी नहीं मिलता । दार्शनिक लीलागान की अपेक्षा काव्योचित स्फूर्ति में रसखान की प्रवृत्ति अधिक रही है ।

कृष्ण-लीला वन्य वर्णन

कृष्ण-लीला, कृष्ण-रूप, मुरली वादन के अतिरिक्त रसखान ने युगल-जोड़ी, होली, बसन्त, दिवाली, कालिय दमन, कुवल्या वध, प्रेम गीत आदि की भी अपने काव्य का विषय बनाया है।

युगल-जोड़ी

वन में अचानक रूपनिधि राधा की कृष्ण से भेंट होती है। प्यार भरी बातें होती हैं^१ बैठ की फुलसाने वाली धूप दोनों को वन में आनन्ददायक प्रतीत होती है। जीवन-फल की प्राप्ति हो जाती है। रसभरी बातें होती हैं। कृष्ण का हाथ राधा जो के कन्ये पर है। कृष्ण के मुख पर मोर मुकुट की छाया है^२ रसखान की दोनों के मिलने में तीनों लोकों की सुषमा के दर्शन होते हैं -

लाइली लाल लई लखिं अलि पुंजनि कुंजनि में कबि गाढ़ी।
ऊजरी ज्यों बिजुरी की जुरी चहुं गूजरी कैलि कला सम काढ़ी।
त्यो रसखानि न जानि परे सुखमा तिहुं लोकन की अति बाढ़ी।
बालन लाल लिये बिहर्, कहर बर मोर पखी चिर ठाढ़ी।^३

राधा पैरों में बजने वाला आभूषण पहने हैं। उनकी फंकार कृष्ण को सुनाई देती है। उनकी पुन कृष्ण राधा को मार्ग में रोक लेते हैं। उनकी ठोड़ी उठाकर उन्हें मुस्काकर देखते हैं।^४

बसन्त में रसखान राधा-कृष्ण का विवाह करा देते हैं, क्योंकि कृष्ण भक्तों की ऐसी परिपाटी रही है। दोनों एक दूसरे के प्रेम-पाश में बंध जाते हैं। उनके इस स्वरूप को देख कर ब्रज-वासी भी सुख का अनुभव करते हैं -

१. पु० १०, १८४

२. पु० १०, १८५

३. पु० १०, १८६

४. पु० १०, १८८

मौर के चंदन मौर बन्यौ दिन दुलह है बली नंद को नंदन।
 श्री वृषभानु पुता दुलही दिन जोरी बनी विधना सुख चंदन।
 जावै कहू कहयौ न कह्यु रसखानि री दोऊ फंदे हवि प्रेम के फंदन।
 जाहि बिलोकैं सबे सुख पावत ये ब्रज जीवन हैं दुख दंदन।।^१

होली-वर्णन

सभी कृष्ण भक्त कवियों ने उनकी सौंदर्य-विभूति और उल्लासमयी लीला का जम कर विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। केवल अष्टाश्वप के कवियों ने ही दो सौ पद लिखे हैं। रसखान ने भी होली-सम्बन्धी बाठ पदों की रचना की है जिनमें कृष्ण और गोपियों को होली खेलते हुए दिखाया है। कुंकुम गुलाब लेकर पिचकार में रंग भर कर गोपियां होली खेल रही हैं।^२ फागुन मास में होली के प्रारम्भ से ब्रज मंडल में धूम मची हुई है।

नारि नवेली अब ही को कृष्ण ने प्रभावित किया है। सांफ को कृष्ण गुलाब लेकर होली खेलते हैं। कौन उसी रेखी है जिसके साथ कृष्ण ने होली न खेली हो बध्ना होली में जिसका मान बच सका हो।^३ केवल कृष्ण ही नहीं समस्त ग्वाले भी गोपियों के साथ होली खेलते हुए धूम मचाते हैं। कृष्ण पिचकार से गोपियों को लैह में भिगो रहे हैं। जैसे नचा कर गोपियों को नचा रहे हैं।^४

फागुन के साथ कृष्ण के अवगुणों की चर्चा करते हुए गोपियां कहती हैं कि कृष्ण ने होली खेल कर हम में काम-वासना जागृत कर दी। पिचकारी छोड़ तथा धमार से हमें भिगो दिया है, हमारा हार भी टूट गया है।^५ होली में कृष्ण कितने मर्यादाहीन हो जाते हैं- इसका चित्र रसखान के इस पद में देखिये -

१. सु० २०, १६०

२. सु० २०, १६१

३. सु० २०, १६२

४. सु० २०, १६४

५. सु० २०, १६५

बावत लाल गुलाल लिये मग बूने मिली एक नार नवीनी ।
 त्यों रसखानि लगाइ दिये मट्ट मौज कियो मन माहिं बधीनी ।
 सारी फटी, चुसमारी हटी, बंगिया दरकी सरकी रंग भीनी ।
 लाल गुलाल लगाइ लगाइ कै बंक रिफाह बिदा करि दीनी ।^१

रसखान होली खेलती गुलाल की लालिमा से रंजित ब्रज बालावों की दशा का वर्णन करते हुए इस प्रकार कहते हैं -

मिलि खेलत फाग बढ़्यो अनुराग बुझाग सनी सुखकी रमई
 कर कुंकुम लै करि कंज मुखी प्रिय के दृग लावन को कमई
 रसखानि गुलाल की धुंधर में ब्रज बालन की दुतिथी दमई
 मनो लावन बांध ललाइ के मांझ बहू दिशि तैं चपला चमई^२

रसखान ने होली वर्णन में होली त्यौहार का सफल और जीवंत चित्र खींचा है ।
 होली में जन जन में जिस उत्साह का संवार है उसका भी मनोरम निरूपण स्व
 उत्साहमय चित्रण किया है ।

वसन्त-वर्णन

रसखान ने होली के अतिरिक्त वसन्त पर केवल एक ही पद लिखा है जो अनुप्रास की दृष्टि से परिपूर्ण है तथा जिसमें नाद शौन्दर्य के दर्शन होते हैं और वसन्त की पूर्ण आभा सामने आ जाती है । आम के वृक्ष पर और आया हुआ है । भौरों की गुंजार सुनाई पड़ रही है । हरी भरी लताएं तमाल के वृक्ष से लिपटी हुई हैं । कौयल की काकली सुनाई पड़ रही है । मंद सुगंध वायु चल रही है । गुलाब की कलियां खिल रही हैं ।

ठहकही बैरी मंजुहार लहकार की पे, बहकही चुल्लू बूझं वित बलीन की ।
 लल्लही लौनी लता लपटी तमालन पे, कल्लही तापै कौकिला की काकलीन की।

१. सु० २०, १६७

२. सु० २०, १६८

३.-सु०-२०३-१६८

तहतही करि रसखानि के मिलन हैत , बख्शही बानि तजि मानस मलीन की
महमही मंद मंद मारुत मिलनि तैसी, गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की
दिवाली-वर्णन

रसखान ने एक पद में दिवाली की चर्चा की है । वृषभान के घर दिवाली
हो रही है । जहीर और जहीरनियों की भीड़ लगी हुई है । सब प्रसन्न होकर
गोधन बलाप रहे हैं । कृष्ण राधा से छ्शारों में कुछ प्यार भरी बातें कर रहे हैं।
उनकी बांसों में बंजन लगाया तथा बाढ़ में होकर कुंकुम-

वृषभान के गेह दिवारी के धौस जहीर जहीरनि भीर मई ।

जित ही तितही धुनि गोधन की सब ही ब्रज ह्वै रह्यो राग मई ।

रसखान तबै हरि राधिका यों कुछ तेननि ही रस बेल बई

उहि बंजन बांखनि बांज्यौ भट्ट उन कुंकुम बाढ़ लिलार दई ^२

रसखान के दिवाली-वर्णन में दिवाली का सम्पूर्ण चित्र नहीं मिलता केवल वृषभान
के घर की दिवाली की ओर संकेत किया गया ।

कालिय-दमन

कृष्ण के कालिय-दमन की चर्चा रसखान ने की है और बहुत ही सुन्दर
चित्र उपस्थित किया है । यशोदा की सूचना मिलती है कि कृष्ण जमुना के किनारे
खेले रहे हैं जमुना में नाग को पकड़ रहे हैं । वे चाहती हैं कि कृष्ण^३ कोई वहां
से हटा दे । जब लोगों को यह पता लगता है कि कृष्ण ने कालिय को वश में कर
लिया है , वे यशोदा के माग्य को सराहते हुए आनन्दित होते हैं -

लौग कहैं ब्रज के रसखानि अनंदित नंद जसोमति जू पर ।

होहरा बाजु नयो जन्म्यो तुम लो कोऊ भाग भर्यो नहिं भू पर ।

वारि के दाम खंवार करौ अपने अप चाल कुचाल लू पर ।

नाचत रावरो लाल गुपाल लो काल व्याल-कपाल के ऊपर ।^३

१. सु० १०, १६६

२. पद २१ भवानीशंकर याज्ञिक की हस्तलिखित प्रति से उद्धृत, बस्ता नं० २२ ना० प्र
तभा काशी

३. सु० १०, २०८

कुवल्या-वध

केवल एक पद में कुवल्या-वध का वर्णन किया गया है। कंस के शीघ की ज्वाला ब्रजमंडल में फैल रही है। कृष्ण कक्षी कंस के वा जाते हैं। शायी के दोन दांत खींच लेते हैं -

कंस के शीघ की फैलि रही खिगरे ब्रज मंडल मांफ पुकार सी।
बाईं गर कक्षी कक्षि के तब ही नट नागर-कंस कुमार सी
दरद को रद खींच लियो रखसानि हिये मधि ठार विचार सी
लीनी कुठौर लगी लखि तोरि कंसक तमाल हैं गौरति डार सी।^४

भ्रमरगीत

रखसान ने भ्रमरगीत-सम्बन्धी लगभग बाठ पद लिखे हैं। उन बाठ पदों में भ्रमरगीत की परम्परा को सफलता से निभाया है। सुरदास के भ्रमरगीत वार के उद्देश्य को रखसान ने बड़े मनोरम ढंग से केवल बाठ पदों में प्रस्तुत किया है। गोपियों की उक्तियों में विह्वलता तथा विविध मनोवृत्त स्पष्ट फलकती हैं। साथ ही उद्धव का तीखा उपदेश भी दर्शनीय है। उद्धव के पदों में बाते ही एक गोप कहती है कि जोग सिखाने के लिए कोई बाया है। किन्तु नहीं कौन है।^२ उपहास करती हुई गोपियां उद्धव से कहती हैं कि तुम उस कंस (कृष्ण) का विष (विरह विष) राख लगा कर, मत्स्य पीत कर उतारने से ही तो या कैसे सम्भव है।^३

उद्धव के समीप गोपियां कृष्ण के कुब्जा पर राकने पर, करती हैं। उन्हें दुःख होता है कि ब्रज में बदनामी होगी। आपत्त प्रकट होता है। गोपियां कुब्जा को जली-कटी सुमाती हैं और गालियां पगृत यदि कुबरी उन्हें मिलती तो वे उसको खूब मारती, नाक ब्रेद कर कौ

१. सु० १०, २०२

२. सु० १०, २०३

३. सु० १०, २०४

देती, उस रांड को ऐसा नाच नचाती कि कृष्ण को रिफ्त कर फेंचाने का फल मिल जाता। इतना करने पर भी गौपियों को सन्तोष नहीं होता वे कृष्ण को साथ लेकर रहती। इस तरह कुब्जा के कलेबे में कांटा जुभाती है -

‘मैती जु पै कुबरी ह्यां उसी भरि लातन मुका वकौटती ठैती ।
ठैती निकारि हिये को सबै , नक बेदि के कौड़ी पिरार के देती ।
देती नचाई के नाच ना रांड को, लाल रिफावन की फल सेती
सेती उदां रसखानि लिये कुबरी के करोजनि बूठ ली मैती ।’^१

गौपियां मृदु फटकार के साथ उद्धव से प्रार्थना करती हैं -
‘तार की तारी ली भारी ली धरिबै कहां ली बघंबर पैया ।
हांसी ली दासी सिखार लई है बड़े जु बैई रसखानि कन्दैया ।
जोग गया कुब्जा की कलानि में , ली कब ऐहँ जसोमति देया ।
हाहा न ऊर्घा कुढ़ावो हमें अबही कहि दे ब्रज बाजै बधैया ।’^२

गौपियों की वासक्ति की पराकाष्ठा दर्शनीय है। कृष्ण के चरी पर वासक्त हो जाने पर वे स्वयं चरी बनना चाहती हैं।^३

हरिशंकरी

कृष्ण और शंकर को अभिन्न मानते हुए रसखान ने एक हरिशंकरी की भी रचना की है -

‘एक और किरिट लई दूसरी दिशि नागन के गन गाजत री ।
मुरली मधुरी धुनि बाधिक जोठ पै बाधिक नाद से बाजत री ।
रसखानि पितंबर एक कंधा पर एक बघंबर राजत री ।
कौड देखत संगम लै बुझी निकी यहि मेस ली बाजत री ।’^४

१. सु० १०, २०७

२. सु० १०, २०८

३. सु० १०, २०९

४. सु० १०, २१०

शिव-स्तुति

रसखान ने कृष्ण के साथ साथ अन्य देवताओं की चर्चा भी की है। शिव की स्तुति में भी एक पद लिखते हैं। शिवजी की उल्लेख कृपालुता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि उनकी कृपा दृष्टि, उनका भूषण मात्र, सम्पूर्ण भवमय का परिहार है।

यह देखि घतूरे के पात च्वात जो गात जो धूलि लगावत है
बहुं और जट्ट जटा अंटके लटके फनि जो कफनी पहरावत है
रसखानि जेई चितवै चित दे तिनके दुख दुंद भजावत है
गजखाल कपाल की भाल विलास जो गाल बजावत आवत है।^६

समन्वयवादो दृष्टि से हरि और हर को एक कौटि का समझ कर
रसखान ने समान वादर प्रदान किया है।

गंगा-गरिमा

रसखान ने गंगा की स्तुति में केवल एक ही पद लिखा है। गंगा की महिमा के वर्णन की परिपाटी पुरानी है। रसखान के बाद ज्ञान्नाथदास रत्नाकर ने 'गंगावतरण' की रचना की। रसखान ने शिवजी को भी गंगा के कारण ही घतूरे के पद च्वाते, विष खाते, दिखाया है।

बैद की औषद खाइ कछु न करै बहु संजम री पुनि पौर्वे।
तो जलपान किया रसखानि सजीवन जानि लियो रस तोर्वे।
रही सुधामई भागीरधी नित पथ्य अपथ्य बने तोहि मोर्वे।
बाक घतूरो च्वात फिरै विष खात फिरै शिव तेरे भरोवे।^७

फलश्रुति

बुजान रसखान के अन्त में रसखान ने फलश्रुति लिखी है। स्वाभाविकता की समणीयता न होने पर भी इन पंक्तियों की समक-विशिष्ट शब्द-योजना

६. पु० १०, २११

७. पु० १०, २१२

चिन्ताकर्षक है-

विमल सरल रसखानि मिलि मई सकल रसखानि ।

सौई नव रसखानि कौं, किंतु वात्सल रसखानि ।

सरल नेह लवलीन नव, द्वै बुजान रसखानि ।

ताके बाव बिवाह सौं पौ प्रान रसखानि ।^१

प्रेम तथा भक्ति

प्रेम वाटिका में रसखान ने प्रेम का विशद और व्यापक चित्रण किया है । राधा और कृष्ण प्रेम वाटिका के माली-मालिन हैं । प्रेम का मार्ग कमल-तन्तु के समान नाजुक और बलिघार के समान कठिन है^२, अत्यन्त सीधा भी है और टेढ़ा भी है । बिना प्रेमानुभूति के जानन्द का अनुभव नहीं होता । प्रेमानन्द ब्रह्मानन्द के समान है । प्रेम भूति पुरान और स्मृति सबका सार है । बिना प्रेम के ई प्रेम का बीज हृदय में नहीं उपजता है । ज्ञान, कर्म, उपासना सब बहंकार के मूल हैं । बिना प्रेम के बूढ़ निश्चय नहीं होता । रसखान द्वारा प्रतिपादित प्रेम आदर्शों से अनुप्राणित है ।

रसखान ने प्रेम का स्पष्ट रूप में चित्रण किया है , प्रेम की परिभाषा, पहिचान , प्रेम का प्रभाव , प्रेम प्राप्ति के साधन एवं प्रेम की पराकाष्ठा प्रेम वाटिका में दिखाई पड़ती है । रसखान द्वारा प्रतिपादित प्रेम लौकिक प्रेम से बहुत ऊंचा है । रसखान ने १२ दोहों में प्रेम का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह पूर्णतया मौलिक है । कुछ दोहों में रसखान के जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है ।

अन्य वर्णनों के अन्तर्गत रसखान ने फुटकर पद्य लिखे हैं । प्रायः भक्त कवि युगल जोड़ी पर पद्य लिखते रहे हैं । रसखान ने भी इस परम्परा को अपनाया । उन्होंने होली का हृदयग्राही निरूपण किया है । भ्रमरगीत की रचना भी परम्परा के निवाह के लिए की है । शिव तथा गंगा की स्तुति में ~~गार्भिक व्यक्तियों की~~ अभिव्यक्ति की है । रसखान का प्रेम निरूपण सूफी परम्परा से अधिक प्रभावित है। भक्ति^३ निरूपण में वे कृष्ण के शान्तिध्व के उज्जुक प्रतीत होते हैं ।

१. सु० २०, २१३, २१४

२. प्रेम वाटिका ६

३. विस्तार के लिए देखिये- सप्तम अध्याय ।

(खंड छ) रूपांकन

काव्य में रूपांकन की परम्परा

मानव सदैव से रूप-प्रेमी रहा है। उसने जहाँ भी रूप को देखा, उसे चराहा। काव्य की परिभाषा देते हुए 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहा गया है।^१ तथा रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्^२ रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाली शब्दावली ही काव्य है। काव्य का रमणीयता से आवश्यक सम्बन्ध होता है और यह रमणीयता या सौन्दर्य रूप आदि में निहित है।

रूपोपासना वात्मतत्त्व की उपासना की भाँति अति प्राचीन है। काव्य और सौन्दर्य का परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक के अभाव में दूसरे का वात्सादन फीका जान पड़ता है। अतः कवि अपनी कविता में रूप की अभिव्यक्ति करता है और मानव उस अभिव्यक्ति को हृदयंगम कर आनन्दविभोर हो उठता है। रूप को देख कर आनन्द-प्राप्ति होती है और मानव सदा से आनन्द का भूखा रहा है तथा आनन्द प्राप्ति के लिए ही काव्य में रूपांकन किया जाता है।

काव्य के दो पक्ष होते हैं, भाव पक्ष एवं कला पक्ष। इन दोनों पक्षों में ही रूप का होना आवश्यक है। कलापक्ष में रूप से तात्पर्य भाषा संगठन, अलंकार-नियोजन तथा वर्ण विन्यास आदि के कुशल निरूपण से है। भाव पक्ष के अन्तर्गत रूप से अभिप्राय वर्ण्य-विषय के रूप से ही माना जाएगा। यहाँ हमारा रूपांकन से आशय वर्ण्य-विषय के रूप से ही है। काव्य में प्रायः मानवीय रूप तथा प्राकृतिक-रूप के निरूपण की परम्परा मिलती है।

प्राकृतिक रूप के अन्तर्गत प्राकृतिक दृश्यों (वन, उपवन, सरिता, पर्वत आदि) तथा विभिन्न ऋतुओं का वर्णन किया जाता है।

मानवीय रूप के अन्तर्गत स्त्री और पुरुष दोनों का रूप आता है। किन्तु आचार्यों तथा कवियों ने नारी-सौन्दर्य पर ही अधिक ध्यान देते हुए उसका

१. साहित्य दर्पण, पृ० २३

२. रसगंगाधर, पृ० ४

सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

काव्य में रूपांकन स्तलिर भी महत्वपूर्ण है कि पाठक उस रूप से तादात्म्य कर बैसा ही अनुभव करने लगता है। कवि द्वारा वर्णित नारी के रूप की वह प्रायः प्रेयसी के रूप में देखता है। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो उसके साथ तादात्म्य कर प्रसन्न एवं प्रफुल्लित होता है।

रूप सदैव ही मानव का आकर्षण केन्द्र रहा है। प्राचीन समाज में भी रूपानुराग के प्रति रुचि रही है। रूप को चाहना और बराहना मनुष्य की प्रकृति है।

कवि साधारण मानव से अधिक भावुक और तीक्ष्ण-दृष्टि वाला होता है। 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि' के अनुसार उसने जब रूप के दर्शन किये तो अन्तस्तल में पैठ कर उसको निरस कर पाठक के सम्मुख रख दिया। इसी से भारतीय काव्य-धारा की एक बड़ी विशेषता रूप-वर्णन या रूपांकन मानी गई है।

संस्कृत-साहित्य के लगभग प्रत्येक कवि ने रूपांकन को अपने काव्य का मुख्य अंग बनाया है। कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' में शकुन्तला के रूप का विस्तृत चित्रण किया है। प्राकृत-साहित्य में भी उस प्रकार के रूपांकन से भरपूर है। अंग्रेजी में जान कीट्स तथा वर्डस्वर्थ आदि ने विशिष्ट रूप चित्रण किया है। हिन्दी काव्य में प्रारम्भ से ही संस्कृत काव्य-पद्धति का अनुसरण मिलता है। 'मैथिलकोकिल' विद्यापति के काव्य में मनोमुग्धकारी रूपांकन के दर्शन होते हैं। प्रकृति का रूप विवेचन तो है साथ ही नायिका की वयः सन्धि अवस्था और नख शिख वर्णन भी है। वीर गाथाएँ लिखने के प्रेरक तत्वों में भी रूप का महत्व कम नहीं है। कमनीय कामिनी की रूप छटा पर न जाने कितने वीरों का बलिदान हुआ। इसी से वीर गाथा काव्य के रासौ साहित्य में तथा अन्य रचनाओं में हमें रूपांकन की मनोरम छटा देखने को मिलती है। भक्ति काल में नारी सौन्दर्यानुभूति द्वारा बलौकिक सौन्दर्य की कल्पना की गई जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें 'पद्मावत' की पद्मावती के रूप-चित्रण में मिलता है। तुलसीदास और सुरदास के काव्य

में राम-सीता और राधा-कृष्ण का रूप चित्रण मिलता है। मीरा तो उस पीताम्बरधारी के रूप की दीवानी थी जो कृष्ण भक्ति-काव्य का आधार बना। रसखान ने भी राधा-कृष्ण के रूप पर ही मुग्ध होकर काव्य-रचना की।

नायक-नायिका का विशिष्ट स्थान

रूपांकन की काव्य परम्परा में यों तो दो रूपों के दर्शन होते हैं जिसमें एक प्राकृतिक रूप है और दूसरा मानवीय रूप। मानवीय रूप के अन्तर्गत नायक-नायिका का विशिष्ट स्थान है। काव्य शास्त्र में नायक-नायिका निरूपण को इतना महत्व मिला कि इनके अनेक भेदोपभेद देखने को मिलते हैं।

नायिका के रूप-वर्णन की परम्परा

रूप-वर्णन की परम्परा कब से आरम्भ हुई, इस बात का निरूपण करना बहुत कठिन है। यों तो इसके सूत्र वेद पुराण आदि ग्रन्थों में मिलते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में भारत के नाट्य शास्त्र में नाटक के अंग-उपांग की विवेचना के साथ-साथ कुछ प्रकरणों में रस, अलंकार, नायिका भेद, गुण आदि की चर्चा भी हुई है। धर्मजय ने अपने दशरूपक में नाट्यशास्त्र के कतिपय विशिष्ट भागों की व्याख्या की नायक-नायिका भेद उन्हीं अंगों में से एक है। बाद में विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में नायिका-भेद का उपस्थापन किया है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि काव्य शास्त्र में नायिका भेद कितना प्राचीन है। जब से नायिका भेद निरूपण की परम्परा चली तभी से नायिका के रूप वर्णन की परम्परा भी माननी चाहिए।

वाल्मीकि-रामायण में नारी का रूप वर्णन मिलता है। अयोध्या में कोई भी स्त्री या पुरुष ऐसा न था जो सुन्दर न हो, जिसने कुण्डल, मुकुट और माला न धारण कर रखी हों।^१ महाभारत में विभिन्न नारी पात्रों -

१. सर्वं नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः ।

मुदिता शील वृत्तायुषां महर्षय स्वामातः ॥

न कुण्डली नामु कुटि नास्तम्बी नाप्त भोगवान् ।

ना मृष्टो न नातितांगो नासुगन्धिश्च विधत्ते ॥ रामायण बालकाण्ड ६।६।२०

अम्बिका अम्बालिका, उर्वशी, मेनका, शकुन्तला, दमयन्ती, तिलोत्त्मा आदि के चित्रण में कवि ने सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण किया है। महाभारत के सौन्दर्य चित्रण में नारी के अंगों का सूक्ष्म निरूपण मिलता है। नारी-सौन्दर्य का चित्रण कालिदास का प्रिय विषय रहा है जो उनकी लगभग सभी रचनाओं के नारी पात्रों में मिलता है। प्राकृत-मुक्तक काव्य में नारी सौन्दर्य का अंशिल चित्रण नहीं मिलता। नारी के कुछ अंग विशेषों का चित्रण अवश्य कुछ पद्यों में उधर उधर मिलता है।^१

उसके बाद 'दशकुमार चरित' एवं 'कादम्बरी' में नायिका के रूप का विशद वर्णन मिलता है।

हिन्दी काव्य में नायिका रूप के दर्शन सर्वप्रथम विद्यापति के काव्य^२ में होते हैं। रूप वर्णन की दृष्टि से विद्यापति संसार के बिरले कवियों में से एक समझे जाते हैं। वीरगाथा-काल में चंद बरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' में भी नायिका का रूप वर्णन मिलता है। उसके बाद प्रेमाख्यान-काव्य-परम्परा में भी नायिका के रूप के मनोरम चित्र मिलते हैं जिसमें मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत'^३ का रूप सबसे अधिक विख्यात है। उगुणीपासक कवियों में भी नायिका का रूप वर्णन मिलता है। सुरदास के 'सुरसागर' में नायिका-भेद के साथ-साथ नायिका रूप वर्णन मिलता है। यद्यपि सुरदास ने कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन ही अधिक किया है किन्तु फिर भी नारी सौन्दर्य की उपेक्षा नहीं है। राधा की शोभा का वर्णन कई स्थानों पर मिलता है। अष्टछाप के कवियों में नन्ददास ने ही नारी की विभिन्न भाव-भंगिमाओं और चेष्टाओं का निरूपण अधिक किया है। यों तो तुलसीदास के काव्य में भी नायिका का रूप देखने को मिलता है।

भक्तिकाल के बाद रीति-काल के कवियों की मनोवृत्ति नायिका के रूपांकन में अधिक रमी है। रीतिकाल के हर कवि ने नायिका का रूप वर्णन करना

१. महाभारत, वन पर्व ४३।७-११

२. हिन्दी काव्य की शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी, १०७

३. विद्यापति की पदावली, पृ० ६, ११, १३, १७, २० आदि

वपना धर्म समझा है , चाहे वह रीति परम्परा या रीति मुक्त परम्परा का कवि रहा है , फिर रसखान क्यों न नायिका के स्वरूप का चित्रण करते ।

नायिका का रूप-चित्रण

रसखान ने नख-शिश निरूपण की परिपाटी को लेकर नायिका का चित्रण नहीं किया । गौपियों के आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति की वीर वे अधिक आकर्षित हुए हैं । कृष्ण के रूप को देखकर गौपियों की क्या दशा होती है, वे किस प्रकार कृष्ण-रूप से प्रभावित होती हैं, रसखान ने उसकी सफल अभिव्यंजना की है ।

राधा का वर्णन दो स्थलों पर मिलता है - एक 'युगलजोड़ी' के रूप में वीर दूसरा 'राधा रूप छटा' के अन्तर्गत । 'राधा रूप छटा' में भी उन्होंने नखशिश वर्णन को प्रधानता न देकर यही दिखाने का प्रयास किया है कि राधा के रूप से प्रकृति तक प्रभावित है रसखान की मौलिकता का परिचायक है -

बासर तू जु कहूँ निकरै रवि को रथ भाग्य अकास वीर री
रैन यह गति है रसखानि कृपाकर जागन तेँ न टरै री ।
धीन निस्वास बल्योई करै निशि धीन की आसन पाय परै री
तेरी न जात कछु दिन राति बिचारे बटोही की बाट परै री ।^१

राधा के रूप के सामने प्रकृति के अनेक उपकरण भी लज्जित हो रहे हैं ।
उसका सुन्दर स्वरूप वसंतश्री के समान शोभित हो रहा है -

बति लाउ गुलाउ दुकूल ते फूल, अली कुंतल राजत है ।
मस्तूल समान के कुंज करानि मैं किंसुक की शबि हाजत है ।
मुक्ता के कदंब ते अंब के मौर पुने सुर कौकिल लाजत है ।
यह आवनि प्यारी जु की रसखानि बसंत-सी जाज विराजत है ।^२

१. सु० २०, ४८

२. सु० २०, ४९



7445

प्रकृति के अनेक उपकरणों के साथ-साथ उस रूप-सौन्दर्य से कृषि मुनियों की समाधि तक भंग हो जाती है -

यह जाको लहे मुख बंद समान कमान जो भौंह गुमान हरे ।

बति दीरघ नैन उरोजहू तैं मृग संजन न मीन की पांति दरे ।

रखलानि उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरे ।

कहि नोके नवै कटि हार के भार तौ तातों कहैं सब काम करे ।^४

प्रकृति के अनेक उपकरण मृग, संजन और मीन आदि लज्जित हो रहे हैं ।
उसके वक्षस्थल को देख कर मुनियों की समाधियां तक भंग हो गईं । उसकी सुकुमारता देखिये, हार के बौक से नायिका की कमर झुकी जा रही है ।

यौवनालंकार निरूपण

काव्यशास्त्रियों ने नायिका के २८ यौवनालंकार माने हैं, जो कि (शृंगाराभिव्यञ्जक) 'वात्तिक' अलंकार कहे गये हैं और उनके यौवन से सम्बन्ध रखते हैं । इनमें अंगज अलंकार तीन हैं - १. भाव २. हाव ३. हेल्ला । इनमें जिन्हें अयत्नज अलंकार कहते हैं वे सात हैं - ४. शोभा ५. कान्ति ६. दीप्ति ७. माधुर्य ८. प्रगल्भता ९. औदार्य और १०. धैर्य । स्वभावज अलंकारों में इन १८ अलंकारों की गणना है - ११. लीला १२. विलास १३. विच्छिन्नि १४. विव्वोक १५. क्लिक्किंचित १६. मोट्टायित १७. कुट्टमित १८. विभ्रम १९. ललित २०. मद २१. विह्वल २२. तपन २३. मौन्ध्य २४. विज्ञोष २५. कुतूहल २६. हसित २७. चकित २८. कैलि ।^५

१. सु० २०, २३

२. यौवने सत्त्वजास्तासामष्टाविंशतिसंख्यकाः ।

अलंकारास्तत्र भावहावहेलास्त्रयो गजाः ॥

शोभाकांतिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता ।

औदार्यं धैर्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजाः ॥

लीला विलासो विच्छिन्निर्विव्वोकः क्लिक्किंचितम् ।

मोट्टायितं कुट्टमितं विभ्रमो ललितः ॥

रसखान ने कुछ यौवनालंकारों से अपनी नायिका को सुसज्जित किया है।

शोभा

शोभा, रूप, यौवन, सौकुमार्य किंवा सुख भोग से संभूत नायिका (और नायक) के शरीर का सौन्दर्य है।^१ रसखान ने राधा-सौन्दर्य निरूपण में उसकी चर्चा की है -

बाजु अंगारति नैकु भटू तन, मंद करी रति की दुति लाजै ।

देखत रीझि रहै रसखानि सु और कहा बिधिना उपराजै ।

बार हैं न्यौतैं तरौन के मनो अंग पतंग पतंग जु राजै ।

ऐसैं लखे मुकतागन में तिल तैरे तरौना के तीर बिराजै ॥^२

कांति

शोभा ही कांति बन जाती है जब उसमें काम विलास की वृद्धि परि-
लक्षित होने लगती है।^३ नायिका की 'वयःसंधि' अवस्था के अन्तर्गत रसखान ने 'कांति' अलंकार का निरूपण किया है -

बांकी मरौर गही भृकुटीन लगीं अस्तियां तिरछानि तिया की ।

टांक सी लांक मई रसखानि सुदामिनी ते दुति दूनि दिया की ।

सौहैं तरंग अनंग की आनि औप उरीज उठी इतिया की ।

जोबन जोति सु यौ दमकै उसका दई मनौ बाती दिया की ॥^४

माधुर्य

माधुर्य नायक और नायिका की ऐसी रमणीयता है जो सभी प्रकार की अवस्थाओं में बहाल रह सकती है।^५ रसखान के काव्य में माधुर्यायौवनालंकार

७. विहृतं तपनं मोग्ध्यं विदोपश्च कुतूहलम्

हसितं चकितं कैलिरित्यष्टादश संस्थकाः ॥ साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद,
पृ० १७७

१. रूपयौवनलालित्यभोगधरंग भूषणम् ॥ साहित्यदर्पण, पृ० १८०

२. पु० १०, ५०

३. त्रैव कान्तिर्मन्मथाप्यायिधुतिः । साहित्यदर्पण, पृ० १८१

४. पु० १०, ५१

५. सर्वाविस्थाविशेषेषु माधुर्यं रमणीयता । साहित्यदर्पण, पृ० १८१

की अभिव्यक्ति दर्शनीय है -

तम चंदन खौर के बैठी भट्ट रही बाजु बुधा की बुता मनसी ।
मनी हनुवधून लजावन की सब ज्ञानिन कादि धरी गन-सी ।
रसखानि बिराजति चीकी कुची बिच उत्तताहि जरी तनसी ।
दमकें दृगवान के घायन की गिरि सेत के संधि के जीवन सी ।^१

लीला

लीला का अभिप्राय है प्रेमोद्रेक के कारण , क्या बंग, क्या वैष, क्या
बाधूषण और क्या प्रेम पगे वचन - सब से प्रियतम के अनुकरण^२ का है ।^१ रसखान
ने राधा को लीला यौवनालंकार से रंजित नहीं दिखाया । गौपी के भावों का
निरूपण करते हुए 'लीला' की स्वाभाविक अभिव्यंजना हुई है -

मोर-पक्षा विर ऊपर राखिहों गुंज की माल गरी पहिरांगी ।
बोढ़ि पितंबर लै लकुटी बन गोधन म्वारनि संग फिरांगी ।
भावतो मेरी वोहि रसखानि सी तेरे कहैं सब स्वांग करौंगी ।
या मुरली मुरलीधर की बधरान धरी बधरा न धरौंगी ॥^३

विलास

प्रिय के दर्शन, आगमन आदि के कारण , चालढाल, उठने बैठने, वासन-
शयन किंवा मुक्त और नैत्र आदि के व्यापारों की आनंद-सूचक विशेषता का नाम
'विलास' है ।^४ रसखान के काव्य में कई स्थलों पर 'विलास' के दर्शन होते हैं -

१. सु० २०, ४७

२. अंगरेजी-लंकारः प्रेमिभिर्वचनैरपि

प्रीतिप्रयोजितैर्लीलां प्रियस्यानुकृतिं विदुः ॥ साहित्यदर्पण, पृ० १८४

३. सु० २०, ८६

४. यानस्थानासनादीनां मुखनैत्रादिकर्मणाम्

विस्तृतं तु विलासः स्यादिष्ट उन्दर्शनादिना । साहित्यदर्पण, पृ० १८४

बाजु हों निहारयाँ वीर निपट कलिंदी-तीर
 दौउन को दौउन वों मुरि मुकाखो ।
 दौऊ पर पैयां दौऊ लेत हैं बलैयां उन्हें
 भूलि गई गैयां उन्हें गागर उचाखो ।^१

+ + + +

बंक बिलोकनि हंखनि मुरि , मधुर बैन रसखानि ।
 मिले रसिक रसराज दौऊ हरति हिये रसखानि ॥^२
 यहाँ 'बिलाख' की मनोरम छटा झरि हुई है ।

उलित

बंग प्रत्यंग का सुकुमार विन्यास ही उलित है ।^३ रसखान ने भी दो पद्यों^४ में अपनी नायिका की सुकुमारता का निरूपण किया है । नायिका के कौमल बंग रूप से लिपटे हुए हैं -

कौन की नागरि रूप की जागरि जाति लिये बंग कौन की बैटी ।
 जाको लो मुख बंद-समान तु कौमल बंगनि रूप लपेटी ।
 लाल रही जुप लागि है डीठि तु जाके कहूं उर बात न मेटी ।
 टौकत ही टटकार लगी रसखानि मई मनो कारिख-पेटी ॥^५

केलि

प्रियतम के साथ प्रेम-विहार में नायिका की क्रीड़ा का नाम केलि है । रसखान ने भी इसके दर्शन कराये हैं -

१. सु० २०, २००

२. सु० २०, २०६

३. सुकुमारतयांगतां विन्यासो ललितं भवेत् । साहित्यसर्पण, पृ० २८८

४. सु० २०, ५२, ५३

५. सु० २०, ५२

सैलें अलीजन के गन में उन प्रीतम प्यारे सौं नैह नवीनो ।
 बैननि बौध करे इत को उत तैननि मोहन को मन लीनो ।
 नैननि की बलिबो कहु जानि उसी रसखानि चितैबे को कीनो ।
 जा लखि पार जमार गई चुटकी घटकाइ बिदा करि दीनो ।^१

रसखान की रुचि नायिका के रूपांकन में अधिक नहीं रही । राधा के रूप का उन्होंने चित्रण अवश्य किया है , किन्तु उस तन्मयता के साथ नहीं जिस तन्मयता के साथ उन्होंने कृष्ण के रूप का चित्रण किया है । फिर भी रसखान की नायिका सुन्दर है । काव्यशास्त्र के अनेक यौवनालंकारों से सुसज्जित है । इस संक्षिप्त नारी रूपांकन में रसखान पूर्णतया सफल हुए हैं ।

नायक के रूप वर्णन की परम्परा

नायक के रूप वर्णन की परम्परा काव्य-शास्त्र की परम्परा के समान अति प्राचीन है । भारत ने अपने नाट्यशास्त्र में नायक भेद का वर्णन किया है । धर्मजय और साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी नायक भेद का निरूपण किया है । नायिका भेद की लम्बी सूची को देखते हुए नायक-भेद उपेक्षित कहा जायगा । हिन्दी के कवियों ने इस भेद को ज्यों का त्यों अपना लिया है । नायक रूप वर्णन की परम्परा के दर्शन बाल्मीकि रामायण में होते हैं । उन्होंने स्त्री पुरुष दोनों को सुन्दर दिखाया है ।^२

कालिदास के काव्य में नायक का रूपांकन मिलता है । अभिज्ञान शाकुंतल में शकुन्तला दुष्यन्त के रूप पर आसक्त हो उनके ध्यान में मग्न पाई जाती है । कालिदास की रुचि नायिका के सौन्दर्य निरूपण में ही अधिक रही है । नायक का रूपांकन वे उस तन्मयता के साथ नहीं करते हैं । प्राकृत साहित्य में भी नायक का रूपचित्र कम देखने को मिलता है ।

१. सु० २०, ११६

२. रामायण, बालकाण्ड ६।६।१०

भाषा साहित्य में भी विधापति की रुचि नायिका के रूप चित्रण में अधिक रही है यद्यपि उन्होंने कृष्ण का रूप वर्णन भी किया है। पृथ्वीराज रासो में नायक के रूपांकन के दर्शन होते हैं। रूप का विस्तृत वर्णन सुन कर नायिका नायक पर मोहित हो जाती है।

भक्तिकाल के प्रेमाख्यान-काव्य में प्रेम-गाथाओं में नायक का रूप-चित्रण मिलता है। प्रायः नायिका उसको सुनकर स्वप्न दर्शन से तथा देखकर मोहित हो जाती है। किन्तु इन सूफ़ी कवियों की रुचि नायिका के रूपांकन में ही अधिक रही है। पद्मावत में जितना विस्तृत तथा प्रभावोत्पादक रूपविवेचन पद्मावती का मिलता है उतना रतनसेन का नहीं।^१ यद्यपि बुग्गे द्वारा पद्मावती को मोहित करने के लिए रतनसेन के रूप का विवेचन किया गया है।

सगुणीपासक कवियों ने अपने वाराध्य देव का रूपांकन दिल सौलकर किया है। तुलसीदास जी राम के बाल सौन्दर्य निरूपण के साथ साथ उनकी युवा-व्यवस्था का भी रूपांकन करते हैं। तुरदास की रुचि कृष्ण के रूपांकन में अधिक रही है। वे राधा का रूपांकन करते तो अवश्य हैं किन्तु जिस तत्परता तथा लगन के साथ कृष्ण के अंग प्रत्यंग की रूप कटा का वर्णन करते हैं वह लगन हमें उनके नारी सौन्दर्य के निरूपण में नहीं मिलती। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उनके वाराध्य देव कृष्ण हैं। कृष्ण को उन्होंने सदा स्वं भगवान् के रूप में देखा। यही कारण है कि कृष्ण की बाल कवि का निरूपण करते हुए भी वे उनके अवतार रूप को नहीं भूलते।

रूप वर्णन करते हुए दो बातें इन कवियों के ध्यान में रहती हैं, एक तो वह यह कभी नहीं भूलते कि उनके वाराध्य देव भगवान् हैं। भगवान् के रूप चित्रण में मर्यादा का होना आवश्यक है इसीलिए उनके वर्णन में कहीं बश्लीलता नहीं जाने पाई है, वे सर्वथा मर्यादा का ध्यान रखते हैं।

मीरा ने भी प्रेमान्मत्त होकर कृष्ण का मनोमुग्धकारी रूपांकन किया है। रसज्ञान की रुचि भी कृष्ण के रूपांकन में अधिक रही है, नायिका का रूपांकन तो

१. देखिये - पद्मावत - नवशिक्ष खण्ड।

केवल वः (६) पदों में करके छोड़ दिया किन्तु कृष्ण का रूपांकन उन्होंने बड़ी लगन के साथ किया है ।

इस प्रकार रसज्ञान के पूर्ववर्ती कवियों ने भावों के मुख्य आलंबन नायक और नायिका के रूप-चित्रण पर उचित ध्यान दिया है । भारतीय संस्कृति आदर्शवादी और समन्वयवादी रही है । अतएव नायक-नायिका के वर्णन में भी उनके रूप और गुण का समन्वय उपस्थित किया गया है । मानव रूप के आदर्शों की निबन्धना की गयी है । कृष्ण आदि अवतारों की अलौकिकता के कारण उनके रूप-चित्रण में अपेक्षाकृत अधिक रमणीयता दृष्टिगोचर होती है । कृष्णभक्त रसज्ञान ने भी गोपी-कृष्ण के रूप-वर्णन में सौन्दर्य की मनोहर क्रांतियाँ प्रस्तुत की हैं ।

रसखान द्वारा नायक का रूप-चित्रण

यों तो सभी सगुणोपासक कवियों की रुचि अपने वाराध्य देव के रूपांकन में रही है किन्तु रसखान ने बड़ी तन्मयता तथा लगन के साथ कृष्ण के 'बंक विलोचन' ^१ "रंग भरी मुस्कान" ^२ रत्नमारी अंखियाँ ^३ तथा श्याम वर्ण की चर्चा की है। उन्होंने पैंतठ से अधिक कवित्त-सवैरों में कृष्ण के रूप-प्रभाव को निबद्ध किया है। कृष्ण के रूप का इतना विस्तृत निरूपण करने के दो कारण हो सकते हैं।

कहा जाता है कि ये कृष्ण पर चित्र-दर्शन द्वारा वासक्त हुए थे। कृष्ण का चित्र वाला स्वरूप उनके अवैतन मन में बस गया। उस स्वरूप की अभिव्यक्ति काव्य में होनी स्वाभाविक ही ~~थी~~ ^{थी}। मानव जिज्ञा पर वासक्त होता है उसका बखान विविध प्रकार से कर वात्स-वन्ती ^{प्राप्त} करना चाहता है। शीलिए रसखान के काव्य में उनके वाराध्य देव कृष्ण के रूप की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

नायक-रूप का इतना व्यापक चित्रण काव्य-परम्परा से भिन्न है।

रसखान के कृष्ण-रूपांकन में अधिक रुचि दिखाने का कारण यह भी हो सकता है कि नारी सौन्दर्य की अपेक्षा उन्हें पुरुष सौन्दर्य ने अधिक प्रभावित किया। यह भी कहा जाता है कि ये एक वणिज पुत्र पर वासक्त थे। यह वासक्ति उनके पुरुष-सौन्दर्य के कारण ही हुई होगी। इसे उनकी रूपासक्ति का उन्नयन कहा जायगा। बाद में वह प्रवृत्ति बदल कर कृष्णासक्ति में प्रवृत्त हो गई। और यह पुरुष सौन्दर्यासक्ति रूपी इश्कैमजाजी इश्कै हकीकी में बदल गया। अपनी अवृत्त वासना की तृप्ति उन्होंने कृष्ण के विस्तृत रूपांकन द्वारा की। कृष्ण के रूप या सौन्दर्य का निरूपण करते समय उन्होंने उनकी चेष्टाओं तथा उनके अंगों में रूप के दर्शन किये। कहीं कहीं सम्पूर्ण रूप या हवि का भी वर्णन किया है।

१. सु० १०, १७, १०६

२. सु० १०, १३०

३. सु० १०, १६६

कृष्ण के रूप का चित्रण

रसखान की कल्पना अत्यन्त सशक्त एवं सम्पन्न है। अतः उनकी अभिव्यक्ति में हमें वाचस्पत्य-विधानम् की प्रचुरता, चित्रों की अतिशय अनुरञ्जकता तथा रूपांकन की सहजता मिलती है।

रसखान को जहाँ कृष्ण के अंग प्रत्यंग की शोभा ने प्रभावित किया है वहीं उनके सम्पूर्ण रूप की छटा ने प्रभावित हुए बिना भी वे न रह सके। कृष्ण के इस रूप को उन्होंने गोपी बन कर ही देखा है और वे रूप के जाल में फँस कर तड़पने लगे -

मंजु मनोहर मुरि लहै तबही तबहीं पतहीं तज दीनी ।

प्राण पसैरु परे तलफै, वह रूप के जाल में बास-बधीनी ।^१

कृष्ण की मनोहर मुरति को देखते ही समस्त गोपियाँ प्रतिष्ठा त्याग देती हैं। उनके प्राण रूपी पंखी कृष्ण के रूप-रूपी जाल में फँस कर तड़पने लगते हैं। इसी भावना का वर्णन वे उनके वाचस्पत्य में छूब कर भी करते हैं -

बुनि री अज्जी कलबैली लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है ।

रसखानि लहै मन बूढ़ि गयो मधि रूप के विंधु कलोलत है ।^२

रसखान ने कृष्ण को रूप का सागर मान लिया है और गोपियों का मन उन्में छूब कर झोड़ा करने लगा। 'कलोलत' शब्द में उन्होंने छूबने की क्रिया को दर्शाया है कि छूबने से पहले किस प्रकार पानी में क्रिया होती है। छूबने वाला कभी ऊपर आता है कभी नीचे जाता है। यहाँ रसखान का सूक्ष्म निरीक्षण परिलक्षित है।

कृष्ण की सुन्दरता का सागर सुरदास ने भी कहा है, उनका वर्णन भी बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है -

१. पु० २०, १८४

२. पु० २०, १५७

देखी माई सुंदरता की सागर ।

बुधि विवेक पार न पावत मगन होत मन नागर ।

+ + + +

तदपि 'सुर' तरि उकीं न शोभा, रही प्रेम पवि हारी ।^१

कृष्ण सौन्दर्य के सागर हैं । क्या सागर को कोई तैर कर पार कर सकत है ? वह सौन्दर्य अनन्त और अपार है , लौकातीत है । बुद्धि और बल्लूके विवेक के बल पर उस रूप-लावण्य को देखकर गोपियां हैरान हैं । वे इस शोभा से पार न पा सकीं , उसमें फँस कर रह गई हैं ।

रसखानेगोपियों की वागवक्ति को मनोरम ढंग से व्यक्त किया है । गोपियां कृष्ण के रूप के फंदे में फँस जाती हैं । इस दशा का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं -

ढोरि लियो दृग चोरि लियो चित डारयो है प्रेम को फंद घनेरी ।

कैसी करीं अब कहीं निकलीं रसखानि परयो तन रूप को घेरी ।^२

पूरे वांगरूपक के द्वारा रसखान ने रूप का प्रभाव ही दर्शाया है । केवल रूप के फंदे में फँस कर ही रसखान की सन्तोष नहीं हो जाता । वह अपार रूप उनके ह्रिय-जिय और नेत्रों में भी बस जाता है -

दैत्यौ रूप अपार मोहन सुंदर त्याम को ।

वह ब्रज राज कुमार ह्रिय जिय नैननि में बत्यौ ।^३

ब्रज में कृष्ण के रूप का शौर मच गया, है । उस रूप की चर्चा को सुन कोई भी नागरी घर में नहीं रुकी । अब इसका उस रूप दर्शन के लिए चल दी -

निकली मति^{निकली} (डौंड़ी बजी बृजमंडल में यह कौन मरी ।

अब रूप की रौर परी रसखानि रहै तिय कोऊ न मांफ घरी ।^४

१. सुरसागर, पद १२४६

२. सु० १०, २८

३. सु० १०, १५२

४. सु० १०, १८०

सुरदास की गोपियां भी कृष्ण के सौन्दर्य से इतनी प्रभावित होती हैं कि उसका वर्णन करते नहीं बनता । हार कर वह कह उठती हैं - 'कहां लों वरनों पुन्दरताई' ^१ एक स्थान पर इसी भाव को सुरदास इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

जोभा-सिंध अंग अंगनि प्रति बरनत नाहिन और री ।
 किंतु देखीं मन मयी तितहिं की, मनो भरे की और री ।
 बरनो कहा अंग-अंग जोभा, मरी मुख जल-रास री ।
 ठाठ गोपाल बाल-झवि बरनत, कवि-कुल करिहैं हांस री ।
 जो मेरी अंसियनि रसना होती कहती रूप बनाइ री ।
 चिरजीवहु जुदा की ढोटा, सुरदास बलि जाइ री । ^२

सुरदास के रूप-वर्णन और रसखान के रूप-वर्णन में एक अन्तर यह ही जाता है कि सुरदास की दृष्टि कृष्ण के बाल-सौन्दर्य पर अधिक गई है । गोपियां उसी से इतनी प्रभावित होती हैं कि घर से नाता टूट जाता है ।

जब तैं आंगन खेलत देख्यो, मैं जुदा की पूत री ।
 तब तैं गृह लीं नातीं टूट्यो, जै कांची सूत री । ^३

एक बालक को आंगन में खेलते हुए देख कर घर से सम्बन्ध विच्छेद कर देना अस्वाभाविक प्रतीत होता है । रसखान ने कृष्ण के युवा रूप से प्रभावित होकर गोपियों का लोक लाज त्यागना दिखाया है, बालरूप के प्रभाव से नहीं ।

रसखान महावत रूप उलौने को, मारग तैं मन मोरत है ।

गृह काज समाज सबे कुल लाज, लला ब्रज राज को तोरत है । ^४

किन्तु रसखान के काव्य में सुरदास की भांति रसभास नहीं मिलता । उनकी गोपियां कृष्ण के बालरूप को देखकर घर से सम्बन्ध नहीं त्यागतीं । बाल गोपाल को आंगन

१. सुरदासर, पद ७२६

२. सुरदासर, पद ७५७

३. सुरदासर, पद ७५४

४. सु० १०, १७१

में खेलते देख कर तथा कौवे द्वारा माखन रोटी ले जाने पर वे काग के भाग को उड़ाकर ही उन्तोष कर लेती हैं।^१ रसखान की गोपियों में कृष्ण के यौवन को देख कर शृंगार-भावनाएं जागृत होती हैं, बालरूप को देख कर नहीं। बुरदास द्वारा इस प्रकार के भाव दिखाने का कारण यह भी हो सकता है कि उन्होंने कृष्ण को भगवान् के रूप में देखा है। यही वे उनके अनन्द्य निरूपण में कलौकितता के दर्शन होते हैं। भगवान् के प्रत्येक रूप से प्रभावित होना भक्त के लिए स्वाभाविक ही है। यों भी बुरदास कृष्ण के बालरूप के उपासक थे। रसखान ने कृष्ण के रूप से प्रभावित होकर गोपियों को बन-बन में डुलाया है। गोपियों ने कृष्ण की बांकी, बड़ी बड़ी बांकी, सुन्दर हाव, सुधानिधि के समान मुख, सुलझाये प्रतीत होने वाले मनोहर लुभावने रूप का वर्णन किया है -

बांकी बड़ी वंखियां बड़रारे कपोलनि बोलनि की कल बानी ।

सुन्दर हाव सुधानिधि तो मुख, मूरति रंग सुधारत-जानी ॥

ऐसी नवेली ने देखे कहूं ब्रजराज लला वति ही मुख दानी ।

डोलति है बन बीधनि में रसखानि मनोहर रूप लुभानी ॥^२

गोपियां गुण-रूप-निधान कृष्ण से प्रार्थना करती हैं कि बांसुरी बजाकर शरीर के ताप को दूर कर दो -

मोहन तुजान गुन-रूप के निधान फेरि

बांसुरी बजात तन-तपन तिराउ रे ।^३

रूप के साथ-साथ रसखान ने मोहन की छवि का भी निरूपण किया है। कृष्ण की मोहनी छवि का सबसे अधिक प्रभाव मधुर अथवा कान्ता रति से प्रेरित गोपियों पर पड़ता है। मोहन की छवि को देख कर उनके नेत्र भी उनके नहीं रहते। रूप से हटाने पर वैसे ही कठिनाई से हटते हैं जैसे धनुष की प्रत्यंचा -

१. गु० १०, २१

२. गु० १०, १३३

३. गु० १०, ७३

मोहन हवि रसखानि लखि , जब दृग अपने नाहिं
ऐने जावत धनुष से, कूटे सर से जाहिं ।^१

सुरदास ने कृष्ण के हवि निरूपण में भी कृष्ण के बाल सौन्दर्य से दांपत्य भाव को जागृत कराया है ।

डा० ब्रजेश्वर शर्मा का कहना है कि - 'कृष्ण का जो बाल रूप नन्द, यशोदा और यत्नत्क नर-नारियों के वात्सल्य का बालम्बन है वही रूप किशोरियों और नवोढावों के हृदय में दाम्पत्य भाव जागरित करता है । कृष्ण के बाल-रूप से प्रभावित होकर एक गोपी कहती है -

बाज गई हों नंद-भवन में, कहा कहीं गृह चैन री ।

चहुं और चतुर लच्छमी कोटिक दुखित धैन री ।

घुमि रहीं जित तित दधि मथनी जुनत मेघ-धुनि लाजै री

वरनी कहा उदन की लोभा, बैकुण्ठ ते राजै री ।

वैलि लई नव बधु जानि जंह खेलत कुंवर कन्हाई री ।

मुख देखत मोहिनी ली लागै, रूप न बरन्यो जाइ री ।^२

रसखान कृष्ण की हवि पर कोटि कामदेव वारने को तैयार हैं । उनकी हवि ऐसी अनुपम है कि उसकी उपमा खोजने पर भी कविजनों को नहीं मिलती ।

'जाकी उपमा कविन नहिं पाई रहै तु खोज'^३

कामदेव की नवरंग मरी हवि के समान गोपियों के नेत्रों में कृष्ण मूरति गड़ी है -

नवरंग अनंग मरी हवि ली वह मूरति बांखि गड़ी ही रहै^४

यहां रसखान ने कृष्ण के रूप के प्रभाव का मनोरम चित्रण किया है ।

नवरंग रंजित कामदेव के समान उस स्वरूप का गोपियां स्मरण कर रही हैं । गोपियां कृष्ण की महाहवि को देखने के लिए लालायित हो रही हैं -

१. सु० १०, १५३

२. सुर मीमांसा, पृ० १८४

३. सु० १०, १४६

४. सु० १०, १२७

मन भाई रही रसज्ञानि महा हवि मोहन की तरसाई रही ^१
 कृष्ण के कानों में कुंडल, मोरपक्षा तथा हृदय पर बनमाला शोभित है । हाथ में
 मुरली, अघरों पर मुस्कान की तरंग ऐसा प्रतीत हो रहा है कि महाहवि जोलह
 सिंगार कर विराज रही है -

कुल काननि कुंडल मोर पक्षा उर पै बनमाल विराजति है । ^२

गोपियों के मन में जांवरी मुरति की वासक्ति के कारण कुलकानि का
 निभना भी कठिन हो गया है -

कैसे निभै कुल कानि, रही दिये जांवरी मुरति की हवि काँकै ^३
 रसज्ञान ने कृष्ण के रूप तथा हवि का सुन्दर वर्णन किया है । उनमें मानव रूप
 सौन्दर्य के नाना रूपों एवं रंगों की सूक्ष्म दृष्टि से देखने की अद्भुत क्षमता है।
 उनका सौन्दर्य निरूपण अत्यन्त परिष्कृत और सुसंस्कृत है ।

१. सु० १०, १५४

२. सु० १०, ६७

३. सु० १०, ३६

नक्षत्रिशिख निरूपण

सौन्दर्य-प्रेम मानव का स्वभाव रहा है। रूप ने उसे उदैव ही आकृष्ट किया है चाहे वह रूप स्त्री का हो या पुरुष का, सम्पूर्ण शरीर का हो अथवा विशिष्ट अंगों का भारतीय काव्य में शारीरिक अंगों के रूप-निरूपण की नक्षत्रिशिख वर्णन या शिखनख वर्णन की संज्ञा दी गई है और फारसी काव्य में इसे 'सरापा' अर्थात् चिर से (लेकर पैर तक) कहा गया।

रसज्ञान ने काव्य परम्परा से आई नक्षत्रिशिख-वर्णन की रूढ़ परिपाटी को नहीं अपनाया। उन्होंने नख से लेकर शिख तक अंग-प्रत्यंग वर्णन नहीं किया। कृष्ण के जिस अंग ने उन्हें अधिक आकर्षित किया वे उसका ही वर्णन करने लगे। उन्होंने कृष्ण के नेत्र, माँह, मुख, केश आदि का चित्रण किया है। परम्परा के अनुसार समस्त अंगों का चित्रण नहीं किया।

नेत्र
--

नेत्र मुख की सबसे महत्वपूर्ण आकर्षक वस्तु माने गये हैं। इसी से नेत्र वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। रसज्ञान ने भी कृष्ण के नेत्रों का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। संस्कृत आचार्यों द्वारा बताये गये नेत्र के उपमानों को भी उन्होंने ग्रहण किया है। केशव मित्र ने मृग, मृगनेत्र, कमल पत्र, मीन, संज्ञ, चक्रोर, केतक, भ्रमर, काम-बाण आदि नेत्रों के उपमान कहे हैं।^१ काव्यकल्पलता-कार ने नेत्रों के उपमानों का उल्लेख करते हुए कहा है - 'दृशौश्चक्रोर हरिण मदिराः

संज्ञोन्मुज्ज' यद्यपि ये उपमान काव्य में रूढ़ हो गये हैं किन्तु रसज्ञान ने इन उपमाओं को अपनाया है। इन उपमानों की कल्पना के मूल में रूप, गुण और व्यापार है। मृग की जहाँ केवल दीर्घता के कारण सुन्दर नहीं मानी जातीं उनमें एक प्रकार का मौलापन और साथ ही चांचल्य भी पाया जाता है। चक्रोर से उपमा देते हुए उसकी शीतलता की ओर कवि का ध्यान रहा है किन्तु रसज्ञान की

१. कर्लकार शैलर १।१।६

२. काव्य कल्पलतावृत्ति, पृ० १३६

कृष्ण के नैत्रों ने इतना प्रभावित किया है कि समस्त उपमान उनके सामने फीके पड़ गये -

लंजन मीन सरोज को मृग को मद गंजन दीरघ नैना^१

कृष्ण के नैत्रों ने प्रभावित होकर गौपियां लोक लज्जा का त्याग कर कह उठती हैं -

लोक की लाज तज्यौ तबहीं जब देख्यौ सखी ब्रज चन्द अलौनी ।

लंजन मीन सरोज की कृति गंजन नैन लला दिन होना ॥^२

रसखान ने कृष्ण के नैत्रों की उपमा बाण से भी दी है । बांसी की मार के लिए बाण का उपमान गृहीत किया है । यों भी बाण का मुकीलापन नयन-कोरकों से बहुत समता रखता है ।

तिरछी बरछी सम मारत हैं दृग-बान कमान गु कान लग्यौ^३

+ + +

जोहन बंक बिसाल के बाणानि बैधत हैं घट तीक्ष्ण मारी^४

रसखान ने परम्परागत उपमाओं का प्रयोग भी बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया है ।

नैत्रों के लिए श्वेत, श्याम तथा रत्नार रंगों का वर्णन भी काव्य-रूढियों में गिना जाता है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कथन कि - 'बांसी का वर्णन अनेक रंग का किया जाता है - कभी श्याम, कभी हरा, कभी श्वेत, कभी लाल और कभी मिश्र रंग'^५। बांसी को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उनके मिश्र रंगों का वर्णन काव्य में अधिक हुवा है । रीतिकाल में इसके उदाहरण बहुत मिलते हैं ।

१. सु० १०, ३४

२. सु० १०, ७९

३. सु० १०, ६५

४. सु० १०, १६६

५. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २५४

रसखान नैत्रों के समस्त रंगों के नाम की चर्चा न करके केवल रंगमयी कह कर ही उन्तोष कर लिया है -

बांकी विलोकनि रंग मरी रसखानि खरी मुसकानि पुहाई ^१
रंग शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अर्थ में प्रयोग किया है -

बंक विलोचन हैं दुख मोचन दीरघ रौचन रंग भरे हैं ^२
रसखान की नैत्रों के लिए लाल वर्ण अधिक प्रिय है। उसका वर्णन कई पद्यों में मिलता है। एक स्थान पर कृष्ण की जांखों के लिए रतनारी विशेषण का प्रयोग किया है -

कौन की लाल खलौनै खसी वह जाकी बड़ी बखियां रतनारी ^३
‘रौचन’ शब्द का प्रयोग करते हुए रसखान कहते हैं -

बंक विलोचन हैं दुख मोचन दीरघ रौचन रंग भरे हैं
धूमत बारुनी पान किये जिमि, धूमत बानन रूप टरे हैं ^४
रसखान ने कृष्ण के लाल नैत्रों की चंचलता की उपमा शराबी से दी है। यह प्रभाव रसखान पर फारसी उर्दू शायरी से भी पड़ा है। वहां भी जांखों में शराब की सी मस्ती देखी गई है। प्रसिद्ध उर्दू कवि मीर तकी मीर भी कहते हैं -

मीर उन नीम बाज़्र जांखों में। सारी मस्ती शराब की सी है। ^५
नज़ीर अकबराबादी ने भी कहा है -

जियर वह देखें उघर सफ़ की सफ़ उलट देते हैं।
मरी है शौज़ के ऐसी शराब जांखों में ॥ ^६

१. जु० २०, ६६

२. जु० २०, १७६

३. जु० २०, १६८

४. जु० २०, १७६

५. गुलहाय परेशां, पृ० ६६

६. गुलहाय परेशां, पृ० ६७

उर्दू और फ़ारसी शायरी बांछों की लाली के वर्णन में कहीं कहीं वीभत्सता बागई है किन्तु रसखान ने न तो बांछों की उपमा संवर दे दी है न तीर है । न ही उनके महबूब की बांछें रोते रोते लाल होती हैं । उन्हें नेत्रों के लिर लाल वर्ण प्रिय है । उसका प्रयोग उन्होंने बहुत जगह किया है ।

कवियों की रुचि विशाल नेत्रों के निरूपण की ओर अधिक रही है । वास्तव में पूर्वी देशों में बड़ी बड़ी वस्त्रों बांछें प्रकृति की देन हैं । कालिदास ने पार्वती को वामताक्षी कहा है । श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि उनके दीर्घ नेत्रों का वर्णन करना नहीं भूले हैं । मीरा ने भी कृष्ण के बड़े बड़े नेत्रों का वर्णन किया है -

बसो मेरे नैनन में नंदलाल

मोहनि मूरति सांवरि मूरति नैणा बने विशाल ।^१

रसखाने भी विशाल नेत्रों में सौन्दर्य की फलक देखी । विशाल नेत्र अधिक प्रभावोत्पादक होते हैं । उनकी चोट को गोपियां सहन नहीं कर सकीं । वे हिरन की भांति विशाल नेत्रों के बाण को खाकर गिर पड़ती हैं -

रंग भरयो मुसकात लला निकल्यो कल कुंज तें सुखदाई ।

में तबही निकली घर तें तकि नैन विशाल की चोट बलाई ।

धूमि गिरी रसखानि तबै दृष्टिनी जमि बान लगे गिरि जाई ।

टूटि गयो घर को तब बंधन छूटि गी वारज-लाज-बड़ाई ।^२

गोपियां विशाल-नेत्रों वाले कृष्ण को ही देखना चाहती हैं -

चाहति ही जु जियायी मटू तो दिखावो बड़ी बड़ी वास्तिन वारी^३

रसखान कृष्ण की बड़ी बांछों से गोपियों को प्रभावित दिखाते हुए कहते हैं -

१. मीरा की प्रेम-साधना, पृ० १६६

२. पु० २०, ३०

३. पु० २०, ८०

बंक विलोकनि नैन विशाल तु दंपति कौर कटाक्षन मारै ^१

+ + + +

बांकी बड़ी अंखियां बड़रारे कपोलनि बोलनि कौ कल बानी ^२

+ + + +

मैन मनौहर नैन बड़े सखि तेननि ही मन मेरो हरयो है ^३

कृष्ण के विशाल नेत्र मन को हरने के साथ साथ चित्त का चैन समाप्त करने वाले हैं -

दीर्घ बंक विलोकनि की अवलोकनि चौरति चित्त को चैना ^४

चित्त का चैन समाप्त करने के साथ साथ दुःख का नाश भी करने वाले हैं -

बंक विशाल रसाल विलोचन है दुःख मोचन ^{मोहन} भाई ^५

रसस्नान विशाल नेत्रों के साथ-साथ विलक्षण चितवन का वर्णन करना भी नहीं भूले हैं। वे जानते थे कि प्रेमीत्पादन में बड़ी बड़ी बांखें वह त्याग नहीं रखतीं जो विलक्षण चितवन रखती है। कृष्ण के बंक विलोचन का भी अचूक प्रभाव गोपियों पर पड़ता है। वे उसकी देख कर लोट हो जाती हैं -

बंक विलोचन लोट भई रसस्नानि हियो हित दाहत है तन ^६
गोपियों को कृष्ण की बांकी चितवन बहुत ही पुहावनी लगती है -

बांकी विलोकनि रंग भरी रसस्नानि खरी मुखानि पुहाई ^७

१. सु० १०, १३०

२. सु० १०, १३३

३. सु० १०, १३४

४. सु० १०, ३१

५. सु० १०, १६२

६. सु० १०, ५७

७. सु० १०, ६६

कटाक्षोपात का प्रभाव भी मानव पर पड़ता है। रसखान को भी कृष्ण के कटाक्ष बहुत प्यारे लगे हैं। उन्होंने कई पदों में कटाक्ष के प्रभाव का वर्णन किया है -

कै हित होइयै पारियै पारनि रेखें कटाक्ष हीं हियरा हर ^१

+ + +

बाके कटाक्ष चितैबी सिख्यो बहुधा वरज्याँ हित के हितकारी ^२

कृष्ण के कटाक्ष गोपियों पर अबूक प्रभाव डालते हैं। वे उज्जा का त्याग कर देती हैं -

मौह्न रूप हवि वन डौलति धूमति री तजि लाज विचारे ।

बंक विलोकनि नैन विचाल सुदंषति कौर कटाक्षन मारे । ^३

+ + +

वह तक्षि चक्षु कटाक्षन की हवि मोरनि भीहं भृकुटनि की ^४

कटाक्षोपात उभैत किया है। इसका वर्णन प्रेम के उन्माद पक्ष का द्योतक है। इसी से रसखान भी कृष्ण के तीक्ष्ण कटाक्षों की हवि का भी वर्णन करते हैं, वे उनके मन में बस गये हैं। प्रेम को मादक बनाने के लिए तथा उद्दीप्त करने के लिए कटाक्ष से अधिक उन्मादक और क्या हो सकता है।

भृकुटि-निरूपण

रसखान ने कृष्ण के नेत्रों के साथ साथ उनकी भीहों में भी सौन्दर्य के दर्शन किये। नलशिक्ष वर्णन करते समय भीहों का भी वर्णन किया जाता है। संस्कृत कवियों ने भी भी की उपमा कमान से दी है। यह उपमान रूप साम्य को ध्यान में रखते हुए सार्थक प्रतीत होता है। ~~मन्त्रों-का~~ भवों का आकार कमान

१. सु० १०, ११५

२. सु० १०, १२५

३. सु० १०, १२०

४. सु० १०, १६५

से साम्य रखता है। कमान से तीर छोड़ कर जिस प्रकार धायल किया जाता है उसी प्रकार भवों के कटाक्ष तथा नैत्राभिचालन भी धायल करते हैं। इसी रूप-साम्य तथा कर्म साम्य को लेकर कमान से भवों की उपमा देना ताभिप्राय है। इसीलिए रसखान ने भी कृष्ण की भवों का वर्णन करते समय उनकी उपमा कमान से दी है -

भाँह कमान सों जोहन की तर बेधत प्राननि नंद को होना ^१

भाँह मटकाना चपलता का प्रतीक माना गया है। काव्यशास्त्रियों ने इसे अंगज अलंकार के अन्तर्गत हाव माना है। रसखान की पैनी दृष्टि से भाँह की मटक न ह्वि सकी और उनकी गोपियाँ कृष्ण के चपल रूप को देखना चाहती हैं -

बीर की चटक बी लटक नव कुंडल की

भाँह की मटक नैह बाँसिन दिसाउ रे ।^२

भाँह मरौर कर क्रोध का प्रदर्शन भी किया जाता है। यह भी अनुभाव के अन्तर्गत ही आता है -

भाँह मरौरिबी री रुतिबी फुकिबी पिय सों वजनी विखरावै ^३

यहाँ भाँह मरौझना आलम्बन की चेष्टाओं के अन्तर्गत है।

मुख

मानवीय सौन्दर्य में मुख की सुकुमारता, वाकृति सौन्दर्य तथा प्रसन्न मुद्रा आदि का महत्त्व निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। रसखान ने भी कृष्ण के मुख का वर्णन किया है। काव्य परिपाटी के अनुसार कमल और चन्द्रमा का उपमान रूप में ग्रहण किया है। कृष्ण का चन्द्रमा के समान मुख ही गोपियों के मन को मोहता है। *चंद सों जानन येन-मनोहर बैन-मनोहर मोहत है मन*^४

१. सु० २०, ७२

२. सु० २०, ७३

३. सु० २०, १२५

४. सु० २०, ५७

प्रतीप वर्णकार द्वारा रसखान ने एक स्थान पर मुख को चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर दिखाया है -

मौल्य सुन्दर वानन चंद तें कुंजनि देख्यौ मैं स्याम चिरीमेन ।^१

निम्नलिखित पद में कौटिक चन्दा कृष्ण के मुख को देख कर पराजित हो गये हैं -

जाको लखै मुख रूप अनुपम होत पराजय कौटिक चन्दा ।

हौं रसखानि विकाइ गई उन मौल लई तु उजनी सुखंदा ॥^२

सूरदास ने भी कृष्ण के मुख की उपमा चन्द्रमा से दी है -

कमल नैन ससि बदन मनोहर, देखौ ही पति बति विचित्र गति ।^३

+ + + +

बांगन लै नंद के नंदा । जलकुल कुमुद सुखद चारु चंदा ।^४

सूरदास के सम्मुख कृष्ण का बाल रूप ही रहता है जबकि रसखान युवक कृष्ण की चर्चा करते हैं । और गोपियों को उनके रूप से इतना प्रभावित दिखाते हैं कि वे कृष्ण के मुखरूप को देख कर बिक जाती हैं ।

रसखान ने कृष्ण के मुख की उपमा पुथानिधि से भी दी है -

सुन्दर हाव पुथानिधि तौ मुख नैननि चैन महा रस भीनी ।^५

मान करती हुई नायिका ने उसकी सखी कृष्ण के रूप का निरूपण करते हुए कहती है कि ऐसे पुथानिधि तम मुख वाले कृष्ण से तुम क्यों मान करती हो । रसखान ने काव्य परिपाटी के अनुसार चन्द्रमा के साथ ही कमल को भी मुख के उपमान-रूप में वंक्षित किया है।

रसखान ने कृष्ण के मुख के सौन्दर्य से प्रभावित हो कर उनके लिए मंजु विशेषण का प्रयोग किया है -

मान दियौ मन मानिक के संग वा मुख मंजु पै जीवन वारी^६

१. सु० २०, १३२

२. सु० २०, १६१

३. सूरसागर, पद ६२५

४. सूरसागर, पद ७३५

५. सु० २०, ११४

६. सु० २०, १२४

गौपियां कृष्ण के मुख मंजु पर अपना यौवन तक वारने को तैयार हैं ।
 रसखान ने कृष्ण के मुख के लिए 'बु' विशेषण का भी प्रयोग किया है तथा उसके
 दर्शन मात्र से गौपियों के ताप को दूर कराया है । ब्रज बालारं उस पुन्दर मुख को
 देखने के लिए फरोसे में से फांकती हैं । यहाँ मुगल काल का प्रभाव स्पष्ट है ।
 परदा प्रथा के कारण बालारं सामने तो बा नहीं सकती थीं । झारतों में फरोसे
 बने होते थे , वहीं से वे अपने प्रिय के दर्शन करती थीं ।

हेरत टेरि कैं चहुं ओर तैं, फांकि फरोखन ते ब्रज बाला

देखि बु जानन की रसखानि तज्याँ अब धौव को तप-काला ^१

कृष्ण के सुवानन को देखकर गौपियों की तमाम धूम समाप्त हो जाती थी ।

रसखान को राधा या गौपियों के मुख की अपेक्षा कृष्ण के मुख ने अधिक
 प्रभावित किया है । इसका स्पष्ट कारण यही है कि वे गौपी-भक्त न होकर
 कृष्ण-भक्त थे । उनका मन अपने आराध्य के रूप-वर्णन में ही अधिक रमा । इसलिए
 उन्होंने उसके रूप-चित्रण पर विशेष बल दिया ।

केश
 --

केश वास्तव में सौन्दर्य को बढ़ाने वाले माने गये हैं । नक्षत्रिण वर्णन में
 केशों के सौन्दर्य की चर्चा संस्कृत साहित्य से चली आ रही है । बलंकारशेखर कार
 ने केशों के उपमान की तालिका प्रस्तुत करते हुए तम, शैवाल, मेघ, वह्न, भ्रमर, चामर,
 यमुना वीचि, नील मणि, नील कमल, और आकाश का उल्लेख किया है ।^२ केशों
 के गुणों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि उनमें दीर्घता, कौटिल्य मार्दव,
 नैविज्य और नीलापन होना चाहिए ।

रसखान ने केवल घुंघराले बालों की चर्चा की है -

'मोतिन माल बनी नटके, लटकी लटवा लट घुंघरवारी' ^३

१. बु० २०, २६

२. बलंकारशेखर, पृ० ४१

३. बु० २०, २६६

सूरदास ने भी कृष्ण की कुटिल बलकों की चर्चा की-

कुटिल बलक, मोहनि-मन विहंसनि, भृकुटी विकट ललित नैननि पर^१
रसखान ने केशों की रूप की सेना भी कहा है-

गंडनि पे झलकै हवि कुंडल मंडित कुंतल रूप की सेना^२

यहां बालों के लिए सेना शब्द बहुत ही आर्थिक है। जिस प्रकार सेना में असंख्य सिपाही होते हैं वैसे ही शिर पर भी अनेक बाल नहीं मानों रूप की सेना शोभित हो रही है। रसखान ने बालों में अनुपम सौन्दर्य के दर्शन किये। उस सौन्दर्य के लिए कोई उपमान उपयुक्त न जान कर उन्हें हबिवान कहा -

मौर पला सिर कानन कुंडल कुंतल तो हबि गंडनि हार्^३

रसखान ने केशों के लहराने को उनका कीड़ा करना बताया है। यह वर्णन बड़ा आकर्षक है -

रौर परी हबि की ब्रजमंडल कुंडल गंडनि कुंतल केली^४

वस्त्र

मानव जीवन में वस्त्राभूषण के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। वस्त्र मानव की दैनिक आवश्यकताओं^५ में है। सुन्दर वस्त्राभूषण मानवीय सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं। उनकी चर्चा काव्य में उदा से चली जा रही है।

रसखान ने श्री कृष्ण को जिस वैश भूषा से सुसज्जित दिखाया है उसकी चर्चा उनसे पहले भी कृष्ण भक्त कवि करते रहे हैं। बाद में भी कवियों ने इसी परम्परा का पालन किया है। उनके बाल कृष्ण आंगन में 'पीरी कझौटी' पहने हुए खेलते हैं। उनकी गोपिकाओं की आँखें भी काळे पीताम्बर वाले के ऊपर ही

१. सूरसागर, पद ७११

२. सु० २०, १५६

३. सु० २०, १६२

४. सु० २०, १७०

ठहरती है ।

फेरि फिरें बंस्त्रियां ठहराति हैं कारे पितंबर वारे के ऊपर^२
उनके शरीर पर पीला वस्त्र देखकर दामिनी की दुति भी लज्जित होती है -

रखसानि लखें तन पीत पटा उत दामिनी की दुति लाजति है^३
गौपियों के कृष्ण घन से भी नवीन प्रतीत होते हैं और पीला वस्त्र बिजली के
समान प्रतीत होता है।^४ अन्य स्थान पर रखसान पीताम्बर की चटक का वर्णन
करते हुए कहते हैं -

वह पीत पटक्कनि की चटकानि लटक्कनि और मुहुट्टनि की।^५
यहां रखसान ने जानुप्राप्त शैली में नादात्मक ढंग से कृष्ण के पीले वस्त्र
की सराहना की है। रखसान कृष्ण के दुकूल की चटक के नये पन का निरूपण
करते हुए कहते हैं -

दौड कानन कुंछल, मोर पत्ता तिर लोहै दुकूल नयो चटकी।^६
रखसान ने कृष्ण के सर पर सुन्दर पाग सुशोभित दिखाई है। यह उन पर तत्काली
प्रभाव है जो स्वाभाविक ही है। मुगल काल में साफा या पगड़ी बांधना शिष्टत
एवं सम्यता का द्योतक समझा जाता था। वमीर वजीर से लेकर बादशाह तक उसका
प्रयोग करते थे तो फिर रखसान अपने कृष्ण को कैसे पाग बिना दिखाते -

सोहत हैं चंदवा तिर मोर के तैजिये सुंदर पाग क्यी है^७
रखसान केवल पाग का ही वर्णन नहीं करते साथ साथ उसकी ज़रतारी
भी दिखाया है। ज़रतारी उस कपड़े को कहते हैं जिसमें ज़री के तार लगे रहते हैं

१. सु० २०, २७

२. सु० २०, ३४

३. सु० २०, ६७

४. सु० २०, १६२

५. सु० २०, १६५

६. सु० २०, १७७

७. सु० २०, १७६

बीर ज़र, सोने को कहते हैं। यह बहुमूल्य वस्त्र होता है। भारत में इसका प्रचलन मुस्लिम संस्कृति की देन है। रसखान को भी यह कपड़ा अमूल्यता, मय्यता तथा शोभा के कारण भाया और उन्होंने अपने बाराध्य देव को भी ज़रतारी पगिया से सुसज्जित किया।^१

बंग ही बंग जराव लो वरु लोच लो पगिया ज़रतारी।^२
रसखान ने कृष्ण के वस्त्रों के निरूपण में विशेष रुचि नहीं दिखाई। इसका कारण उनकी भावुकता तथा वस्तु परिगणन शैली का निर्बंध ही हो सकता है। कृष्ण का बाह्य स्वरूप जो आगे चल कर रीतिकाल के कवियों के आकर्षण का विषय बना रहा, रसखान को प्रभावित न कर सका क्योंकि उन्हें कृष्ण से आन्तरिक प्रेम था।

आभूषण

कृष्ण को एक विशेष स्वरूप में चित्रित करना कवि परिपाटी रही है। श्रीमद्भागवत से लेकर आधुनिक साहित्य तक में कृष्ण के स्वरूप का चित्रण हुआ है। प्रायः सभी कवियों ने उनकी राज रज्जा में आभूषण को विशेष महत्व दिया है। चुरदास जी बरबस कह उठते हैं -

स्याम सुमग तनु पीत बसन-दुति, सोहे बनमाल बहुभुत वति।^३
रसखान ने भी कृष्ण को विभिन्न मालाओं से विभूषित दिखाया है जिनमें बनमाल, गुंजी की माल, मोक्ति माल, मणिहार, हमेलन हार आदि हैं। गोपियों को कृष्ण का वही स्वरूप पसन्द है -

गुंज गरीं तिर मोर पखा वरु चाल गयंद की मो मन भावै^४

+ + + +

केसरिया पट केसरि खौर, बनौ गर गुंज की हार ढरारो^४

१. सु० २०, १६६

२. चुरदासर, पद ६२५

३. सु० २०, १५

४. सु० २०, १६३

कृष्ण बनमालाओं से सजे हुए भी दिखाई पड़ते हैं -

कल काननि कुंडल मौर पक्षा उर पे बनमाल विराजति है ^१

+ + +

मौर पक्षा मुरली बन माल लहें दिय को दियरा उमह्यौ री ^२

+ + +

तैसिये माल विराजति जैसी दियें वन माल लती है ^३

एक स्थान पर रसखान के कृष्ण मणिहार भी पहने हुए हैं -

मनि-हार गरे, सुकुमार धरे नट-मेख बरे, पिय की टटकी ^४

मणिहार पहने हुए कृष्ण रसखान को बहुत सुकुमार प्रतीत होते हैं ।

के गले में हेलन हार पहनाया जाता है । उसकी चर्चा करते हुए रसखान कहते हैं

हालि हेलनि हार निहारत बारत ज्यौ चुक्कारत झीनहिं ^५

रसखान ने कृष्ण को विभिन्न प्रकार की मालाओं से सुसज्जित दिखाया है । का जाता है कि रसखान को स्वयं मालारं पहनना बहुत पसन्द था । मन्तमाल वा में भी उसकी चर्चा मिलती है । फिर उनके 'वाराध्य' माला के बिना कैसे रहें

कुंडल

कृष्ण के स्वरूप चित्रण में कुंडल का महत्व भी कुछ कम नहीं है । वहां भी उनके आभूषणों की चर्चा है वहां कुंडलों का वर्णन भी कुवा है । सूरदास भी मकराकृत तथा ललित आदि कुंडलों का वर्णन किया है -

श्रुति-मंडल कुंडल मकराकृत, विलसत मदन सुदाई ^६

+ + +

१. सु० १०, ६७

२. सु० १०, ८३

३. सु० १०, १७६ १७६

४. सु० १०, १७७

५. सु० १०, २०

६. सूरसागर, पद १२४४

वधर वनूप, नासिका सुंदर, कुंडल ललित बुद्ध कपोल ^१
 कुंडल कह कर ही उन्तोष न करते हुए लोल ^२, नव ^३, रवि ^४ तथा मकराकृत कुंडली
 की चर्चा की है ।

मकराकृत कुंडल गुंज की माल वै लाल लखे पग पांव रिया । ^५

+

+

+

कुंडल पहने हुए कुंजीं ते निकलते हुए कृष्ण का रूप रसखान को सुस्कारी लगता है न

कुंडल लोल कपोल महा हवि कुंजन ते निकल्यो सुस्कारी ^६

रसखान ने कुंडलों द्वारा कृष्ण के सौन्दर्य में चार चांद लगाए हैं , कहीं भी वे बाधक
 नहीं प्रतीत होते -

दौड कानन कुंडल, मोर पखा तिर, लीहें दुकूल नयी चटकी । ^७

मोर पखा

कृष्ण की वैष्णभूषा में मोर पखा का विशिष्ट स्थान है । यह सौन्दर्य
 वृद्धि की एक वस्तु है । रसखान ने पूर्व पुरदास जी ने भी लिखा है -

मोर-मुकुट पीतांबर काये, देख्यो निकट जु बायो ^८

इसी प्रकार मीरा को भी मुकुटधारी कृष्ण भाते हैं , तो फिर रसखान ही क्यों
 उस भक्ति परम्परा को छोड़ते । उनकी गोपियां मुकुटधारी कृष्ण की ही कल्पना
 करती हैं -

१. सुरसागर, पद १२४८

२. सु० २०, २८, १७३

३. सु० २०, ७३

४. सु० २०, ६४

५. सु० २०, १४१

६. सु० २०, १७३

७. सु० २०, १७७

८. सुरसागर, पद ११८२

नंद के किसीर चित चौर मोर पंखारै, बंसीवारै चाँवरै पियारै स्त
बाउ रै^१

+ + +

मोर पखा तिर कानन कुंछ कुंछ जौं शबि गंडनि शई^२

रसखान के मन में कृष्ण का मोर मुकुटधारी रूप ही बता हुआ है -

वह पीत पटक्कनि की चटकानि लटक्कनि मोर मुकुटनि की^३

+ + +

दौउ कानन कुंछ, मोर पखा तिर, लोह दुकूल नयो चटको^४

मोर मुकुट के मनोहारी निरूपण के रसखान के काव्य में दर्शन होते हैं। इनके कृष्ण धरौं में पावरिया पहने हैं, यह भी उन पर मुगल कालीन संस्कृति का प्रभाव प्रतीत होता है -

मकराकृत कुंछ गुंज की माल वे लाल लई पग पावरिया^५

शृंगार - राज राजा

सौन्दर्य वही है जो मन^६ भावे। सौन्दर्य या रूप को बढ़ाने वाली चैष्टारं शृंगार कहलाती हैं। शृंगार शब्द उस प्रकार प्रयुक्त हुआ कि जो वस्तुएं मानवीय सौन्दर्य को बढ़ाने वाली थीं वे भी शृंगार कहलाने लगीं। लोलह शृंगार की चर्चा करते हुए समस्त उपकरण उसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

रसखान ने शृंगार के शास्त्रीय आधार को नहीं अपनाया क्योंकि उनकी अपने बाराध्यदेव से अत्यन्त प्रेम था और प्रेम बन्धनों को कभी कभी तोड़ भी देता है। जो रूप उन्हें सुन्दर लगा उसका उन्होंने सहृदयता से अपने काव्य में निरूपण किया। भावुकता के आवेश में कृष्ण उन्हें बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं।

१. सु० र०, ७३

२. सु० र०, १६६

३. सु० र०, १६५

४. सु० र०, १७७

५. सु० र०, १४१

केवल वे ही नहीं उनके सिर पर बंधी हुई चोटी भी बहुत सुन्दर प्रतीत होती है ।
धूल में लिथड़ा होने के बाद कौन जच्चा लगेगा किन्तु बैठे के विषय में उसकी
माता के या भक्त से उसके 'बाराध्य' के विषय में पूछ कर तो देखिये। ज़ी
प्रकार रसखान की कृष्ण का धूलधूसरित रूप शौभनीय प्रतीत होता है-

धूरि मरे अति शोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।^१

केवल इतना ही कह कर रसखान अन्तुष्ट नहीं होते , वे कृष्ण की हवि पर कामदेव
की कलावों को वारने के श्चुक हैं । रसखान के कृष्ण सुगन्धित वस्त्रों से सुसज्जित
हैं । जंगों को जड़ाऊ नई नई वस्तुओं से सजा रखा है । मुक्तावों की माला पहने
सब सखावों के साथ शृंगार किये हुए हैं -

लाल लौ पगिया सबके , सबके पट कौटि सुगंधनि भीने ।

अंगनि अंग सजे सबही रसखानि जनैक जराउ नवीने ।

मुक्ता गलमाल लौ सबके सब ग्वार कुमार सिंगार सु कीने ।

पे सिंगरे ब्रज के हरिहीं हरही के हरि हि यरा हर लीने ।^२

यों तो समस्त बाभूषण और वस्त्रादि शृंगार के अन्तर्गत आते हैं और रसखान
ने उनके निरूपण में पूर्ण रुचि दिखाई है । कृष्ण के रूप में मानव आनन्द्य की
श्रेष्ठ कल्पना की है । उनका रंग श्याम है । सम्भवतः पुरुष के श्याम रंग में जो
आकर्षण है वह गौर वर्ण में नहीं -

वह नंद की सांवरी हेल जली अब तो अति ही इतरान लग्यो^३
उनके नेत्र अत्यन्त विशाल, नौकीले और चंचल हैं -

बंक बिसाल रसाल विलोचन है दुखमोचन मोह्न माई^४

उनकी भ्रुकुटियां घनी धनुषाकार हैं । उनका मांल विशाल, कपोल और बाज्र
अत्यन्त शौभनीय हैं । उनकी जलकें घनी धुंधराली और अत्यन्त काली हैं । सुन्द

१. सु० २०, २१

२. सु० २०, २३७

३. सु० २०, ८५

४. सु० २०, १६६

शरीर पर धारण किये हुए वस्त्राभूषण उनके सौन्दर्य को और बढ़ा देते हैं । वे मोर मुकुट धारण किये हैं । उनके कानों की शोभा मकराकृत कुंडल बढ़ाते हैं । कंठ में कटुला स्वं बनफूलों की मालाएं कंठ की शोभा बढ़ाती हैं । कटि में पीत वस्त्र , शरीर पर पीली काश्मी निश्चय ही कृष्ण के स्वरूप को जाकरबक और मोहक बना है ।

शृंगारी चैष्टारं

रसखान ने कृष्ण को घोर शृंगारी के रूप में भी चित्रित किया है । उन्होंने उन्हें गोपियों का मुख बुम्बन करते दिखाया है -

और कहा रसखानि कहीं मुख जूमत घातन बात बनारं के ।^१
कृष्ण जोती हुई बाला को गौद में भर लैते हैं । वह चौंक उठती है । इस दशा का बहुत ही सुन्दर चित्र रसखान ने अपने काव्य में खींचा है -

‘वह जोड़ कुती परजंक ली लला लीनो तु जाइ भुजा भरि के
बकुलार के चौंकि उठी तु ठरी निकरी चहै बंकिनि तैं फारि के^२
इतने भी अधिक शृंगारी चैष्टारं देखिए -

बखियां बखियां तौ उकाइ मिलाइ खिलाइ रिफाइ लियो हरिबो ।
बतियां चित जोरन चेटक सी रस चारु चरित्र ऊचरिबो ।
रसखान के प्रान गुषा भरिबो अधरान पै त्यों अधरा धरिबो ।
इतने सब मेन के मोहनी जंत्र पै मंत्र बलीकर सी करिबो ।^३
कृष्ण को केवल इतने से ही सन्तोष नहीं होता , वे नायिका के वंग से वंग मिला हैं -

बंगनि बंग मिलाइ दोऊ रसखान रहे लिपटे तरु-हाही ।

बंगनि बंग बंग को रंग बुरंग तनी पिय दै गलवाही ।^४

१. पु० १०, ३६

२. पु० १०, ११८

३. पु० १०, १२०

४. पु० १०, १२१

‘ॐ’ किसी का भय नहीं, मार्ग में चलती हुई गोपियों को रोक लेना, उनके साथ मन-मानी करना, उनसे दधि दान लेना आदि उनके बाह्य हाथ का खेल है। कृष्ण के इस स्वरूप को देख कर ही तो गोपियां कह उठती हैं -

डोलिबो कुंजनि को जरु बैनु बजावो धेनु चरबो ।

मोहनी ताननि सौं रसखानि केन्तम खानि के संग को गोधन गेबो ।

यह सब डारि दिये मन मारि बिसारि दयो विगरी बुख पैबो ।

भूलत क्यों करि नैहन हरि को दही कहिबो मुसकाइ चितैबो ।^१

+

+

+

जात हुती जमुना जलकीं मनमोहन घेरि लयो मग जाइ के ।

मोद भरयो लपटा लयो पट घुंघट टारि दयो चित जाइ के ।

और कहा रसखानि कहौ मुख चूमत घातन बात बना के ।

कैसे निभे कुलकानि रही हिये जांवरी मुरति की छवि काइ के ।^२

ग्वारों के साथ घूमना, गाना, रिकाना, रसखान ने कृष्ण को ग्वारों के साथ वन में जाते हुए दिखाया है ।

यह रूप गोपियों को इतना आकर्षित करता है कि वे लोक लज्जा त्याग कर फरौसों से फांफने लगती हैं -

आवत हैं बन तें मन मोहन गाउन संग लो ब्रज बाला ।

बैनु बजावत गावत गीत, अभीत स्तै करि गी बहु ख्याला ।

हरत टेरि कैं वहुं और तें फांकि फरौकन तें ब्रजबाला ।

देखि बुबानन को रसखानि तज्यो सब घाउ को ताप काला ।^३

कृष्ण अपनी नेष्टाओं से स्वयं ही प्रसन्न नहीं होते, वे दूसरों को भी रिकाने हैं -

१. सु० २०, २३

२. सु० २०, ३६

३. सु० २०, २६

बायो हुतौ नियरौ रखानि कहा कहीं तून गई वहि ठैया ।

या ब्रज में विगरी बनिता अब वारतिं प्राननि होति बलैया

कौऊ न काहु की कानि करै कहु चेटक तौ जु कियो उजुरिया ।

गाह गौ तान जगाह गौ नेह रिफार गौ प्रान बराहगौ गया ।^१

कृष्ण की मुरली की तान पर केवल गौपियां ही नहीं, सम्पूर्ण ब्रज बिकने को तैयार है ।

मुस्कान निरूपण

मुस्कान हास्य का सूक्ष्म रूप है । रखान ने कृष्ण के हास्य की चर्चा नहीं के बराबर की है । उन्हें कृष्ण का मुस्कुराता हुआ मुख ही वाकर्षक प्रतीत हुआ अतः पदैः पदैः इस मुस्कान की व्यंजना मिलती है । कृष्ण मुस्करा कर मेह लैह बरसाते हैं ।^२ उनकी मुस्कान गौपियों के हृदय में 'माखन चौद गढ़े' की भांति जुम जाती है कि निकाले नहीं निकलती -

जा दिन ते मुखानि जुभी चित ता दिन ते निकुली न निकारी ।^३

कृष्ण की मुस्कान में इतना वाकर्षण है इतनी शक्ति है कि गौपिय का मन उसमें डूबता चला जाता है । निकलने का प्रयत्न करने पर भी नहीं निकलत वे बेसुध होकर कह उठती हैं -

माई री वा मुख की मुस्कान गयो मन बुझि फिरै नहिं फेरो ।^४

रखान को कृष्ण का कुंजों से मुस्कुराते हुए निकलता रूप बहुत प्रिय है । उन्होंने कई स्रज पद्यों में इस रूप की चर्चा की है ।^५ कृष्ण मुख में पान भरी मुस्काते हुए कुंजों से निकलते हैं । गौपियों को कृष्ण का यह स्वरूप इतना प्यारा लगता है

१. सु० २०, २४

२. सु० २०, ६३

३. सु० २०, १७३

४. सु० २०, २८

५. सु० २०, २६, ३०, ३१, १४४, १६०

कि प्रयत्न करने पर भी एक पल के लिये दिल से नहीं निकलता ।^१ सुसज्जित मुस्कान
कृष्ण के 'तुलसी बन' से निकलते मोहक रूप को देख कर गोपियाँ किस प्रकार लोक
लाज का त्याग करती हैं, कैसी उनकी मनोदशा होती है , देखिये -

बाजुरी नंद लला निकल्यो तुलसी बन ते बन के मुसकाती ।

देखै न बन कहै अब सो मुख जो मुख में न समाती ।

हों रसखानि बिलोकिबे को कुलकानि के काज किया हिय हाती ।

बार गई बलबेली बचानक र मट्ट लाज को काज कहा तो ।^२

कृष्ण का रूप कामदेव के समान सुन्दर है । जोठों पर मुस्कान की छोटी तरंगें
कृष्ण की हृदि में और भी चार चांद लगा देती हैं -

कैसी मनोहर बानक मोहन मोहन सुंदर काम ते वाली ।

जाहि बिलोक्त लाज तबी कुल छूटी है नैननि की बाउ चाली ।

बधरा मुसकान की तरंग लखै रसखानि सुहाई महा हृदि वाली ।

कुंज गली मधि मोहन मोहन देख्यो तसी वह रूप-रवाली ।^३

कृष्ण की मधुर मुस्कान गोपियों की लोक लाज का नाश कर डालती है -

रसखानि महा मधुरी मुख की मुसकानि करै कुल कानि कटा है ।^४

कृष्ण की मुस्कान गोपियों के चित्त में जुम जाती है , निकालने से नहीं निकलती ।

जुमना शब्द का प्रयोग करके रसखान ने मुस्कान के तीव्र प्रभाव को दर्शाया है ।

यह जुमन प्रेम पीड़ा की द्योतक है । गोपियाँ इतनी प्रभावित होती हैं कि कुलकानि
को भी नहीं विचारतीं -

जा दिन ते मुसकानि जुभी चित ता दिन ते निकली न निकारी ।

कुंठल ठौल कपोल महा हृदि कुंज ते निकल्यो सुखकारी ।

१. सु० २०, ३१

२. सु० २०, १४४

३. सु० २०, १५८

४. सु० २०, १७२

हाँ तखि जावत ही दगरे पग पैड तजी रिफ है बनवारी
 रसखानि परी मुखकानि के पाननि कौन गनै कुलकानि बिचारी ।^१
 कृष्ण की मुस्कान गोपियों को बेगुण कर देती है । राधा ही उनकी देह को भी हर
 लेती है -

र सजनी लोने लला लहूया नंद के गेह ।
 चितया मृदु मुखकाई के हरी सबे गुधि-देह ॥^२
 केवल इतना ही नहीं उस मुस्कान को देख गोपियों के प्राणों को भी खर नहीं
 रहती -

वा मुस्कान पे प्राण दियो जिय जान दियो वहि तान पे प्यारी ।^३
 कृष्ण की मुस्कान का चित्रण प्रतिमा की भांति भी हुआ है । वह नयनों में
 इस प्रकार बस गई है कि अनेक प्रयत्न करने पर भी निकाले नहीं निकलती -

‘वा मुख की मुखकानि भट्ठ अखियानि ते नैकु टरी नहि टारी ।^४
 कृष्ण के ल्हारे करके मुस्काने का भी रसखान ने बहुत सुन्दर चित्र खींचा है -
 रसखानि बखान कहा करियै तकि रैननि री मुखकान लग्या ।^५
 कृष्ण की मुस्कान के लिए अनेक विशेषणों का प्रयोग भी कवि ने किया है -

बांकी विलोकनि रंग मरी रसखानि खरी मुखकानि सुहाई ।^६
 राधा का धैर्य भी समाप्त होने लगता है । कृष्ण की मुस्कान को देखकर वे
 प्रकृति के उपकरणों को वारने के लिए तैयार हो जाती हैं -

कातिग ज्वार के प्रात ही प्रात जरीज किते बिकसत निहारी ।
 डीठि परे रतनागर के दरके बहु दाढ़िम बिंब बिचारी ।

१. सु० २०, १७३

२. सु० २०, १५१

३. सु० २०, १२४

४. सु० २०, १२६

५. सु० २०, ६५

६. सु० २०, ६६

लाउसु जीव जितै रसखानि ते रंगनि तौलिन मौलनि पारे ।

राधिका श्रीमुरलीधर की मधुरी मुस्कानि के ऊपर वारे ।^१

उंझीप में रसखान ने कृष्ण की मुस्कान को अनेक रूपों में चित्रित किया है । कितनी ब्रज बालारं मुस्कान ~~को~~ देखकर बेबुध हो जाती हैं, कितनी गौपियों का हृदय मुस्कान में डूब जाता है ।^२ न जाने कितनी गौपियों की लोक-लाज स्वाहा हो जाती है , कितनी घायल होकर हिरनी की भांति गिर जाती हैं , फिर भी सबकी अभिलाषा कृष्ण के मुस्काते हुए स्वरूप को देखने की होती है। कृष्ण का मुस्काता हुआ चित्र पाठक के अन्तः पटल पर अंकित हो जाता है । मुस्कान का विविध रूपों में अंकन रसखान की अपनी विशेषता है । अन्यत्र मुस्कान का यह रूप मिलना कठिन है ।

बांसुरी

यहां वंशी सम्बन्धी केवल उन्हीं पदों की चर्चा की गई है जिनका सम्बन्ध कृष्ण के रूप से है वधवा जहां वंशी उनके रूप को प्रभावोत्पादक बनाने में सहायक हुई है । कृष्ण के रूप की कल्पना वंशी रहित बधुरी ही प्रतीत होगी क्योंकि उनके नाम के साथ ही उनकी त्रिगुणी मुद्रा का स्वरूप सामने आता है । साथ ही हाथ में विराजती हुई वंशी का चित्र भी नेत्रों के सामने आ जाता है । रसखान ने कृष्ण को अपने काव्य का विषय बनाया फिर वे उनकी वंशी को कैसे भुल जाते । उनके कृष्ण भी वंशी बजाते हुए आते हैं -

बैनु बजावत वाजत है नित मेरी गली ब्रजराज को मोहन ।^३

एक गौपी दूसरी से कहती है कि कृष्ण बांसुरी बजाते , गौधन गाते ग्वालों के साथ मेरी गली में आये । गुग्गालिनि के मित उन्हींने मेरा नाम ले बंशी बजाई । उनकी वंशी तुन चित्त का चैन समाप्त हो गया तथा उन्हींने चित्त को भी बुरा लिया -

बैनु बजावत गौधन गावत ग्वालन संग गली मधि आयी ।

१. पु० २०, १८७

२. पु० २०, २८

३. पु० २०, ५७

बांसुरी में उनि मेरोई नांव गुम्वालिन के मिस टेरि जुनायो ।

ए रजनी जुनि ता के बालनि नंद के पास उताव न मायो ।

कैसी कहौं रसखानि नहीं हित , केन नहीं चितचोर जुरायो ।^१

उपर्युक्त पंक्तियों में वंशी बजाते हुए कृष्ण का रूप बड़ा नाटकीयता के साथ अभिव्यक्त किया है । हृदय-पटल पर चित्र-ता अंकित हो जाता है ।

कृष्ण के सौन्दर्य में चार चांद लगाने वाले जहाँ अन्य उपकरणों की चर्चा की गई है वहाँ रसखान, उनकी बांसुरी को न भुला सके -

कल काननि^{कल} मोर पखा उर पै बनमाल विराजति है ।

मुरली कर में अथरा मुसकानि तरंग महा अवि अजति है ।^२

गोपियां कृष्ण को बंसीवारे कह कर ही बुलाती हैं साथ ही वंशी की सुरीली तान सुन कर ही शरीर के ताप को दूर करना चाहती हैं ।

मोहन बुजान गुन रूप के निधान फेरि बांसुरी बजाई तनु तपन विराउ रे ।

नंद के क्लेशोर चित चोर मोर पंखारे , बंसीवारे तांवरे पियारे हत बाउ रे ।^३
रसखान ने कहीं कहीं तो मुरली को वाभूषण के समान मोरपखा, बनमाल आदि के साथ दिखाया है -

मोर पखा मुरली बनमाल लखैं हिय को हियरा उमह्यो री ।^४

कृष्ण के रूप के साथ, उनके नटवर वेश में मुरली का स्थान महत्वपूर्ण है । कृष्ण-स्वरूप की कल्पना उनकी मोहनी शक्ति मुरली के बिना अधूरी ही प्रतीत होती है ।

उपर्युक्त विवेक का निष्कर्ष यह है कि प्राचीन कवियों के मार्ग का अनुसरण करते हुए रसखान ने नायक-नायिका का रूप-वर्णन कौशल के साथ किया

१. सु० १०, ५८

२. सु० १०, ६७

३. सु० १०, ७३

४. सु० १०, ८३

है । परन्तु उन्होंने उनके वंग प्रत्यंग के चित्रण की पिटी-पिटायी लीक पर चलने का नीरस प्रयास नहीं किया । उन्होंने पात्रों की कुछ जुनी हुई प्रभावशाली विशेषताओं पर ध्यान दिया है । उनके उन्हीं वंगों, आकल्प, मंडनों आदि का चित्रण किया है जो अपेक्षाकृत अधिक चित्ताकर्षक है वतः पाठक के भाव को उद्बुद्ध करने में अधिक समर्थ हैं । कृष्ण-भक्त होने के कारण उन्होंने गोपियों की अपेक्षा कृष्ण का रूप वर्णन ही अधिक किया है । भक्त कवि के दृष्टिकोण से यह निरूपण सर्वथा स्वाभाविक है ।

चतुर्थ अध्याय

रसखान के काव्य का भाव-पक्ष

(क) रस व्यञ्जना -

(क) रस के अंग -

सहृदयों के हृदय में वाजना या मनोविकार के रूप में वर्तमान रति आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के द्वारा व्यक्त होकर रस बन जाते हैं।^१ अन्य शब्दों में विभाव - आलम्बन विभाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव और संचारी भाव और स्थायी भाव ही रस के अंग हैं।

रसखान के काव्य में भाव पक्ष के अन्तर्गत रस के अंगों की भी चर्चा की गई है जिस पर यहां विचार किया जायगा।

आलम्बन निरूपण -

आलम्बन विभाव का अभिप्राय काव्य-नाट्य-वर्णित नायिकादि से है क्योंकि उन्हीं के सहारे सामाजिकों के हृदय में रस का संचार हुआ करता है।^२ यहां नायक आदि से अभिप्राय नायिका आदि से भी है।

रसखान के काव्य में आलम्बन श्रीकृष्ण, गोपियां एवं राधा हैं। प्रेम-वाटिका पुस्तक में यद्यपि प्रेम सम्बन्धी दोहे हैं, किन्तु रसखान ने उनके माली कृष्ण और मालिन राधा ही को चरितार्थ किया है। रसखान आलम्बन निरूपण में पूर्ण सफल हुए हैं। वे गोपियों का वर्णन भी उसी तन्मयता के साथ करते हैं जिस तन्मयता के साथ कृष्ण का। सम्पूर्ण सुजान रसखान में गोपियों एवं राधा को

१. विभावैभानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।

रसतामेति इत्यादिः स्थायीभावः सवेतसाम् ॥ साहित्य दर्पण, पृ० ८८

२. आलम्बन नायिकादिस्तमालम्बय रसोद्भवात् ॥ साहित्य दर्पण, १३७

बालम्बन (कृष्ण) के स्वरूप से प्रभावित दिसाया है ।

नायक

भारतीय ^{नायक}शास्त्र के अनुसार काव्यालम्बन नायक वह माना गया है जो त्याग भावना से भरा हो, महान कार्यों का कर्ता हो, कुल का महान् हो, बुद्धि-वैभव से सम्पन्न हो, रूप-यौवन और उत्साह की सम्पदाओं से सम्पन्न हो, निरन्तर उद्योगशील रहने वाला हो, जनता का स्नेह भाजन हो और तेजस्विता, चतुरता किंवा कुशीलता का निदर्शक हो ।^१

काव्यशास्त्रों ने नायक के अनेक भेदोपभेद किये हैं । इस वर्ग में न जाकर हम रसखान द्वारा निरूपित नायक का ही चित्रण करेंगे । रसखान के काव्य के नायक श्रीकृष्ण हैं, जो महान कार्यों के कर्ता, उच्च कुल में उत्पन्न, बुद्धि वैभव से सम्पन्न, रूप यौवन उत्साह की सम्पदाओं से सुशीलित, गोपियों के स्नेह-भाजन, तेजस्वी और कुशील हैं ।

रसखान के नायक में नायकोचित लगभग समस्त गुण हैं मिलते हैं । नायक में महान् कार्यों की चर्चा मिलती है । द्रौपदी, गणिका, गज, गीध, अजामिल का रसखान के नायक ने उद्धार किया । अहिल्या को तारा । प्रह्लाद के संकटों का नाश किया ।^२ केवल यही नहीं, उन्होंने उत्साहपूर्वक कालिय दमन तथा कुवल्या-वध भी किया ।^३ रसखान ने अपने नायक के महान कार्यों के साथ साथ, उनके रूप यौवन की भी चर्चा की है । गोपियों ने उनके रूप से प्रभावित हो कर लौकम्यादि तक को त्याग दिया ।

कृष्ण के रूप यौवन का प्रभाव असाधारण है । गोपी बेबस हो कर लौक म्यादि त्यागने पर मजबूर हो जाती है -

१. त्यागी कृती कुलीनः सुत्रीको रूप-यौवनीत्साही ।

दशार्जुनरत्नलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥ साहित्य दर्पण, पृ० २३८

२. पु० १०, १८

३. पु० १०, २००, २०१, २०२

बलि लोक की लाज समूह में बौरि के राखि धकी बहु संकट सों ।
 फल में कुलकानि की भेड़ नही नहिं रौकी रुकी फल के पट सों ।
 रसखानि बु कैती उचाटि रही उचटी न संकोच की बीचट सों ।
 बलि कोटि कियौ छटकी न रही बटकी बंझिया लटकी लट सों ।^१

रसखान ने अपने नायक के रूप में यौवन की चर्चा वनेक पदों में की है । रूप
 यौवन के अतिरिक्त उनकी चैष्टारं, मधुर मुस्कान भी मन को हर लेती है ।

मेन मनीहर बैन बजे बु सजे तन सौख्य पीत पटा है ।
 यों दमकै चमकै भ्रमकै दुति दामिनी की मनो त्याग घटा है ।
 ए सज्जी ब्रजराजकुमार बटा चढ़ि फेरत लाल बटा है ।
 रसखानि महामधुरी मुक्त की मुसकानि करे कुलकानि कटा है ।^२

रसखान ने कृष्ण के प्रेममय रूप का निरूपण भी वनेक पदों में किया है । उन्हें
 राधा के पैर दबाते हुए दिखाया है ^३ तथा गौपियों के बागृह पर झुझिया मरी
 झाड़ पर भी नाचते हुए दिखाया है । सर्वसमर्थ होकर भी कृष्ण अपनी प्रेयसी गौपियों
 के वानन्द के लिए इस प्रकार का व्यवहार करते हैं । इससे सिद्ध होता है कि वे
 प्रेम के वशवर्ती हैं ।

इस प्रकार रसखान द्वारा निरूपित नायक में लगभग उन सब विशेषताओं का
 सन्निवेश है जो भारतीय काव्यशास्त्र के अन्तर्गत गिनाई गई हैं । उनमें शीघ्र है, रूप,
 यौवन और उत्साह है ।

१. पु० २०, १७५

२. पु० २०, १७२

३. पु० २०, १७

नायिका

नायिका से अभिप्राय उस स्त्री से है जो यौवन, रूप, कुल, प्रेम, शील, गुण, वैभव और भूषण से सम्पन्न हो।^१ रसखान प्रेमोन्मत्त मन्त कवि थे। उन्होंने अपनी स्वच्छ भावना के अनुकूल कृष्ण प्रेम का चित्रण अपने काव्य में किया। इसलिए रसखान का नायिका-भेद वर्णन न तो शास्त्रीय विधि के अनुरूप ही है और न ही किसी क्रम का उत्तम ध्यान रखा गया है। कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम-वर्णन में नायिका-भेद का चित्रण स्वाभाविक रूप से हो गया है।

नायिका-भेद

नायिका भेद की परम्परा के दर्शन संस्कृत-साहित्य तथा संस्कृत-काव्य-शास्त्र में होते हैं। पं० विश्वनाथ ने भी नायिका निरूपण करते समय तीन प्रकार की नायिकारं बताई हैं - स्वकीया, परकीया एवं सामान्या।^२ इसके अतिरिक्त भी नायिका के जाति, धर्म, दशा एवं अवस्थानुसार अनेक भेद किये गये हैं।^३

नायिका के अनेक नर भेद भी किये गये हैं, किन्तु रसखान के काव्य में उपर्युक्त भेदों में कुछ के ही उदाहरण मिलते हैं। रस प्रेमोन्मत्त के गायक कवि से नायिका भेद के सागर में गोते लगा कर समस्त भेदोपभेद निरूपण की आशा करना निरर्थक ही होगा, क्योंकि इन्होंने गोपियों के स्वरूप निरूपण को अधिक महत्व न देकर उनकी भावनाओं

१. देव और उनकी कीर्ति, पृ० १५०, तीसरा सं०, १६६०

२. अथ नायिका त्रिदोषान्ता साधारण स्त्रीति। -साहित्य दर्पण, पृ० १५५

३. जाति के अनुसार नर के चार भेद किये गये हैं - १. पद्मिनी २. चित्रिणी ३. शंखिनी ४. हर्षि। धर्म के अनुसार तीन प्रकार की नायिकारं मानी गई हैं - १. गर्विता २. संभोगदुःखिता ३. मानवती। अवस्था के अनुसार नायिका के दस भेद किये गये - स्वाधीनपतिता २. वासकज्जा ३. उत्कण्ठिता ४. अभिसारिका ५. ब्रथा ६. संडिता ७. कलहांतरिता ८. प्रवत्स्यत्प्रेयसी ९. प्रेषितपतिता १०. गतपतिता। ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद।

को ही अधिक महत्त्व दिया है। फिर भी गोपियों के निरूपण में नायिका भेद के भी दर्शन हो जाते हैं। वास्तव में यह रसखान का उद्देश्य न था।

परकीया नायिका

जो नायिका पर पुरुष से प्रीति करे, उसे परकीया कहते हैं।^१ रसखान के काव्य में निरूपित गोपियाँ पर स्त्री हैं। पर पुरुष कृष्ण-प्रेम के कारण वे परकीया नायिका कहलाएंगी। रसखान ने अनेक पदों^२ में उनका सुन्दर निरूपण किया है। उन्होंने परकीया नायिका के चित्रण में नायिकाओं की लोक लाज तथा अपने कुटुम्बियों के पास के भय से उनकी वैदनामयी स्थिति और प्रेमान्वाह का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है -

काल्हि मट्ठ मुरली-धुनि मैं रसखानि लियो कहूं नाम हमारी।

ता हन ते मई बैरिनि बाध कितौ कियो भांकित दैति न दारौ।

होत ज्वाव बलाह सौं बाली री जो मरि बांखिन भेंटिये प्यारौ।

बाट परी जबहीं ठिठक्यो हियरे बटक्यो पियरे पटवारौ ॥^३

कृष्ण-प्रेम के फंदे में फंसी परकीया नायिकाओं का चित्रण रसखान ने अनेक कवित्त स्रव्यों में अनेक प्रकार से किया है।

परकीया नायिका के भेद

परकीया नायिका के दो भेद हैं माने गये हैं^४ - अनूढा और ऊढ़ा। रसखान ने ऊढ़ा नायिका का वर्णन किया है। इनके उल्लेख परकीया के अवस्था-नुसार छः भेद होते हैं - १. मुदिता २. विदग्धा ३. अनुशयना ४. गुप्ता ५. लज्जिता ६. कुलटा।^५ इनमें से रसखान ने मुदिता और विदग्धा का ही

१. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० २६१

२. सु० १०, २०३, १३६, १७८, ७४, ८१, १२६

३. सु० १०, ६६

४. साहित्य दर्पण, पृ० १६६

५. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० २६६

चित्रण किया है ।

ऊढ़ा

ऊढ़ा वह नायिका है जो अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष से प्रेम करे ।^१ रसखान ने निम्न पदों में ऊढ़ा का वर्णन किया है -

‘बीचक दृष्टि परे कहूं कान्हू जु ताहीं कहै ननदी अनुरागी ।
 सौं तुनि सास रही मुख मोरि , जिठानी फिरै जिय में रिस पागी ।
 नीके निहारि कै देखे न बांखिन, हों कबहुं भरि नैन न जागी ।
 मो पक्षितावो यहै जु सखी कि कलंक लग्यौ पर अंक न लागी ।’^२

+ + +

समझे न कछु अजहुं हरि सो ब्रज नैन नचाह नचाह हसै ।
 नित सास की सीरी उसासनि सों दिन ही दिन मार की कांति नसै ।
 चहुं ओर बबा की सों सौर तुनें मन मेरेऊ आवति री सकसै ।
 पै कहा करौं वा रसखानि बिलोकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै ॥’^३

मुदिता नायिका

यह परकीया के अवस्थानुसार भेदों में से एक है । पर-पुरुष-मिलन-विषयक मनोमिलाषा की अकस्मात् पूर्ति होते देख कर जो नायिका मुदित होती है उसे मुदिता कहते हैं ।^४ रसखान ने भी नायिका की मोदावस्था का सुन्दर चित्रण किया है -

‘जात हुती जमना जल को मनमोहन धेरि लयो मग जाह कै ।
 मोद मर्यौ लपटाह लयो, पट धुंघट टारि दयो बित जाह कै ।
 और कहा रसखानि कहैं मुख चुमत घातन बात बनाह कै ।

१. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० २६६

२. सु० १०, १३८

३. सु० १०, १४३

४. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० २७४

कैसें निमै कुलकानि रही हिये सांवरी मुरति की ह्वि छाह के ।^१

विदग्धा नायिका

चतुरता पूर्वक परपुरुषानुराग का उकेत करने वाली नायिका को विदग्धा कहते हैं ।^२ विदग्धा के दो भेद होते हैं - १. वचनविदग्धा और २. क्रियाविदग्धा ।

वचनविदग्धा नायिका

जो नायिका वचनों की चतुरता से परपुरुषानुराग विषयक कार्य को सम्पन्न करना चाहे उसे 'वचनविदग्धा' कहते हैं ।^३ रसज्ञान की गोपियां अनेक स्थानों पर वचनचातुर्य से काम लेती हैं -

क्षीर जो चाहत वीर गहैं अबू लेउ न केतिक क्षीर अबैहौ ।
 बाखन के मिस माखन मांगत खाउ न माखन केतिक खैहौ ।
 जानति हौं जिय की रसखानि तु काहे कीं रतिक बात बदैहौ ।
 गोरस के मिस जो रस चाहत जो रस कान्हजू नेकु न पैहौ ॥^४

+ + +

दानो नर भर मांगत दान जुनै जु मै कंस तौ बाधे न जैहौ ।
 रौकत हीं बन में रसखानि पसारत हाथ महा दुख पैहौ ।
 टूटें छरा बहारादिक गोधन जा धन है तु तबै पुनि दैहौ ।
 जैहै जो भूषन काहु तिया को तौ मौल छला के लला न बिकैहौ ॥^५

यहां गोपियाँ ने वचनविदग्धता द्वारा अपने मन की बात का स्पष्टीकरण कर दिया है ।

१. सु० १०, ३६

२. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० २७६

३. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० २७६

४. सु० १०, ४२

५. सु० १०, ४४

क्रियाविदग्धा नायिका

जो नायिका क्रिया की चतुरता से परपुरुषानुरागविषयक कार्य को सम्पन्न करना चाहे, उसे क्रियाविदग्धा कहते हैं।^१ रसखान ने निम्नलिखित पद में क्रियाविदग्धा नायिका का सुन्दर चित्रण किया है -

लैले बली जन के मन में उत प्रीतम प्यारे त्यों नेह नवीनो ।

बैननि बोध करै इत क्यों उत ऐननि मोहन को मन लीनो ।

नैननि की बलिबी कहु जानि उसी रसखानि चित्तै क्यों कीनो ।

जा लखि पार जंभाइ गई चुटकी चटकाइ बिदा करि दीनो ।^२

दशानुसार नायिकारं

नायिका के दशानुसार उनके तीन भेदों - १. गर्विता २. अन्यसंभोगदुःखिता एवं ३. मानवती में से रसखान के काव्य में अन्यसंभोगदुःखिता तथा मानवती नायिका का चित्रण मिलता है ।

अन्यसंभोगदुःखिता नायिका

अन्य स्त्री के तन पर अपने प्रियतम के प्रीति-चिह्न देख कर दुःखित होने वा नायिका को 'अन्यसंभोगदुःखिता' कहते हैं^३। रसखान ने भी अन्यसंभोगदुःखिता नारी का चित्रण किया है -

काह कहुं सजनी संग की रजनी नित बीतै मुकुंद क्यों हैरी ।

आवन रोज कहै मन भावन आवन को न कबों करी फेरी ।

सौतिन-भाग बढ़ायो ब्रज में जिन लूटत हैं निशि रंग घनेरी ।

मो रसखानि लिखी बियना मन पारि के आपु बनी^४ अहेरी ॥^४

१. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० २७६

२. सु० १०, ११६

३. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० २६८

४. सु० १०, १०६

मानवती नायिका

अपने प्रियतम को अन्य स्त्री की ओर आकर्षित जानकर ईर्ष्यापूर्वक मान करने वाली नायिका 'मानवती' कहलाती है।^१ रसखान ने मानिनी नायिका का चित्रण तीन पदों में किया है। दूती नायिका को समझा रहा है कि मेरे कहने से तू मान को त्याग दे। तुझे बसन्त में मान करना किस ने सिखा दिया।^२ अगले पद्य में वह कृष्ण की सुन्दरता एवं गुणों का बखान करके अन्त में कहती है कि तुझे कुछ नहीं लगता। न जाने किसने तेरी मति छीनी है।^३ पुनः नायिका को समझाती हुई कहती है कि मान की अवधि तो बाधी घड़ी है, तू मान त्याग दे -

मान की बाधि है बाधि घरी अरी जी रसखानि डरे हित के डर।

के हित छोड़िये पारिये पाहनि ऐसे कटाव नहीं हियरा-हर।

मौह्नलाल को हाल बिलोकिये नैकु कहु किनि लूबैकर लों कर।

नां करिबे पर वारे हैं प्रान कहा करि हैं अब हां करिबे पर।^४

रसखान ने मानिनी नायिका के मान का स्वाभाविक चित्रण किया है। नायिका को समझाया जा रहा है कि तू किसी प्रकार मान त्याग दे।

अवस्थानुसार नायिकारं

अवस्थानुसार नायिका के दस भेद माने गये हैं जिनमें से दो की चर्चा रसखान ने की है - आगतपतिका तथा प्रोषितपतिका।

आगतपतिका नायिका

अपने प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होने वाली नायिका 'आगतपतिका' कहलाती है।^५ रसखान ने आगतपतिका नायिका का चित्रण बहुत ही सुन्दर तथा

१. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० ३०४

२. सु० १०, ११३

३. सु० १०, ११४

४. सु० १०, ११५

५. ब्रज भाषा साहित्य में नायिका भेद, पृ० ३५८

भावपूर्ण ढंग से किया है -

नाह-वियोग बढ़यी रसखानि मलीन महा दुति देख तिया की ।

पंकज लीं मुख गीं मुरझाई लगीं लपटें बरि स्वांस दिया की ।

ऐसे में आवत कान्हु पुनै झुलधैं तरकीं जु तनी अंगिया की ।

याँ जगाजोति उठी बंग की उसकाइ दई मनौ बाती दिया की ।^१

नायिका विरह-पीड़ित है किन्तु कृष्ण के आगमन से उसकी पीड़ा समाप्त हो जाती है और उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता । जैसे दीपक की बची बछाने से प्रकाश बढ़ जाता है वैसे ही प्रिय के आगमन से नायिका का शरीर प्रफुल्लित हो उठा ।

प्रोषितपतिका नायिका

प्रियतम के वियोग से दुःखित विरहिणी नायिका को प्रोषितपतिका कहते हैं । रसखान के काव्य में प्रोषितपतिका नायिका के अनेक उदाहरण मिलते हैं -

उन्हीं के अनेहन जानी रहैं उन्हीं के जु नेह दिवानी रहैं ।

उन्हीं की सुनै न वो बैन त्यों बैन लीं बैन अनेकन ठानी रहैं ।

उन्हीं संग डोलन में रसखानि सबै सुख सिंधु अघानी रहैं ।

उन्हीं बिन ज्यों जलहीन हूँ मीन ली बांसि मेरी अनुवानी रहैं ।^२

+

+

+

काहू लीं माई कहा कहिये, उखिये लोअो रसखानि सहावै ।

नैम कहा जब प्रेम कियो तब नाचिये लोई जो नाच नचावै ।

चाहत है हम और कहा लखि क्यों हूं कहूं पिय देखन पावै ।

चेरिये लीं जु गुपाल रच्यो लीं कलौ ली सबै मिलि चरी कहावै ॥^३

निम्न पद में परकीया मध्या प्रोषितपतिका का चित्रण किया गया है -

१. सु० २०, ११७

२. सु० २०, ७४

३. सु० २०, २०६

बौक दृष्टि पर कहूं कान्हू जू तारों कहै ननदी अनुरागी ।
 जो बुनि साज रही मुख मोरि , जिठानी फिरि जिय में रित पागी ।
 नीकें निहारि के देखे न बांखिन, हों कबहुं भरि नैनन जागी ।
 यो पक्षितावो यहै जू सखी कि कलंक लग्यो पर बंक न लागी ॥^१

रसखान के काव्य में प्रोषितपत्रिका के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं ।

वयःक्रम से नायिका -

वयःक्रम से नायिका के तीन भेद माने गये हैं - मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा ।
 रसखान ने मुग्धा नायिका का वर्णन किया है ।

मुग्धा नायिका

जिसके शरीर पर नव यौवन का उंचार हो रहा हो, ऐसी लज्जा शीला किलोरी को 'मुग्धा नायिका' कहते हैं । रसखान ने मुग्धा नायिका की दशा का सुन्दर तथा स्वाभाविक चित्रण किया है ।

पहलें दधि लै गई गोकुल में चस चारि भर नट नागर पै ।
 रसखानि करी उनि भैन भई कहैं दान दे दान खरे जरपै ।
 नख ते सिस नील निचोल लपेटे सखी सम भांति कंभे डरपै ।
 मनौ दामिनी आवन के घन में निकी नहीं भीतर ही तरपै ।^२

निम्नांकित पद में भी मुग्धा नायिका की वयः उंधि की अवस्था का सुंदर चित्र खींचा है -

बांकी मरीर गही मुकुटीन लगी अंसियां तिरझानि तिया की ।
 टाक जी लांक भई रसखानि सुदामिनि ते दुति दुनी हिया की ।
 सोई तरंग अनंग की अंगनि जोप उरौज उठी छतिया की ।
 जोवन-जोति तु यौ दमकै उत्काई दई मानो बाती दिया की ।^३

१. सु० १०, १३८

२. सु० १०, ३६

३. सु० १०, ५५

जिस प्रकार कृष्ण काव्य में परकीया नायिकाओं को विशेष गौरव दिया गया है, उसी प्रकार रसखान ने भी परकीया वर्णन को महत्व दिया। इसके तीन प्रधान कारण हैं। काव्य का मुख्य प्रयोजन भावक को रसानुभूति कराना है। इस प्रयोजन की सफलता के लिए भावों का मार्मिक चित्रण आवश्यक है। रति भाव की जितनी अधिक मार्मिकता और तल्लीनता परकीया प्रेम में सम्भव है उतनी स्वकीया-प्रेम में नहीं। दूसरा कारण यह है कि परकीया प्रेम का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसमें प्रेम के विभिन्न रूपों और परिस्थितियों के वर्णन का अवकाश रहता है। इस प्रकार कवि को अपना प्रतिभा के प्रदर्शन का बेसीम अवसर मिलता है। तीसरा कारण है लीलावतारी कृष्ण का मधुर रूप। कृष्ण परब्रह्म परमेश्वर हैं और गोपियाँ जीवात्माएँ हैं। अनन्त जीवात्माओं के प्रतीक रूप में अनन्त गोपियों का चित्रण अनिवार्य था। अतएव कृष्ण भक्त शृंगारी कवियों ने सभी गोपियों के प्रति कृष्ण (भगवान्) के स्नेह की और कृष्ण के प्रति सभी गोपियों के उत्कट अनुराग की व्यंजना के लिए परकीया-प्रेम का विधान किया। यहाँ तक कि उनके काव्य में स्वकीया का कहीं भी चित्रण नहीं हुआ। परकीया नायिका निरूपण के अन्तर्गत रसखान ने ऊढ़ा, मुदिता, श्रियाविदग्धा, वचनविदग्धा, अन्यसंभोगदुःखिता, मानवती, आगतपतिका, प्रोषितपतिका एवं मुग्धा आदि नायिकाओं का चित्रण किया है। रसखान का उद्देश्य नायिका-भेद निरूपण करना नहीं था अतएव उन्होंने गोपियों के सम्बन्ध में कृष्ण-लीला का वर्णन करते हुए प्रसंगानुसार नायिकाओं के बाह्य रूप एवं उनकी अन्तर्वृत्तियों का चित्रण किया है।

उदीपन विभाव -

जो रति आदि स्थायी भावों को उदीप्त करते हैं, उनकी वास्वाद योग्यता बढ़ाते हैं, वे 'उदीपन विभाव' हैं। विश्वनाथ के मतानुसार 'उदीपन विभाव' उन्हें कहा करते हैं जो किसी रस को उदीप्त किया करते हैं।^१

उदीपन विभाव प्रत्येक रस के अपने होते हैं। शृंगार रस के ^{उदीपन} उखी, उखा, झूती, बछकतु, वन उपवन, चन्द्र चांदनी, पुष्प, नदी, तट, चित्र आदि होते हैं। नायक-नायिका की चैष्टारें भी रस को उदीप्त करती हैं।

रसखान के काव्य में उदीपन विभाव प्रकृति का खुला प्रांगण है। उनके नायक कृष्ण की समस्त लीलारं प्रकृति के रमणीय चोत्र में हुई। गोकुल के बाग, तड़ाग, कुंजाली आदि उदीपन हैं।

बन बाग तड़ागनि कुंजगली अंखियां खुल पाइ हैं देखि दई।

अब गोकुल मांफ विलोकियेगी वह गोप उमाग उमाग रहै।

मिलि है हंसि गाइ कबै रसखानि कबै ब्रजबालनि प्रेम मई।

वह नील निचौल के घुघट की हवि देखी देखन लाज लई।^२

कृष्ण की कामदेव के समान नवरंगी हवि, उनकी बातें घातें सब उदीपन का कार्य कर रही हैं -

नव रंग अनंग मरी हवि तों वह मूरति जांसि गड़ी ही रहै।

बतियां मन की मन ही में रहै, झूतिया उर बीच बढ़ी ही रहै।^३

माल पगिया, सुगन्धित वस्त्र, अंगों में जड़ाऊ नगीने, मुक्तामाल ये सब वस्तुएं गोपियों में शृंगार रस को उदीप्त कर रही हैं -

लाल लई पगिया सब के, सब के पट कौटि सुगंधनि भीने।

अंगनि अंग उजे सब ही रसखानि अनैक जराउ नगीने।

१. उदीपनविभाववस्तै रसमुदीपयन्ति ये। साहित्यदर्पण, पृ० १८६

२. सु० १०, ८८

३. सु० १०, १२७

मुक्ता-गलमाल लते सब के सब ग्वार कुमार सिंगार ली कीने ।

ये सिंगारे ब्रज के हरि ही हरि ही के हरी स्थिरा हरि लीने ॥^१

निम्नांकित पद में कृष्ण की जलबैली विलोकनि बोलनि, कुंडल की श्रवि,
मधुर मुत्कान उद्दीपनकारी हैं ।

जलबैली विलोकनि बोलनि औ जलबैलिये लोल निहारन की ।

जलबैली ली डोलनि गंजनि ये श्रवि ली मिलि कुंडल वारन की ।

मदू ठाढ़ी लख्यो श्रवि कैसे कह्यो रसखानि गहैं दुम डारन की ।

हिय में जिय में मुत्कानि रसी गति को लिखवै निरवारन की ।^२

संजन, मीन, तरोज के मद की हरने वाले बड़े बड़े नयन, कुंजों में मुत्काते
पान साते अमृत बचन बोलते कृष्ण का स्वरूप एवं चैष्टारं उद्दीपन का कार्य कर रही हैं।^३

रसखान के काव्य में उद्दीपन मुरलीवट का तट,^४ कुंजगली,^५ मुरली ध्वनि^६,
मधुर मुत्कान, मोरपत्ता, पीत पटा, वन और कुंडल जादि हैं ।

रसखान का उद्देश्य कृष्ण विषयक रागात्मिका वृत्ति की अभिव्यक्ति और
कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण करना है । विभिन्न वृत्तियों के हृदय स्पर्शी
उपचय और लीलाओं की प्रभावशालिता के लिए उद्दीपनकारी वातावरण की दृष्टि
अनिवार्य है । आलम्बन के कारण जाग्रत भाव उद्दीपन विभावों के अभावों में रसात्मक
नहीं हो सकता । कृष्ण के चित्रण को हृदयग्राही रूप देने के लिए उनकी चैष्टाओं,
उनकी लीलाओं को बरस बनाने वाले वातावरण आदि का चित्रण अपेक्षित है ।
वंशीवट का उनकी क्रीड़ाओं से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है । यमुना तट उनका परम्परा प्रसिद्ध

१. सु० १०, १३७

२. सु० १०, १५५

३. सु० १०, ३५ ३६

४. सु० १०, ३५

५. सु० १०, २८

६. सु० १०, ५५

लीला स्थल है । मुरली को तान उनकी प्रेमिकाओं को विशेष रूप से बाकृष्ट करती हैं । उनकी वेशभूषा और मुस्कान ने गोपियों के चित को लुभा लिया है । अतस्व सहृदय कवि ने कृष्ण विषयक रति भाव के परिपाक के लिए इन विभावों का स्थान स्थान पर निदर्शन किया है ।

संचारी भाव

संचारी भाव का दूसरा नाम 'व्यभिचारी' भाव भी है। व्यभिचारी शब्द में वि + अभि + चर (उपसर्ग तथा धातु) का योग है। 'वि' विविधता का, 'अभि' अभिमुख्य का और 'चर' संचरण का धोतक है। अतएव वाक्, अंग तथा तत्त्वादि द्वारा विविध प्रकार के, रसानुकूल संचरण करने वाले भावों को व्यभिचारी अथवा संचारी भाव कहते हैं।^१

यह स्थायी भाव के सहकारी कारण है। यह सभी रसों में यथासम्भव संचार करते हैं। इसी से इनकी संचारी या व्यभिचारी संज्ञा है। स्थायी भाव की तरह ये रस की सिद्धि तक स्थिर नहीं रहते। अर्थात् ये अवस्था विशेष में उत्पन्न होते हैं और अपना प्रयोजन पूरा हो जाने पर स्थायी भाव को उचित सहायता दे कर लुप्त हो जाते हैं। इनकी संख्या इस प्रकार ३३ है। निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, क्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, वृत्ति, व्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विवोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, त्रास, वितर्क, मरण।

रसज्ञान के काव्य में रसानुकूल अनेक संचारी भावों का व्यंजना हुई है -

मोह -

मय, वियोग, दुःख, चिन्ता आदि से उत्पन्न चित्त-विषोप के कारण यथार्थ ज्ञान का लो जाना मोह है। इसका वर्णन चित्त-भ्रम, चेतना हीन होना आदि अनुभाव से होता है।^२

रसज्ञान के काव्य में मोह संचारी भाव का निरूपण अनेक स्थलों पर हुआ है। नायिका के मोह का स्वरूप इस पद में देखिये -

१. रस-सिद्धान्तः स्वरूप-विश्लेषण, पृ० ३५

२. मोहो विचिच्छता भीतिदुःखावेगामुचिन्तनैः।

मुच्छानाज्ञानपतनभ्रमणादर्शनादिकृत् ॥ - साहित्य दर्पण, पृ० २२६

उनहीं के स्नेहन जानी रहें उनहीं के जु नेह दिवानी रहें ।
 उनहीं की जुनै न बी बैन त्यों तेन सों बैन अनेक ठानी रहें ।
 उनहीं संग डोलन में रसखानि अबै सुख सिंधु अधानी रहें ।
 उनहीं बिन ज्यों जलहीन हूँ मीन तो जांति मेरी अंगुवानी रहें ॥^१

यहाँ चिन्ता की विवशता से मोह व्यंग्य है ।

स्मृति

पहले के अनुभव किये हुए सुख एवं दुख आदि विषयों का स्मरण ही स्मृति है ।^२ रसखान के काव्य में अनेक स्थलों पर स्मृति संचारी के दर्शन होते हैं -

डोलिबो कुंजनि कुंजनि को बरु बैनु बजाइबो धेनु चरैबो ।
 मोहिनि तामनि तों रसखानि उखानि के संग को गोधन गैबो ।
 ये सब डारि दिदे मन मारि बिजारि दियौ सिगरो सुख पैबो ।
 मूलत क्यों करि नेहन ही को 'दही' कहिबो मुसकर चितैबो ।^३

कृष्ण का स्मरण नायिका को हो रहा है । वह कृष्ण के कुंजों में डोलने, वेणु बजाने, धेनु चराने, गोधन गाने का स्मरण करते हुए कहती है कि यह सब तो मुलाया जा सकता है किन्तु कृष्ण के मुसकर कर दही मांगते हुए स्वरूप को कैसे मुलाया जाय , अर्थात् उस रूप को नहीं मुलाया जा सकता । उसकी स्मृति बार बार हो उठती है ।

काल्हि पर्यौ मुरली-धुनि में रसखानि जु कानन नाम हमारो ।

ता दिन ते नहिं धीर रह्यौ आ जानि लयौ अति कीनी पंवारो ।^४

यहाँ गोपी को कृष्ण द्वारा अपने नाम लिये जाने का स्मरण हो रहा है ।

१. सु० २०, ७४

२. काव्य कल्पद्रुम, भाग १, पृ० १३२

३. सु० २०, २३

४. सु० २०, ५१

धृति

धृति कहते हैं इच्छाओं की पूर्ति को और उसके कारण हैं - यथार्थ ज्ञान, अभीष्ट लाभ आदि आदि । इसमें तृप्ति सूचक बोलचाल, उल्लास, हास किंवा बुद्धि विकास आदि विकार हुआ करते हैं ।^१

रसज्ञान के इस दोहरे में भी धृति संचारी की अभिव्यक्ति हो रही है -

कहा करे रसज्ञानि को कौज जुगल लवार ।

जो पै राखनहार है माखन-वाखन हार ।^२

मानुष हीं तो वही रसज्ञानि बसों ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।

जो पशु हीं तो कहा बस मेरो चरों नित नंद की धेनु मंकारन ।

पाहन हीं तो वही गिरि को जो करूँ कर कत्र पुरंदर धारन ।

जो खग हीं तो बसेरो करों मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ।^३

भक्ति और तत्त्वज्ञान के कारण हमारे विचार से इस पद में धृति संचारी भाव है किन्तु कन्हैयालाल पौदार जी ने यहां अभिलाषा-जन्य वीत्युक्त्य को ही माना है ।^४

हर्ष

इष्ट पदार्थ की प्राप्ति अभीष्ट जन के समागम आदि से उत्पन्न आनन्द ही हर्ष है । इसमें रोमांच मन की उत्फुल्लता, गद्गद वचन, स्नेह आदि अनुभाव होते हैं ।^५ रसज्ञान के काव्य में अनेक पदों में इस भाव के दर्शन होते हैं ।^६

१. ज्ञानाभीष्टागयाधैस्तुतंपूर्णसृष्टता धृतिः ।

साहित्यवक्तोलासहासप्रतिमादिकृत ॥ साहित्य दर्पण, पृ० २२२

२. सु० १०, १६

३. सु० १०, १

४. काव्य कल्पद्रुम भाग १, पृ० १३६

५. काव्य दर्पण, पृ० ७३

६. देखिये सु० १०, २०, २१, २६, ३१, ३६, ४६, ११७, ११६

‘बाजु गई हुती मोर ही हँ रसखानि रई वहि नंद के मोनहिं ।
 बाको जियौ जुग लख करौर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहिं ।
 तैल लगाइ लगाइ के अंजन मोहं बनाइ बनाइ छिठीनहिं ।
 हाहि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यौ चुनकारत झीनहिं ॥’^६
 द्वितीय पंक्ति में यशोदा के हर्ष के साथ गोपियों का भी हर्ष व्यंजित हो
 रहा है ।

जड़ता

दृष्ट तथा अनिष्ट के देखने और सुनने से किंकर्तव्यविमुक्त हो जाना ही ‘जड़ता’
 है । इसमें अनिमिष होकर (पलक न लगा कर) देखना और सुन रहना बादि अनुभाव
 होते हैं ।^१

रसखान के काव्य में ‘जड़ता’ उंचारी भाव की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर
 हुई है । गोपियों की दशा के निरूपण में जड़ता^२ उंचारी भाव की सुन्दर अभिव्यंजना
 हुई है । गोपियां कृष्ण की बांसुरी को सुन कर किंकर्तव्यविमुक्त हो गई हैं -

‘दुध दुह्यां वीरौ पय्यौ तातो , न जमायौ कयौ
 जामन दयौ लो पय्यौ पय्यौई सटाइगो ।
 जान हाथ जान पाइ अब ही के तब ही तें,
 जब ही तें रसखानि तानन जुनाई गौ ।
 ज्यौ ही नर त्यों ही नारी तैसीये तरुन बारी,
 कह्यै कहा री अब ब्रज बिललाइगो ।
 जानिये न वाली यह झोहरा जसोमति को,
 बांसुरी बजाई गौ कि बिष बगराइ गौ ।’^३

१. सु० १०, २०

२. अप्रतिपक्षि जड़ता स्यादिष्टानिष्टदर्शिन्युतिभिः ।

अनि अनिमिषनयननिरीक्षणं तूष्णीमिभावादयस्तत्र ॥ साहित्यदर्पण, ५०
 २०६

३. देखिये सु० १०, २४, २५, २८, २९, ३२, ३४, ३५, ६३, ७८

४. सु० १०, ६३

यहाँ पर जड़ता संचारी भाव की वृत्ति सुन्दर व्यंजना है ।

औत्सुक्य

अमुक वस्तु का अभी लाभ हो, ऐसी इच्छा होना औत्सुक्य है ।^१ इसमें वांछित वस्तु के मिलने के विलम्ब का अवलोकन, मन की चिन्ता, शीघ्रता, पसीना और निःश्वास आदि अनुभाव होते हैं ।

रसखान के काव्य में औत्सुक्य संचारी के अनेक पदों में दर्शन होते हैं । गोपियाँ कृष्ण के दर्शन के लिए उत्सुक हैं -

चौर की चटक औ लटक नव कुंडल की,
मौह की मटक नेह आंखि दिखाउ रे ।
मोहन बुजान गुन-रूप के निधान फेरि
बांसुरी बजाइ तनु-तपन सिराउ रे ।
रहो बनवारी बलिहारी जाऊँ तेरी बाजु
मेरी कुंज बाह नैकु मीठी तान गाउ रे ।
नंद के किओर चित चौर मोरपंखारै
बंसी वारे सांवरे पियारे हत जाउ रे ।^२

गोपियाँ कृष्ण की सानिध्य प्राप्ति के लिए उत्सुक हैं ।

त्रास

प्रबल विरोध, भयानक वस्तु के दर्शन, बिजली का कड़कना आदि प्राकृतिक उत्पात के कारण चित्त का व्यग्र होना 'त्रास' संचारी है । इसमें दहकम्प, चीखना, बिल्लाना, पसीना आना आदि अनुभाव होते हैं ।^३

रसखान के काव्य में त्रास के अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं । कृष्ण को देख कर एक गोपी में त्रास भाव का संचार होता है, उसकी दशा को रसखान इस प्रकार दर्शाते हैं -

१. काव्य कल्पद्रुम, भाग १, पृ० १३६

२. पृ० १०, ७३

३. निघटिबिधुदुल्कायैस्त्रासः कम्पादि कारकः । साहित्य दर्पण, पृ० २२०

पहलें दधि लै गइ गोकुल में बस चारि भए नटनागर पै ।

रसखानि करी उनि मनभई कहैं दान दै दान खरे अरपै ।

नखतें पिस नील निचोल उपैटै उखी उम मांति कंपै डरपै ॥^६

यहां 'ब्राज' का चित्रोपम निरूपण हुआ है ।

रसखान के काव्य में अनेक तंचारी भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है । रस-परिपाक में तंचारी भावों के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । यद्यपि रसखान की काव्य रचना का आधार काव्य शास्त्र नहीं, किन्तु उनके काव्य में तंचारी भावों का स्वाभाविक तथा कलात्मक चित्रण मिलता है ।

अनुभाव योजना

अनुभाव, भाव व्यंजना के प्रधान अंग माने गये हैं। बालम्बन और वाक्य की चैष्टारों जिनके द्वारा रति आदि भावों का अनुभव होता है, 'अनुभाव' कहलाते हैं। 'उन उन कारणों से हृदय में उद्बुद्ध रत्यादि भावों को बाहर प्रकाशित करने वाले अंगादि व्यापारों का नाम 'अनुभाव' है। लोक-जीवन में तो ये अंगादि-व्यापार (रत्यादि भावों के) 'कार्य' समझे जाते हैं किन्तु काव्य-नाट्य के क्षेत्र में इन्हें 'अनुभाव' की अलौकिक संज्ञा प्राप्त है।^१

मन के भाव अमूर्त होते हैं होने के कारण अश्रेय होते हैं। जब तक उनकी प्रतीति न हो जाय वे भावक को किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं कर सकते। उनकी अभिव्यक्ति का साधन है भाव की अनुभूति करने वाले पात्र की वांगिक, कायिक और सात्विक चैष्टारों का चित्रण। सिद्ध कवि इन चैष्टारों के मार्मिक निरूपण द्वारा पात्रों की मनोवृत्तियों का चित्ताकर्षक उद्घाटन करता है। रसखान ने पात्रगत भावों की सफल व्यंजना के लिए उनकी चैष्टारों (हावों, अनुभावों, मुद्राओं आदि) का सफल निरूपण किया है।

कायिक अनुभाव

कटाक्ष आदि वांगिक चैष्टारों को 'कायिक अनुभाव' कहते हैं। रसखान के काव्य में कायिक अनुभाव के सुन्दर नमूने मिलते हैं। उन्होंने भावानुसूल चैष्टारों का सम्यक विधान किया है -

‘बाली पगे रंगे जे रंग सांवरे मो पै न बावत लालची नैना ।
 धावत हैं उतहीं जित मोहन रौके रुकें नहिं घुंघट रेना ।
 काननि कौं कलकल कल नाहिं परी उखी प्रेम सौं भीजे तुने बिन बैना ।
 रसखानि महुं मधु की मखियां जब नेह को बंधन क्यों हू छूटेना ॥’

१. उद्बुद्ध कारणोंः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्

लौके यः कार्यरूपः तौ अनुभावः काव्यनाट्ययोः ॥ साहित्यदर्पण, पृ० २००

२. सु० २०, १२६

नायिका के नयनों की गति में वेग है जो घुंघट के आवरण को खींचकर करने को तैयार नहीं। नयनों की चंचलता नायिका की प्रबल आकांक्षा को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुई हैं। विभिन्न अंगों की उत्तुकता एवं उत्कंठा का चित्रण कायिक अनुभावों द्वारा उजीवता के साथ हुआ है।

नैन नचाइ चितै मुसकाइ जु बीट ह्वै जाइ अंगूठा दिखायो ।^१

नैन नचाना, मुस्काना और बीट में जा कर अंगूठा दिखाना आदि अनेक कायिक भावों की एक साथ व्यंजना हुई है। यहाँ कवि ने नायिका की चतुरता एवं चंचलता की अनुभावों द्वारा चित्रात्मक ढंग से अभिव्यक्ति की है।

बाजु हीं निहाइयाँ बीर निपट कालिंदी तीर,

दौउन को दौउन सों मुरि मुसकाइबो ।

दौऊ परें पैयां दौऊ उत हैं बलैयां उन्हें,

मूलि गर गैयां इन्हें गागर उचाइबो ॥^२

इन पंक्तियों में एक दूसरे को देखना, मुड़ मुड़ कर मुस्काना। एक दूसरे के पैरों पर पड़ना, निहावर होना आदि अनेक कायिक अनुभावों की सुन्दर व्यंजना हुई है।

बाजु ही बारक 'लेहु दही' कहि कै कहु नैनन में विहंता है ।

बैरनि वाहि मई मुसकानि जु वा रसखानि के प्रान वसो है ।

यहाँ नेत्रों में हँसने तथा मुस्कान से प्रभावित होने के कारण कायिक अनुभाव चमत्कार पूर्ण हैं।

फेरि फिरें अंसियां ठहराति हैं कारे पितंबरवार के ऊपर ।^३

नेत्रों की विवशता कायिक अनुभाव द्वारा चित्रित की गई है। यहाँ निनिमेष देखने का भाव निहित है।

१. जु० २०, १०४

२. जु० २०, १००

३. जु० २०, ३४

अंसियां अंसियां सों सकाड़ मिलाइ छिलाइ रिफाई हियो हरिबो ।

बतियां चित बोरत चेटक सी रस बारु चरित्रन ऊचरिबो ।^१

यहाँ अंसियां मिलाना, रिफाना, बातें करना आदि काव्यिक अनुभावों द्वारा शृंगार रस की सफल व्यंजना हुई है ।

सात्त्विक भाव

सत्त्व के उद्देक से उत्पन्न जो अनुभाव हैं उन्हीं को सात्त्विक भाव कहा गया है ।^२ रसखान के काव्य में सात्त्विक भावों की भी सुन्दर व्यंजना हुई है ।

बंसी बजावत बानि कढ़ी सो गली में बली कहु टोना सो डारै ।

हेरि चितै, तिरछी करि दृष्टि चली गयो मोहन मुठि सी मारै ।

ताही धरी सों परी धरी रोज पै प्यारी न बोलति प्रानहुं बारै ।

राधिका जो है तो जीहैं सबे न तो जी हैं छलाछल नंद के डारै ॥^३

इस पद में कृष्ण का वंश बजाना और तिरछी दृष्टि से गोपियों को देखना उद्दीपन विभाव हैं । आलम्बन कृष्ण और उनकी चितवन आदि उद्दीपनों से गोपी इतनी अधिक प्रभावित हैं कि उनकी वाणी भावावेग के कारण अवरुद्ध हो गई है । इस प्रकार सात्त्विक भाव 'स्तंभ' का चित्रण किया गया है । इस चित्रण में शृंगार रस की हृदयहारी व्यंजना की गई है -

पूरब पुन्यनि तैं चितई जिन ये अंसियां मुसकानि मरी जु

कोऊ रही पुतरी सी खरी, कोई घाट डरी , कोउ बाट परी जु ।

जे अपने घर हीं रसखानि कहै अरु होंनि जाति मरी जु ।

लाल जे बाल बिहाल करी न निहाल करी जु ॥^४

१. सु० १०, १२०

२. विकाराः सत्त्वसंभूताः सात्त्विकाः परिकीर्तिताः ।

साहित्य दर्पण, पृ० २०१

३. सु० १०, ६८

४. सु० १०, १४२

यहाँ गोपियाँ कृष्ण की मुस्कान मरी बाँसों से प्रभावित हैं। कृष्ण बालम्बन, उनकी मुस्कान मरी बाँसों उदीपन विभाव हैं। उनसे प्रभावित होकर गोपियों की चेष्टाएँ पुतली के समान लड़ी रहना आदि स्तंभ नामक सात्विक भाव हैं। घाट पर गिरना, बेहाल होना 'मरी' जाना में 'प्रलय' नामक सात्विक भाव का मनोरम निरूपण हुआ है।

मोहन रूप की बन डोलति घुमति री तजि लाज बिचारे ।

बंक बिलौकन नैन बिजाल सुदंषति कौर कटाक्षन मारै ।

रंग मरी मुख की मुस्कान लखें लखी कौन जु देख उम्हारे ।

ज्यों अरविंद हिमंत-करी कककौरि के तोरि मरीरि के डारै ॥^१

कृष्ण की उदीपक मुस्कान ने गोपी को आत्म विस्मृत कर दिया है। कृष्ण के प्रेम में विभोर होने के कारण वे अपने रति भावना को क्षिपा नहीं पा रही है। वह विह्वल हो कर बन में डोलती है और लज्जा त्याग कर स्वच्छन्द रूप से घुमती है। उसका इस प्रकार डोलना और घूमना रति भाव व्यंजक होने के कारण कायिक अनुभाव है। कृष्ण की रंगमरी मुस्कान के प्रभाव से अपनी देह को न संभाल पाना अर्थात् निश्चेष्ट होना और अपने को भूल जाना आदि 'प्रलय' नामक सात्विक भाव हैं।

रसखान के काव्य में सात्विक, मानसिक और कायिक अनुभावों की एक साथ भी अभिव्यक्ति हुई है -

बाईं सबै ब्रज गोप लली ठिठकीं ह्वै गली जमुना-जल न्हाने ।

औचक बाईं मिले रसखानि बजावत बैत बैनु जुनावत ताने ।

हाहा करी सितकीं सिगरी मति मैन हरी हियरा कुलसाने ।

धूपें दिवाती अमानी चकोर तों और तों दोऊ चले दृग बाने ॥^२

गोपियाँ यमुना में नहाने जाती हैं किन्तु अचानक कृष्ण की दृष्टि पड़ जाने पर वे ठिठक उठती हैं। इस ठिठकने में अनेक भाव भरे हैं। कुछ डर, कुछ लज्जा,

१. सु० र०, १३०

२. सु० र०, ३७

कुक्ष वाशंका, कुक्ष वारचर्य, सभी बातें एक साथ आकाश में फिलमिलाते अनेक तारों की भांति प्रकट हो रही हैं। सितकने में अनु सात्विक भाव है। कुलजाने में 'हर्ष' मानसिक अनुभाव है। घुमना 'दृग्बान' चलाना आदि 'कायिक' अनुभाव हैं। सम्भवतः इसी बात की दृष्टि में रखते हुए डा० सावित्री सिन्हा ने कहा है कि 'कायिक तथा मानसिक अनुभावों का चित्र रसखान ने रेखाओं द्वारा ही प्रस्तुत किया है। रेखाएं बड़ी उमरी हुई तथा अजीब हैं। चित्र-कल्पना का आदर्श रूप इन रेखा-चित्रों में प्राप्त होता है।'^६

वास्तव में रसखान अनुभाव-योजना में पूर्ण सफल हुए हैं। अनुभावों और चेष्टाओं की यह विभूति आगे चल कर ऐतिहासिक कवियों में विशेष रूप से देखने को मिलती है। उनकी अनुभाव-योजना चित्रात्मकता, अजीबता और भावों की प्रवणता की दृष्टि से प्रशंसनीय है।

६. ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यञ्जना शिल्प, पृ० २४२

स्थायी भाव

‘हृदय में वासना रूप में स्थित, अन्य भावों द्वारा किसी प्रकार भी न दबने वाले, प्रवान, विरोधी-अविरोधी भावों को अन्तर्हित करके आत्म-भाव प्राप्त करा सकने वाले, विरकाल अथवा आप्रबन्ध स्थायी रहने वाले आस्वाद-योग्य मनोभावों को ‘स्थायी भाव’ कहते हैं।’ अभिनव गुप्त ने स्थायी भाव की वासनारूपता के सम्बन्ध में कहा ‘सभी प्राणियों में विद्यमान इस चित्कृत्ति से शून्य तो कोई भी नहीं है। साथ ही यह जन्म से प्राणी में रहती है, क्योंकि संस्कार रूप है।’ वास्तव में स्थायी भाव जन्मजात हैं। वे वासना रूप में विद्यमान रहते हैं। वे दूसरे भावों को अपने में अन्तर्हित कर लेते हैं।

भाव अनेक हैं, उनकी संख्या का निर्देश असम्भव है, किन्तु भरत ने स्थायी भावों की संख्या आठ तक निर्धारित करते हुए क्रमशः रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, मय, जुगुप्सा और विस्मय का नाम गिनाया है। धीरे धीरे शान्त रस की कल्पना के साथ साथ निर्वेद नामक स्थायी भाव की कल्पना की गई। वत्सल रस के स्वीकार होने से वात्सल्य को स्थायी माना गया। इसी प्रकार भक्ति रस की प्रतिष्ठा होने पर देवविषयक रति भी स्थायी भाव के अन्तर्गत आई। इस प्रकार स्थायी भाव की संख्या का विस्तार होता गया।

साहित्यदर्पणकार ने स्थायी भाव की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो कि न तो किसी अनुकूल भाव से तिरौहित हुआ करता है और न किसी प्रतिकूल भाव से ही दबा करता है। यह भाव तो अन्त तक ^{अन्तर्हित} रहने वाला भाव है और इसी में रस के अंकुर (अभिनव किंवा सूक्ष्म उद्भेद) की मूल शक्ति निहित रहा करती है।³

१. रस-सिद्धान्तः स्वरूप-विश्लेषण, पृ० ४५

२. नहि रतच्चित्कृत्ति वासना शून्यः प्राणी भवति ।

केवलं काचित् क्वाचिदयिका चित्कृत्तिः काचिदुना ॥ नाट्यशास्त्र टीका, पृ० २८२

३. अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरौधातुमक्षमाः ।

आस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति उच्यते ॥ साहित्य दर्पण, पृ० २२७

स्थायी भाव की यह विशेषता है कि वह अपने में अन्य भावों को लीन कर लेता है और सजातीय तथा विजातीय भावों से नष्ट नहीं होता । वह आस्वाद का मूलभूत होकर विराजमान रहता है और विभाव, अनुभाव तथा संवारी भावों से परिपुष्ट हो कर रस रूप में परिणत हो जाता है ।

रसज्ञान के काव्य में रति स्थायी भाव की विशेष रूप से व्यंजना हुई है । वत्सलता या वात्सल्य रति और देवविषयक रति के साथ साथ निर्वेद या शम के भी दर्शन होते हैं । हास का पुट भी मिलता है ।

स्थायी भाव रति

किसी अनुकूल विषय की ओर मन की प्रवृत्ति को 'रति' कहते हैं । विश्वनाथ ने भी प्रिय वस्तु के प्रति हृदय की उत्कट उन्मुखता (प्रेमाद्रिता) को 'रति' कहा है ।^१

स्थायी भाव जब सहायक सामग्री से पुष्ट होकर व्यंजित होता है तब रस का परिपाक होता है । जैसे शृंगार रस में रति स्थायी भाव होता है। परन्तु जहाँ परिपोषक सामग्री नहीं रहती वहाँ स्वतन्त्र रूप से स्थायी भाव ही व्यंजित होता है । रसज्ञान के काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाते हैं -

जलबैली बिलोकनि बोलनि औ जलबैलिये लोल निहारन की ।
जलबैली सी डोलनि गंढनि पे बबि सी मिलि कुंछल वारन की ।
मद ठाढ़ी लस्यो बबि कैयों कहीं रसखानि गहें द्रुम डारन की ।
हिय में जिय में मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की ।^२

+ + +

कान्ह मर बस बासुरी के अब कौन उसी, हमकों बहि है ।
निसर्घास रहे अंग-आथ लगी यह सौक्ति तापन क्यों बहि है ।

१. रतिमनिःकुले धै मनसः प्रवणावितम् ।

वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते ।। साहित्य दर्पण, पृ० २२७

२. सुं १०, १५५

जिन मोहि लियो मनमोहन को रसखानि उदा हमको दहि है ।
मिळि जावौ सबे सखी भागि कैं अब तो ब्रज में बसुरी रहि है ॥^६

जल की न घट भरें मग की न पग धरें,
घर की न कहु करैं बैठी भरें बांसु री ।
एकै चुनि लोट गई एकै लोट-पोट मई,
एकनि के दृगनि निकसि बार बांसु री ।
कहै रसखानि जो सबै ब्रज-बनिता बधि,
बधि० कहाय हाय मई कुलहांसु री ।
करिये उपाय बांसु डारिये कटाय
नाहिं उपजैगौ बांसु नाहिं बाजे बांसुरी ।^७

वात्सल्य रति

पुत्र आदि के प्रति माता-पिता का जो वात्सल्य स्नेह होता है वही उसे वात्सल्य कहते हैं ।^१ यशोदा के इस कथन में वात्सल्य रति फलक रही है -

आपनी जो ढोटा हम सबही को जानत हैं ,
दोऊ प्रानी सब ही के काज नित धावहीं ।
ते तौ रसखानि अब दूर तें तमाओ देखें,
तरनितनूजा के निकट नहिं आवहीं ।
आन दिन बात जन हितुन तों कहों कहा,
हितु जेऊ आर ते ये लोचन दुरावहीं ।
कहा कहों जाली खाली देत अब ठाली पर,
मेरे बनमाली को न काली तें जुड़ावहीं ।^२

यहां माता यशोदा की अपने पुत्र के अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न हृदय

१. पु० १०, ६४

२. पु० १०, ५४

३. काव्य-दर्पण, पृ० ६७

४. पु० १०, २००

की उद्दिग्भता का चित्रण किया गया है। वे अपने पुत्र की सुरक्षा का मना के लिए बहुत चिन्तित हैं। यहां माता के हृदय की मंगलमयी स्नेह-भावना का सुन्दर चित्रण है।

भक्ति

ईश्वर के प्रति अनुराग को भक्ति कहते हैं^१। रसखान भक्त कवि हैं, उनका काव्य भक्ति भाव से भरपूर है।

‘वा लकुटी वरु कामरिया पर राज तिहुं पुर को तजि डारों।
 जाठहुं सिद्धि नवीं निधि को सुख नंद की गाह बराह बिहारों।
 र रसखानि जबै हन नैनन ते ब्रज के बन-बाग निहारों।
 कौटिक यह कलधौत के घाम करील की कुंज ऊपर वारों॥’^२
 यहां स्थायी भाव देव विषयक रति अपने पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है।
 ‘कवन मंदिर ऊंचे बनाइ के मानिक लाइ सदा फलकैयत।
 प्रात ही ते सगरी नगरी नग-मौतिन ही की तुलानि तलैयत।
 जयपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मधवा ललकैयत।
 ऐसे मर तो कहा रसखानि जो तांवरे ग्वार तों नेह न लैयत॥’^३
 यहां स्थायी भाव देव विषयक रति की व्यंजना हो रही है।

निर्वेद या शम

तत्त्वज्ञान होने से सांसारिक विषयों में जो विराग-बुद्धि उत्पन्न होती है, उसे ‘निर्वेद’ कहते हैं। विश्वनाथ के अनुसार जो ‘शम’ कहते हैं, उसका अभिप्राय है - निस्पृहता की दशा में समुत्त वन्तःकरण की वन्तर्मुक्तता।^४

रसखान को ‘प्रेम-वाटिका’ में स्थान-स्थान पर निर्वेद की निबन्धना मिलती है -

१. काव्य दर्पण, पृ० ६८

२. तु० १०, ३

३. तु० १०, ६

४. शमो निरीहावस्थायां स्वात्मविनामजं सुखम् । - साहित्य दर्पण, पृ० २२८

‘प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरित बखान ।
जो आवत यहि ढिग बहुरि, जात नाहिं रसखान ॥’^१

+ + +
आनंद अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम अंग जान ।
कै वह विषयानन्द कै ब्रह्मानन्द बखान ॥’^२
ज्ञान कर्म ’ए’ उपासना, सब बहमिति को मूल ।
दृढ़ निश्चय नहिं होत बिन, किये प्रेम अनुकूल ॥’^३
काम क्रोध मद मोह मय लोभ द्रोह मात्सर्य ।
इन सब ही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥’^४

हास

हास का अभिप्राय वाणी आदि की विकृतियों के दर्शन अथवा चिन्तन से संभूत चित्तविकास से है ।^५ दूसरे शब्दों में विकृत वचन, कार्य और रूप-रचना से तृह्य के मन में जो उल्लास उत्पन्न होता है उसे ‘हास’ कहते हैं । रसखान के काव्य में २ एक ही उदाहरण मिल जाते हैं -

केसरिया पट केसरि लौर, बनां गर गुंज को हार ढरारो ।
को हो जु आपनी या हबि तों जु खरे अंगना प्रति डीझि टारो ।
आनि बिकाऊं से खौर रहे रसखानि कहै तुम्ह रोकि दुवारो ।
हैं तो बिकाऊं जो लेत बने हस बोल तिहारो है मोल हमारो ॥’^६
यहां रस के परिपाक के अभाव में हास भाव की अभिव्यंजना है ।

१. प्रे० वा०, ३

२. प्रे० वा०, २२

३. प्रे० वा०, १२

४. प्रे० वा०, २४

५. वागारिविकृतशैलीविकासो हास उच्यते । साहित्य दर्पण, पृ० २२७

६. पु० २०, २६३

उत्साह

कार्य करने का अभिनिवेश, शौर्य आदि प्रदर्शित करने की प्रबल इच्छा को 'उत्साह' कहते हैं। विश्वनाथ ने भी कहा है कि कार्यों के आरंभ में स्पर्धालु जो हृदय का आवेश जथा उद्योग है वही उत्साह है।^१ रसखान के काव्य में उत्साह स्थायी के उदाहरण कम मिलते हैं क्योंकि उनका उद्देश्य वीर काव्य की रचना करना नहीं था। निम्नलिखित पद में उत्साह की व्यंजना हुई है -

‘कंस के क्रोध की फैलि रही सिंगरे ब्रज मंडल मांफ फुकार जी ।

आह गर कक्षी कक्षि के तबहीं नट-नागर नंदकुमार जी ।

द्वैरद को रद हैंचि लियौ रसखानि हिये भहि लार बिचार जी ।

लीनी कुठौर लगी लखि तोरि कलंक तमाल तैं कीरति डार जी ।।’

इस प्रकार रसखान में केवल इ: स्थायी भावों की निबन्धना मिलती है - रति, निर्वेद, उत्साह, हास, वात्सल्य और भक्ति। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने परम्पराप्रथिता चार स्थायी भावों को ही गौरव दिया है, जिनमें अन्यतम भाव रति का है। क्रोध, जुगुप्सा, विस्मय, शोक और भय की उपेक्षा का मूल कारण यह प्रतीत होता है कि इन भावों का रति से मेल नहीं है। रसखान प्रेमी जीव थे, अतएव उन्होंने अपनी कविता में तीन प्रकार के रति भावों की व्यंजना की। रति, वात्सल्य और भक्ति। और जो भाव इनमें विशेष सहायक हो सकते थे उन्हें यथा स्थान अभिव्यक्त किया। दूसरा कारण यह भी है कि उनकी रचना मुक्तक हैं। अतएव प्रबन्ध काव्य की भांति उसमें सभी प्रकार के भावों का सन्निवेश आवश्यक नहीं था।

१. कार्यारम्भेषु अरम्भः स्पर्धानुत्साह उच्यते । - साहित्य दर्पण, पृ० २२८

२. पु० २०, २०५

रस के भेद

कुछ आचार्यों ने शृंगार रस को रसरत्न और अन्य रसों की उसी से उत्पत्ति मानी है।^१ आचार्य मम्मट ने रसों की संख्या आठ मानी है - शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीमत्स और जड्भुत।^२ जब विद्वानों ने भक्ति और वात्सल्य को भी रस मान लिया है। रसज्ञान के काव्य में शृंगार रस, भक्ति रस तथा वात्सल्य रस की निबन्धना हुई है।

शृंगार रस

‘शृंगार रस’ का स्वल्प शृंगार शब्द की व्युत्पत्ति (‘शृंग कच्छति’ इति शृंगारः) से स्पष्ट हो जाता है। शृंग का अभिप्राय है (कामुक-युगल के उत्पीड़क) कामाविभाव का और शृंगार का अभिप्राय है - जो इस प्रकार कामोद्भेद से संभूत हो।^३ अन्य शब्दों में कामी जनों के हृदय में रति जादि स्थायी भाव रस अवस्था को प्राप्त हो कर काम की वृद्धि करता है। इसी से इसका नाम शृंगार है।^४

शृंगार रस के भेद

शृंगार रस के दो भेद हैं - १. संयोग शृंगार २. विप्रलम्ब शृंगार।^५

१. व्यभिचार्यारि सामान्याशृंगार इति गीमते ,

तद्भेदाः काम पितरे हास्यार्था अप्यनैकशः । अग्निपुराण, अ० ३४६।४, ५

२. शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः

वीमत्साद्भुत संज्ञो वैत्यष्टो नाट्ये रसाः स्मृताः ॥

काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ० ८३

३. शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकम् ।

उत्तम प्रकृति प्रायी रसः शृंगार उच्यते ॥ साहित्य दर्पण, पृ० २३०

४. काव्य कल्पद्रुम, भाग १, पृ० १७८

५. शृंगारस्य द्वौ भेदौ-संयोगो विप्रलम्बश्च । काव्यप्रकाश, पृ० ८४

संयोग शृंगार

प्रिय और प्रेमी का मिलन दो प्रकार का हो सकता है - संयोग सहित और संयोग रहित । पहले का नाम संयोग शृंगार और दूसरे का नाम संयोग शृंगार है ।

संयोग शृंगार

जहां नायक-नायिका की संयोगावस्था में जो पारस्परिक रति रहती है वहां संयोग शृंगार होता है । 'संयोग' का अर्थ संयोग बुद्ध की प्राप्ति है । रसखान के काव्य में संयोग-शृंगार के अनेक उदाहरण मिलते हैं । राधा कृष्ण मिलन और गोपी कृष्ण मिलन में कहीं कहीं संयोग शृंगार का पूर्ण परिपाक हुआ है । उदाहरण के लिए -

‘जंसियां जंसियां जो सकाह मिठाह छिलाह रिफाह हियो हरिबो ।

बतियां चित्त चौरन बैठक सी रस चारु चरित्र उचरिबो ।

रसखानि के प्रान जुधा भरिबो अधरान पै त्यों अधरा धरिबो ।

इतने सब मेन के मोहनी जंत्र पे मंत्र बसीकर सी करिबो ॥’

इस पद्य में रसखान ने संयोग शृंगार की अभिव्यक्ति नायक और नायिका की शृंगारी चैष्टाओं द्वारा करायी है । यद्यपि उन्होंने नायक तथा नायिका या कृष्ण-गोपी शब्द का प्रयोग नहीं किया ; तथापि यह पूर्णतया ध्वनित हो रहा है कि यहां गोपी-कृष्ण आलम्बन हैं । ‘चित्त चौरन बैठक सी बतियां उदीपन विभाव हैं । जंसियां मिलाना, छिलाना, रिफाना आदि अनुभाव हैं । हर्ष उंचारी भाव है । संयोग शृंगार की पूर्ण अभिव्यक्ति हो रही है ।

संयोग-शृंगार के आनन्द-सागर में जलैलियां करते हुए नायक नायिका का रमणीय स्वरूप देखिये -

जोई हुती प्रिय की क्षतियां लगि बाल प्रवीन महामुद मानै ।

केत लुठे इहाँ बहाँ फहाँ, क्षति देखत मेन अमानै ।

वा रस में रसखान पगी रति रैन जगी बसियां अनुमाने ।

चंद पे बिंब बँके बिंब पे कैरव कैरव पे मुकतान प्रमाने ।^१

निम्न श्लोक में नायक-नायिका वृद्धा की शक्ति में शारीरिक साक्षिण्य का सुख प्राप्त कर आलिंगन करते हुए दिखलाये गये हैं । इस पद में कुछ घोर शृंगार का पुट है -

अंगनि अंग मिलाइ दोऊ रसखानि रहे लिपटे तरु काहीं ।

अंगनि रैन अनंग को रंग सुरंग अनी पिय दे गलबाहीं ।

बैन ज्यों मैं तु रैन तेनेह को लूटि रहे रति अन्तर जाहीं ।

नीबी गहै कुच कंचन कुंम कहै बनिता पिय नाही जु नाहीं ॥^२

यहाँ नायक नायिका आलंबन हैं । वृद्धा की शक्ति उदीपन विभाव है । अंग मिलाना अनुभाव तथा हर्ष संचारी भाव है । स्थायी भाव रति है जिसके द्वारा रस का पूर्ण परिपाक हो रहा है ।

अघर लगाइ रस प्याइ बांजुरी बजाइ,

मेरो नाम गाइ हाइ जाइ कियो मन में ।

नटखट नवल सुघर नंद नंदन नै,

कैरि कै अचेत चेत हरि के जतन में ।

फटपट उलट पलट पट परिधान,

जान लगौ लालन पै सबे बाम बन में ।

रस रास सरस रंगीली रसखानि जानि,

जानि जोर जुगति बिलास कियो जन में ।^३

यहाँ कृष्ण और गोपियों के संभोग शृंगार का चित्रण है । यह चित्र अनुभावों एवं संचारी भावों द्वारा बहुत ही रमणीय बन पड़ा है । संभोग-शृंगार निरूपण मयादावादी भक्त कवियों की मयादा के अनुकूल नहीं है । किन्तु साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि रसखान कितो परम्परा में बंध कर नहीं चले । पंडित

१. सु० १०, ११६

२. सु० १०, १२१

३. सु० १०, ३२

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार - 'ये स्वच्छंद धारा के रीति मुक्त कवि हैं । सुफ़ी सन्तों और फारसी-साहित्य की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं यह अविनाश है ।'^१ रसखान का यह शृंगार निरूपण उनके सुफ़ी काव्य से प्रभावित होने की ओर उकेर करता है ।

संयोग शृंगार

नायक-

जहाँ नायिका की संयोगावस्था में पारस्परिक रति होती है, पर संयोग बुरा प्राप्त नहीं होता, वहाँ संयोग-शृंगार होता है ।^२ जो विशद आत्मानुभूति के रूप में है उसका पर्यवसन भी प्रेम ही होता है । ऐसा प्रेम किसी वस्तु का, जैसे भोगादि साधन नहीं बनता । इस साध्य-भूत प्रेम का मिलन 'संयोग' कहा जाना चाहिये ।^३ किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रेमी प्रेमिका के प्रेम में मिलन में सान्निध्य की कामना अवश्य होती है । हर प्रेमी अपना प्रिया से शरीर-सम्बन्ध की इच्छा करता है । इसलिए लौकिक प्रेम के संयोग पक्ष में विशद आत्मानुभूति की कल्पना केवल आदर्श ही प्रतीत होती है । संयोग विशद आत्मानुभूति या अनुभूत्यात्मक प्रेम के अभाव में भी सम्भव है । संक्षेप में जहाँ संयोग न होते हुए भी मिलन सुखानुभूति की व्यंजना हो वहाँ संयोग शृंगार मानना चाहिये ।

रसखान ने गौपी-कृष्ण (राधा-कृष्ण) के मिलन-प्रसंगों में संयोग शृंगार की भाँकियाँ प्रस्तुत की हैं । उदाहरणार्थ -

लंजन मीन उरोजन की मृग को मद गंजन दीरघ नैना ।

कुंजन तैं निकस्यो मुसकात तु पान मरुयाँ मुस अमृत बैना ।

जाई रहै मन प्रान बिलोचन कानन में रुचि माना बैना ।

रसखानि कहुयाँ घर मो हिय में निजिवासर एक पलों निकौना ॥^४

१. रसखानि (ग्रंथावली), मुम्बई, पृ० १४

२. काव्य-दर्पण, पृ० १७३

३. धनानन्द और स्वच्छंद काव्य धारा, पृ० २०२

४. जुं० १०, ३१

यहां गोपी-कृष्ण जालम्बन विभाव हैं। कृष्ण का स्वरूप कुंजन, कुंजन से मुस्काने पान खाते निकलना उदीपन विभाव हैं। संचारी भाव एवं अनुभावों के अभाव में भी दर्शनालाम द्वारा संयोग-शृंगार ध्वनित हो रहा है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण रसखान के काव्य में उपलब्ध हैं।

कृष्ण के स्वरूप-दर्शन मात्र से ही गोपियों की जलें प्रेम कर्नाड़ी हो गई। अंग्रेजी साहित्य के प्रथम दर्शन में प्रेम (लव रेट फा स्टैंड जस्ट) के दर्शन भी रसखान के शृंगार निरूपण में होते हैं -

बार हीं गौरस बैचरी बाबु हूं भार के मुड़ चड़े कत मॉड़ी।

जावत जात हीं होइगी मांफ मटू जमुना मत रॉड ली जॉड़ी।

पार गरं रसखानि कहे अंखियां कहे होइगी प्रेम कर्नाड़ी।

राधे बलाह लयी जाइगी बाज आवे ब्रजराज-मनह की डॉड़ी।^१

कृष्ण के दर्शन मात्र से गोपी उनके प्रेमाधीन हो गई। निम्नांकित उदाहरण में कृष्ण के दर्शन द्वारा संयोग-शृंगार की चर्चा की गई है -

बन बाग तड़ागनि कुंजगली अंखियां खुस पाइ हैं देखि दई।

जब गोकुल मांफ विठोकिऐगी वह गोप गुमाग उमाय रई।

मिलि है हंसि गार कवे रसखानि कवे ब्रज बालनि प्रेम भई।

वह नील निचौल के घुंघट की इवि देखी देखन लाज लई।^२

संयोग में हर्ष, उल्लास आदि वर्णन की परम्परा रही है। रसखान ने भी यहाँ उसके दर्शन कराये हैं। कृष्ण के दर्शन कर गोपियां प्रफुल्लित हो रही हैं। कभी कृष्ण हंस कर गा रहे हैं कभी गोपियां प्रेममयी हो रही हैं। लज्जायुक्त गोपी घुंघट में से कृष्ण को निहार रही हैं। यहाँ गोपी-कृष्ण जालम्बन हैं। बन, बाग, तड़ाग, कुंजगली उदीपन हैं। विठोक्ता एवं हंसना अनुभाव हैं। लज्जा संचारी भाव है। स्थायी भाव रति है। शृंगार रस का पूर्ण परिपाक हो रहा है।

रसखान ने दोहे जैसे छोटे छंद में भी हर्ष और उल्लास द्वारा संयोग शृंगार

१. सु० १०, ४१

२. सु० १०, ८८

की हृदय स्पर्शी व्यंजना की है : उदाहरणार्थ -

‘बंक बिलोकन हंति मुरि मधुर बैन रसखानि ।

मिले रसिक रसराज दोउ हरखि हिये रसखानि ।’^१

उन्होंने निम्नांकित पद में सुन्दर रूपक द्वारा अंकीय शृंगार के अमस्त उप-
करणों को जुटा दिया है। नायिका नायक से कहती है -

बागन काहे को जाबो पिया घर बैठे हो बाग लगाय दिखाऊँ ।

रही बनार सी मौरि रही बहियाँ दोउ चपे की डार नवाऊँ ।

क्षाति मैं रस के निबुवा दौ बरु घुंघट सोलि के दास चखाऊँ ।

ढांगन के रस के चक्के रति फूलनि की रसखानि ठुटाऊँ ।।’^२

यहाँ शृंगार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है।

जिस प्रकार प्रिय के रूप को देख कर घनानंद की नायिका^३ के हृदय में हर्ष की उमंगें सागर की तरंगों राग की ध्वनि की भाँति उठती हैं। नैत्र रूप राशि का अनुभव करते हैं फिर भी तृप्ति हो बने रहते हैं, उसी प्रकार कृष्ण के दर्शन से रसखान की गोपियों का मन भी उनके लावण्य-सागर में डूब जाता है। वे रूप-सागर में किलौल करने लगती हैं। कृष्ण-कटाक्ष से उनकी लज्जा का हरण हो जाता है। उदाहरणार्थ -

‘अति सुंदर री बजराज कुमार महा मृदु बोलनि बोलत है ।

ललि नैन की कोर कटाक्ष चलाई के लाज की गांठन सोलत है ।

सुनि री जजनी अलबेली लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है ।

रसखानि लल्ले मन बूझि गयो मधि रूप के सिंधु कलोलत है ।।’^४

यहा प्रेम भावना मूर्तिमान हो उठी है। कटाक्षाँ द्वारा लाज के बन्धन टूटने में चमत्कार है। रसखान ने निम्नांकित पद में कृष्ण की मुरली की मधुर तान

१. सुजा० १०, १०६

२. सु० १०, १२२

३. घनानंद ग्रन्थावली, प्रकीर्णक १३

४. सु० १०, १५७

का अचूक प्रभाव दिखाया है। गौपियाँ मुरली ध्वनि सुन कर उनकी हो जाती हैं -

सजनी पुर बीथिन मैं पिय-गौहन लागी फिरँ जित ही तित धाई ।

बाँसुरी टेरि सुनाइ जली अपनाइ लई ब्रज राज कन्हाई ॥^१

रसखान के चित्र इतने सुन्दर हैं कि बाद के कवि उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। रीतिकालीन प्रतिद्वन्द्व कवि मतिराम^२ के सबैयों पर रसखान के संयोग-वर्णन की गहरी छाप है। किन्तु वे रसखान के समान माधुर्य^३ के अन्तःस्थल में प्रवेश न कर सके।

१. सु० १०, ६७

२. आनन चंद निहारि-निहारि नहीं तनु औघन जीवन वारें ।
चारु चिनौनी बुझी मतिराम, हिय मति को गहि ताहि निकारें ।
क्यों करि थीं मुरली मनि कुण्डल मोर पखा बनमाल बिसारें ।
ते धनि जे ब्रज राज लखें, गृह काज करें जरु लाज समारें ।

मतिराम ग्रन्थावली

३. देखिये सु० १०, ६६ ।

विप्रलम्भ शृंगार

शृंगार रस के दो भेद पहले ही बता दिये हैं । जहाँ अनुराग तो अति उत्कट हो, परन्तु प्रिय समागम न हो उसे विप्रलम्भ (वियोग) कहते हैं ।^१ विप्रलम्भ पूर्वराग , मान, प्रवास और करुण इन भेदों से चार प्रकार का होता है । रसखान ने करुण विप्रलम्भ का निरूपण अपने काव्य में नहीं किया ।

रसखान का मन विप्रलम्भ शृंगार-निरूपण में अधिक नहीं रहा । उसका कारण यह हो सकता है कि वे अपनी अन्तर्दृष्टि के कारण करुण को सदैव अपने पास अनुभव करते थे और इस प्रकार की संयोगावस्था में भी वियोग का चित्रण कठिन होता है । रसखान के लौकिक जीवन में हमें घनानंद की भांति किसी विद्रोह के दर्शन नहीं होते । इसीलिए उनसे घनानंद की भांति जीते जागते और हृदय स्पर्शी विरह-निवेदन की आशा करना व्यर्थ ही होगा । रसखान ने वियोग के अनेक चित्र उपस्थित नहीं किये किन्तु जो लिखा है वह नर्मस्पर्शी है जिस पर संक्षेप में विचार किया जाता है ।

पूर्वराग

सौन्दर्य आदि गुणों के अवन अवस्था दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक और नायिका की , समागम की पहली दशा का नाम पूर्वराग है ।^२ दूत, भाट अथवा

१. यत्र तुरति प्रकृष्टा नामीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ ।

साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृ० २३२

२. स च पूर्व रागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात् ॥

साहित्यदर्पण, पृ० २३२

३. अवणादर्शनाद्यापि मिथः संस्तरागयोः ।

दशाविशेषो योऽप्राप्तो पूर्वराग उच्यते ॥

अणं तु भवेच्च दूतबन्दी तस्मिन्नाह ।

इन्दुजाले च चित्रे च साक्षात्स्वप्ने च दर्शनम् ॥

साहित्यदर्पण, पृ० २३३

उसी के द्वारा गुणों का श्रवण होता है और दर्शन शब्दजाल में, चित्र में, स्वप्न में अथवा साक्षात् भी होता है ।

रसखान के काव्य में भी पूर्वराग के दर्शन होते हैं-

मो मन मानिक ले गया, चिते चोर नंद नंद ।

अब वे-मन में क्या करूं, परी फेर के फंद ॥

नैन दलालनि चौहट्टे, मन-मानिक पिय हाथ ।

रसखान डोल बजार के, बैच्यो हिय जिय साथ ॥^१

पूर्वराग का एक और उदाहरण देखिये -

उनहीं के लैहन जानी रहैं उनहीं के जु नैह दिवानी रहैं ।

उनहीं की जुनै न जाँ बैन त्यों तेन जाँ बैन अनेकन ठानी रहैं ।

उनहीं संग डोलन में रसखानि अबै बुरखिंधु अघानी रहैं ।

उनहीं बिन ज्यों जलहीन ह्वै मीन सी आंखि मेरी अंखानी रहैं ।^२

नायक नायिका का पूर्व मिलन हो चुका है इसी से वे नायक के लैह में दिवानी हो रही है । नायक के वक्त जुनै और साथ रहने में जो आनंद था उसकी प्राप्ति न होने पर नायिका जलहीन मछली की भांति तड़प रही है । यहाँ नायक बालम्बन हैं । संचारी भाव उन्माद एवं मोह हैं । स्थायी भाव रति है । अनुभाव और उद्दीपन विभाव के अभाव में भी रस परिपाक हो रहा है ।

मान

क्रोध का नाम 'मान' है । वह दो प्रकार का होता है । एक प्रणय से उत्पन्न दूसरा ईर्ष्या से उत्पन्न प्रेम की उलटी ही चाल हुवा करती है , इसलिए दोनों के हृदय में भरपूर प्रेम होने पर भी, बिना ही कारण जो एक दूसरे के ऊपर क्रोध है उसे 'प्रणयमान' कहते हैं ,^३ पति की अन्य जंगना में वातवित के

१. सु० १०, ७०

२. सु० १०, ७४

३. मानः क्रोधः स तु द्वेषा प्रणयेष्यतिमुद्भवः ।

प्रेम्णः कुटिल गामित्वात्क्रोधो यः कारणवित्ता ।

द्वयोरिति नायकस्य नायिकायाश्च उभयौश्च प्रणयमानौ नामनिर्दिष्टौ ।

देखने पर या अनुमान कर लेने पर जथवा किसी से बुन लेने पर स्त्रियों के जी मान होता है उसे 'ईर्ष्या मान' कहते हैं ।^१

मानावस्था को विरह माना गया है । नायक नायिका के मानावस्था में समीप रहने पर भी विरह माना जायगा क्योंकि वहाँ सात्विध्य-बुल की प्राप्ति नहीं होती । रसखान ने मान की चर्चा केवल तीन पदों में की है । नायिका को मान करते हुए दिखाया है । दूती उसे समझा रही है कि तू मान त्याग दे । बलन्त में भी कोई मान करता है ? -

नौखी तूं माननि मान कहुँ कियौ किन मान बांत में कीनी है कीने ?^२

निम्नांकित पद में दूती नायिका से कह रही है कि मान करना तुझे किसी सिखा दिया -

‘पिय तौं तुम मान कहुँ कत नागरि बाजु कहा किन्हूँ सिख दीनी ।

ऐसे मनोहर प्रीतम के तरुनी बरुनी पग पोछे नवीनी ।

बुन्दर हास, सुधानिधि तौं मुख नैननि चैन महारस भीनी ।

रसखानि न लागत तेहिँ कहुँ अब तेरी तिया किन्हूँ मति दीनी ।^३

दूती नायिका को नायक के गुणों का स्मरण कराकर मान त्यागने को कह रही है ।

प्रवास

कार्यवश, शापवश जथवा सम्भ्रम (भय)वश नायक के अन्य देश में चले जाने को प्रवास कहते हैं^४ । प्रवास में नायक नायिका अलग अलग वास करते हैं । रसखान का प्रवास सम्बन्धी केवल एक ही पद उनकी अपकाशित रचनाओं में मिलता है -

१. ईर्ष्यामानो भवेत्स्त्रीणां तत्र त्वनुमिति स्त्रिया ।

उत्स्वप्नाचितमोर्गाङ्गीत्र स्तुन संवा ॥ साहित्य दर्पण, पृ० २४०

२. सु० १०, ११३, ११४, ११५

३. सु० १०, ११३

४. सु० ०, ११४

५. प्रवासी भिन्नदेशित्वं कार्याच्छापा च संभ्रमात् ।-साहित्यदर्पण, पृ० २४३

फूलत फूल सबे बागन बोलत मोर बसंत के आवत ।
 कौयल की किलकार सुनै सब कंत विदेसन ते सब धावत ।
 ऐसे कठोर महा रसखान नू नेकहु मोरिं ये पीर न पावत ।
 हूक सी सालत है हिय में जब बैरिन कौयल कूक सुनावत ।^१

यहाँ नायक आलम्बन है । बाग, मोरे, बसंत, कौकिल की किलकार आदि उद्दीपन विभाव हैं । हूक सी सालना कायिक अनुभाव है । संवारी भाव चिन्ता है । स्थायी भाव रति है । इस पद में रस का पूर्ण परिपाक हुआ है । कौयल की बति मधुर ध्वनि विरह में नायिका की दुःखदायी प्रतीत होती है । उसको सुन हृदय सालने लगता है । सुरदास ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं -

बिन गोपाल बैरिन मई कुँजें ।

तब यह लता लगति बति शीतल जब मई विषम ज्वाल की पुँजै ।^२

१. पद ३४ भवानी शंकर याज्ञिक द्वारा प्राप्त पद, याज्ञिक संग्रह, बस्ता नं० २२, नागरी प्र० उभा काशी ।

२. ग्रामर जीत मार, पृ. ८५

विरह दशारं

वाचार्थों ने विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत दस काम दशारं या विरह दशारं मानी हैं। ये इस प्रकार हैं - अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्देग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति।^१

रसखान का मन वियोग-शृंगार वर्णन में अधिक नहीं रहा। न ही उनका उद्देश्य लक्ष्मण ग्रन्थ की रचना था। इसलिए विरह की समस्त दशाओं का समावेश उनके काव्य में न हो सका। आत्मानुभूति के इस उन्मुक्त गायक के काव्य में स्वभावतः ही स्मृति, गुणकथन, प्रलाप एवं अभिलाषा आदि दशाओं का निरूपण मिलता है।

स्मृति

अदृश वस्तु के दर्शन तथा चिन्तन आदि से पहले के अनुभूत सुख, दुःख आदि विषयों का स्मरण ही स्मृति है।^२ रसखान के विरह निरूपण में इस दशा के उदाहरण मिलते हैं -

काह कहूं रतियां की कथा बतियां कहि आवत है न कछु री।

आइ गोपाल लियो परि अंक कियो मत्त मन भायां पियां रस कूरी।

ताही दिना उँ गड़ीं अखियां रसखानि मेरे अंग अंग में पूरी।

पै न दिखार्ह परे जब बावरी दै के बियोग बिधा की मजुरी ॥^३

गोपी कृष्ण के अंग बिताये हुए दिनों का स्मरण कर रही है।

गुणकथन एवं प्रलाप

प्रलाप^४ करते समय स्वभावतः जिसकी याद करते हैं उसके गुणों का बखान

१. अभिलाषश्चिन्ता स्मृति गुणकथनोद्देग तंप्रलापाश्च ।

उन्मादोद्य व्याधिर्जड़ता मृतिरिति दशा कामदशाः ॥

साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृ० २३३

२. काव्यदर्पण, पृ० ७२

३. गुं० १०, १११

४. अलङ्कारप्रलापः स्याच्चेतसौ प्रमणाद् मृशम् । साहित्यदर्पण, पृ० २३३

भी हो जाता है। इसलिए प्रायः प्रलाप और गुणकथन दोनों दशावर्षों का निरूपण एक साथ मिलता है। रसखान की गोपी भी प्रलाप करते हुए कृष्ण के गुणों का बखान करती है -

नवरंग अनंग भरी हवि तौ वह मूरति जांति गड़ी हो रहै ।
 बतियां मन की मन ही मैं रहै, पतियां उर बीच बड़ी हो रहै ।
 तबहुँ रसखानि गुजान बलि नलिनी दल बूंद पड़ी हो रहै ।
 जिय की नहिं जानत हों उजनी रजनी बसुवान लड़ी हो रहै ।^१

बनुधारा-तहिल यहाँ कृष्ण के सौन्दर्य के गुण-गान के साथ-साथ प्रलाप भी ध्वनित हो रहा है।

स्मृति और अभिलाषा

अभिलाषा का अर्थ है इच्छा करना, स्मृति से तात्पर्य स्मरण करने से है। स्मरण करते हुए उसकी इच्छा करना ^{स्वाभाविक है}। रसखान के विरह निरूपण में यह स्वरूप मिलता है।

फूलत फूल सबे बन बागन बोलत भौर बसंत के जावत ।
 कौयल की किलकार जुने जब कंत विदेसन ते जावत ।
 ऐसे कठोर महा रसखान जु नैकहु मोरी ये पीर न पावत ।
 हूक ली तालत हिय में जब बैरिन कौयल कूक जुनावत ।^२

यहाँ नायिका को अपने नायक की स्मृति हो रही है। साथ ही उसके बचनों से नायकागमन की अभिलाषा ध्वनित हो रही है।

रसखान का विरह निरूपण अन्य भक्ति-कालीन कवियों के विरह वर्णन से भिन्न है। उसमें शास्त्रीय परम्परा के दर्शन नहीं होते। इसी से विरह की समस्त काम दशावर्षों एवं विप्रलम्भ के सम्पूर्ण भेदों का वर्णन नहीं मिलता।

१. जु० १०, ११६७

२. पद ३४ भवानी शंकर याज्ञिक जी से प्राप्त याज्ञिक जंगल, बस्ता नं० २२, ना० ५० सभा काशी।

न ही उनका विप्रलम्भ शृंगार फारसी की ऊहात्मक शैली से प्रभावित है ।
उसमें जायसी की भांति बतिसयौक्तिपूर्ण चित्रण भी नहीं मिलते । न ही नायिका
की विरह ज्वाला से समस्त ब्रह्मांड तपता हुआ प्रतीत होता है ।

रसखान के विरह वर्णन की बड़ी विशेषता यह है कि विरह निरूपण
करते करते वचानक नायक का आगमन दिखा कर संयोग करा देते हैं -

नाह-वियोग बढ़यो रसखानि मलीन महादुति देह तिया की ।

पंकज लीं मुख गे मुरफार लगीं लपटें बरि स्वांत हिया की ।

रसे में आवत कान्ह जुने छुल्ले तरकी जु तनी बंगिया की ।

यों जग जोति उठी जंग की उतकाइ दई मनौ बाती दिया की ॥^४

यद्यपि रसखान के विरह-वर्णन में सुर, घनानंद, मतिराम और रत्नाकर
की ती मारमिकता नहीं फिर भी पूर्णतः सफल हुए हैं ।

भ्रमरगीत

भ्रमरगीत उपालम्भ-काव्य है । यह विप्रलम्भ शृंगार से सम्बद्ध है । भ्रमरगीत वह काव्य है जिसमें गोपियों ने भ्रमर के व्याज से उद्वेग पर और उद्वेग के व्याज से कृष्ण पर व्यंग्य किए हैं । व्यंग्य-लक्ष्य की दृष्टि से भ्रमरगीत के मूलतः दो पक्ष हो गये हैं । पहला बुद्धि पक्ष है जो तैदान्तिक और व्यंग्य प्रधान है, उसके प्रतीक हैं उद्वेग। दूसरा हृदय पक्ष है जो रागात्मक है और उपालम्भ-प्रधान है, उसके प्रतीक हैं कृष्ण ।

भ्रमरगीत का मूल उद्देश्य है ज्ञान पर प्रेम की, मस्तिष्क पर हृदय की, विजय दिखा कर निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की अपेक्षा गुण साकार ब्रह्म की भक्ति भावना की श्रेष्ठता का प्रतिष्ठापन ।^१

भ्रमरगीत-काव्य परम्परा और रसखान

काव्य-परम्परा की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण धारा है जिसमें प्रचुर परिमाण में प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री उपलब्ध है । सूरदास, नन्ददास आदि प्रमुख कवियों की रचनाएं प्रकाश में आ चुकी हैं, किन्तु इस विषय पर अप्रकाशित रचनाएं भी अनेक पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं ।^२

भ्रमरगीत-कथा का सर्वप्रथम निरूपण श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के ४६ वें और ४७ वें अध्यायों में मिलता है । ४६ वें अध्याय में कृष्ण के सन्देश-वाहक उद्वेग की ब्रज-यात्रा और उनका नंद-यशोदा से वातलाप है ।

भ्रमरगीत-सम्बन्धी कुछ स्वतन्त्र प्रबन्धात्मक ग्रन्थ हैं और कुछ मुक्तक रूप में लिखे गये हैं । स्फुट शब्दों की ही अधिकता है । इस प्रकार मध्यकाल और आधुनिक काल के अनेक कवियों ने इस विषय पर रचना की है । सूरदास से लेकर आधुनिक काल तक इस परम्परा के दर्शन होते हैं । भक्तिकाल में सूरदास, नन्ददास ने भ्रमरगीत की रचना की । रसखान ने भी कुछ स्फुट पद लिखे । रीतिकाल में जालम

१. हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा, पृ० ३

२. हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा, पृ० ४

आदि ने इसे आगे बढ़ाया । भारतेन्दु-युग में उत्पन्नारायण ने, द्विवेदी युग में हरिऔध आदि ने , उसके बाद मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों ने अपना नूतन भाव सम्पत्ति और कल्पना द्वारा इस परम्परा का विकास किया । परिमाण की प्रचुरता और काल की व्यापकता के अतिरिक्त कला की दृष्टि से भी ये रचनाएं हिन्दी-साहित्य में महत्वपूर्ण हैं ।

यूं तो भ्रमरगीत-प्रसंग को सर्वप्रथम विकसित एवं विस्तृत रूप से साहित्य में लाने का श्रेय सुरदास को है किन्तु परमानन्ददास , नन्ददास एवं रहीम के अतिरिक्त रसखान ने भी भ्रमरगीत सम्बन्धी पदों की रचना की । कृष्ण भक्तों के समान रसखान ने इस प्रसंग पर स्फुट कविच-स्रव्यों की रचना की है । उद्धव के योग संदेश को अस्वीकार करती हुई गोपियों का यह कथन उद्धव के प्रति उपहासपूर्ण होने के साथ ही सरस तथा मार्मिक है ।

‘लाज के लेप चढ़ाय के अंग पची सब सीस को मंत्र जुनाइ के ।

गाढ़ हूँ ब्रज लोग धक्यो करि औषध बैसक उहि दिवाइ के ।

ऊधो सों को रसखानि कहै जिन चित धरो तुम स्ते उपाइ के ।

कारे बितारे को चाहै उतारुयो जे विष बावरे रास लगाइ के ।’

भागवत की गोपियां सीधी-आदी हैं । उद्धव की बात सुन कर चुप हो जाती हैं । सुरदास, नन्ददास की गोपियों के समान रसखान की गोपियां तर्कशील हैं , आत्मविश्वासी हैं । उन्हें पूर्ण विश्वास है कि कोई उन्हें मार्ग से विचलित नहीं कर सकता । वे उद्धव से परिहास करती हैं कि तुम उस काले नाग कृष्ण के विरह-विष को भस्म लगा कर उतारना चाहते हो, यह कैसे सम्भव है ।

रसखान ने नारी-मनोभावों का सुन्दर वर्णन भी भ्रमरगीत के अन्तर्गत किया है । गोपियों का कोमल हृदय कठोर बातें सुन कर सत टूक हो कर फटा जाता है। उन्हें कृष्ण की बुद्धि और व्यवहार पर आश्चर्य हो रहा है । कृष्ण की जो ब्रज में बदनामी हो रही है उससे वे चिन्तित हैं -

‘वा रसखानि गुनीं तुनिके हियरा उत टूक ह्वै फाटि गयो है ।
 जानति हैं न कहु हम ह्यां उन वां पढ़ि मंत्र कहा धौं दिया है ।
 तांचो कहैं जिय में निज जानि के जानति हैं जस जैसी लयी है ।
 जोग लुगई सबै ब्रज मांहि कहैं हरि चैरी को चैरी भयी है ॥^१

गोपियों में आपत्त्य भाव जागृत होता है । वे कुब्जा पर क्रोधित हो रही हैं । यदि उन्हें कुब्जा मिल जाती तो वे उसे लातों, मुक्कों मारती और नाक में कौड़ी पहनाती , ऐसा नाच नचाती कि कृष्ण की रिफाने का फल मिल जाता ।^२ यहां गोपियों के मनोभावों की स्वाभाविकता अवैज्ञानीय है । उनका उद्भव से यह अनुरीय कितना स्वाभाविक है, इसकी मर्म स्पर्शिता देखने योग्य है -

तार की सारी तो मारी लगे धरिबै कहैं सीत बधंबर पैया ।
 हांसी तो दासी सिखाई लई है वैई जुवैई रसखानि कन्हैया ।
 जोग गयी कुब्जा की कलानि में री कब रे हैं जसोमती मैया ।
 हाहा न ऊधो कुढ़ावो हमें जबहीं कहि दै ब्रज बाजै बधैया ॥^३

गोपियां उद्भव का योग का संदेश सुनकर कहती हैं कि योग तो कुब्जा की कला में चला गया, तुम ऐसी बातें करके हमें न कुढ़ावो ।

वे जन्त में उद्भव से कह देती हैं कि प्रेम में नियम व्रत कहां । यदि कृष्ण की प्रवृत्ति चैरी पर रिफाने की हो गई है तो हम सब भी मिलकर चैरी ही बन जाती हैं ।

‘काहु तो माई कहा कहिये सहिये तो जो रसखानि सहार्वे ।
 नैम कहा जब प्रेम कियो तब नाचिय तोई जो नाच नचार्वे ।
 चाहत हैं हम और कहा सखि क्यों हू कहुं पिय देखन पावें ।
 चेरिये तौं जु गुपाल रच्यो तीं चलीं री सबै मिलि चैरी कहावें ॥^४

१. सु० १०, २०५

२. सु० १०, २०७

३. सु० १०, २०८

४. सु० १०, २०९

रसखान की गोपियां कुब्जा का अनादर करना चाहती हैं। उसको कृष्ण प्रेम की उज़ा देने के लिए उतावली हो रही हैं। वे तारा दास कुब्जा पर धर देती हैं। *सूर दास की गोपियां भी कुब्जा के समान में उठती हैं*

बरन वै कुब्जा भली कियो ।

मुनि मुनि समाचार ऊच्यो मो कहुक सिरात हियो ॥

जाको गुन, गति, नाम, रूप, हरि हास्यो, फिरि न दियो ।

तिन अपनी मन हरत न जान्यो हंसि हंसि लोग जियो ।

सूर तनक चन्दन चढ़ाय तन ब्रजपति बस्य कियो ।

और सकल नागरि नारिन को दासो दांव लियो ॥^६

भ्रमरगीत-काव्य में उपालम्भ के साथ व्यंग्य की प्रधानता होती है। यदि इसे व्यंग्य काव्य कहा जाय तो अनुचित न होगा। रसखान के भ्रमरगीत वर्णन में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। गोपियों का एक-एक शब्द व्यंग्य से भरा हुआ है। साथ ही नारी बुद्धि मनोभावों का स्वाभाविक निरूपण है। बुरदास की भांति वे योग को स्वीकार नहीं करते। उद्धव के निर्गुण-ज्ञानोपदेश का गोपियों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वे तरुत भक्ति को छोड़ कर भस्म रमाने को तैयार नहीं।

ताराशं यह है भक्ति काल में भ्रमरगीत की जो सामान्य प्रवृत्तियां प्रचलित थीं, रसखान उनसे बचकर नहीं गये। उनके यहां भी निर्गुण ब्रह्म और योग-वैदेश का खण्डन गोपियों की भावात्मक उक्तियों द्वारा हुआ है। गोपियों का विरह शृंगारिक विरह न होकर विरहाव्यक्ति है। भावपक्ष की प्रधानता है। यह कहना व्यर्थ है कि यद्यपि रसखान ने भ्रमरगीत सम्बन्धी कुछ ही पद्यों की रचना की किन्तु वे पूर्णतया सफल हुए हैं।

वात्सल्य रस

पितृ भक्ति के समान ही पुत्र के प्रति माता-पिता की अनुरक्ति या उनका स्नेह एक अवस्था उत्पन्न करता है, जिसे विद्वानों ने वात्सल्य रस माना है ।

पंडित विश्वनाथ ने वात्सल्य रस का स्थायी भाव वत्सलता या स्नेह माना है । पुत्रादि सन्तान इसके बालम्बन हैं । उनकी चेष्टारं उनकी विधा-बुद्धि तथा शौर्यादि उद्दीपन हैं और बालिंगन, स्पर्श, बुम्बन, एकटक उसे देखना , पुत्रकादि अनुभाव तथा अनिष्ट-शंका, हर्ष, गर्व आदि उसके संवारी हैं । पस्फुट चमत्कार के कारण वह इसे स्वतन्त्र रस मानते हैं । इसका वर्णन पद्मगर्भ क्षवि के समान तथा इसके देवता गौरी आदि षोडश मातृ ब्रह्म हैं ।^१

यद्यपि रसज्ञान ने पुरदास की भांति वात्सल्य रस सम्बन्धी अनेक पदों की रचना नहीं की तथापि उनका अल्प वर्णन ही मर्मस्पर्शी तथा रमणीय है । उन्होंने निम्नांकित पद में कृष्ण के होने स्वरूप के दर्शन कराये हैं ।

अबु झुल गई हुती भोर ही हों रसज्ञानि रहै बाहि नंद के भौनहिं ।

बाकी जियाँ जुग लख करौर जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं ।

तेल लगाइ लगाइ के अंजन भौह बनाइ अनाइ छिठौनहिं ।

ढालि ह्मेलनि हार निहारत वारत ज्यों चुक्कारत झौनहिं ।^२

यहां स्थायी भाव वत्सलता है । बाल कृष्ण बालम्बन हैं । उनका सुन्दर स्वरूप उद्दीपन है । निहारना, वारना, चुक्कारना अनुभाव हैं । हर्ष संवारी भाव है । सबके द्वारा रस का पूर्ण परिपाक हो रहा है ।

‘धूरि भरे अति लोभित स्याम जु तेसी बनी सिर सुन्दर चौटी ।

खेलत खात फिरँ अंगना पग पैजनी बाजति पीरी कछौटी ।

वा क्षवि को रसज्ञानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी ।

काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ जौं ठे गयो माखन रोटी ।^३

१. साहित्यदर्पण, पृ० २६७

२. सु० १०, २०

३. सु० १०, २४

यहां बाल कृष्ण बालम्बन हैं, उनकी वेष्टारं लेखते हाते फिरना उद्दीपन हैं । हर्ष संचारी भाव, वात्सल्यपूर्ण-स्नेह स्थायीभाव द्वारा वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक हो रहा है । यहां एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाल शोभा का वर्णन करती है तथा कौवे के उनके हाथ से रोटी ले जाते हुए देख कर उसके भाग्य की सराहना करती है । हरि शब्द के प्रयोग में यह स्पष्टतया सिद्ध है कि इस पद्य में वात्सल्य का निरूपण वात्सल्य-भक्ति-रस से प्रेरित है ।

रसज्ञान के काव्य में वात्सल्य रस के केवल दो ही उदाहरण मिलते हैं यद्यपि उन्होंने भक्तिकालीन अन्य कवियों की भांति वात्सल्य रस के अनेक पद्य नहीं लिखे, किन्तु दो पद्यों में उनकी कला की मनोरम व्यञ्जना हुई है ।

भक्तिरस

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध वाचार्यों - मम्मट, अभिनव गुप्त, विश्वनाथ, जगन्नाथ बादि ने रसों की संख्या नौ मानी है। उन्होंने भक्ति को रस-कोटि में नहीं रखा। उनके अनुसार भक्ति देव विषयक रति, भाव ही है। अभिनव गुप्त ने भक्ति का उपावेश शान्त रस के अन्तर्गत किया।^१ घनंजय ने इसकी हर्षोत्साह मानी।^२

भक्ति को रसरूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय वैष्णव वाचार्यों को है। उन्होंने अपने मनोवैज्ञानिक शास्त्रीय विवेचन के आधार पर भक्ति रस को अन्य रसों से उच्च बताया। मधुसूदन सरस्वती ने 'भक्ति रसायन' में भक्ति रस की स्थापना की। उनका तर्क है कि 'जब अनुभव के आधार पर तुल्यविरोधी क्रोध, शोक, भय आदि स्थायी भावों का रसत्व को प्राप्त होना मान लिया गया है तो फिर सहस्रगुणित अनुभव सिद्ध भक्ति को रस न मानना अपलाप है, जड़ता है।^३ वास्तविकता तो यह है कि भक्ति रस पूर्ण रस है, अन्य रस दादु हैं, भक्तिरस आदित्य है, अन्य रस सघोत हैं।^४

काव्यशास्त्र की दृष्टि से भक्तिरस का स्थायी भाव भगवद्भक्ति है।^५ भक्ति रस के आलम्बन भगवान् और उनके भक्तगण हैं।^६ भक्तिरस के आश्रय भक्त-गण हैं। भगवान का रूप (वस्त्र आदि) और चेष्टारं उदीपन विभाव मानी गई हैं। भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा में तैत्तिरीय संचारी माने गये हैं।^७ भक्ति रस

१. अतस्त्वैश्वर प्रणिधान विषये भक्ति श्रेष्ठे स्मृति मति धृत्युत्साहानुप्रविष्टे
अन्यैर्वाङ्गिम् इति न तयोः पृथग्रसत्वेनगणनानाम् । अभिनव भारती, जिल्द १,
पृ० ३४०

२. दशरूपक, ४।८३

३. भक्तिरसायन, २।७७-७८

४. भक्तिरसायन, २।७६

५. स्थायी भवो न तन्मोक्तः श्री कृष्ण विषया रतिः । हरि भक्ति रसामृत सिन्धु

६. हरि भक्ति रसामृत सिन्धु, २।१।१६

के आचार्यों ने भक्ति रस के विवेचन में तैत्तिरीयों की भक्तिरस का उंचारी माना है । रसखान के काव्य में निर्वेद^१ के साथ साथ धृति^२, हर्ष^३, स्मृति^४ आदि उंचारी भावों की निबन्धना हुई है ।

रसखान के काव्य में भक्ति रस के आलम्बन भगवान् श्रीकृष्ण हैं । उनका बांसुरी बजाना तथा भक्तों पर रीफना भक्तों की दृष्टि में उद्दीपन विभाव हैं । निम्नांकित पद में भक्ति रस की अकृत्रिम व्यंजना है -

देख विदेश के देखे नरेत्तन रीफ की कोऊ न बूझ करेगी ।
तारें तिन्हें तजि जानि गिरुयो गुन, जोगुन जोगुन गांठि परेगी ।
बांसुरीवारी बड़े रिफवार है त्याम जु नैयुक्त डार डरेगी ।
ठाड़लो छेड़ वही तो जहीर की पीर हमारे हियकी हरेगी ।^५

रसखान देश विदेश के राजाजों को त्याग कर भगवान् कृष्ण की शरण में आए हैं । उनका विश्वास है कि श्रीकृष्ण शीघ्र ही उन पर अगुग्रह करके उनके संकटों का निवारण करेंगे ।

सभी प्रकार के पैमियों की यह विशेषता होती है कि वे अपने प्रेम पात्र से संबद्ध पदार्थों के संपर्क से आनन्द का अनुभव करते हैं । भक्ति में भी यह विशेषता दृष्टव्य है । भक्त भगवान् के अधिक से अधिक आनिध्य में रहना चाहता है । अपनी लीला का भक्तों को आनन्द देने वाले भगवान् की लीलामुमि, भक्तों के लिए विशेष आनन्ददायिनी होती है । उस भूमि से सम्बद्ध प्रत्येक अङ्ग-वैतन पदार्थ भगवान् की महिमा से मंडित दिखायी पड़ता है । अतः भक्त कवि जन्मजन्मान्तर तक उस लीला-भूमि से सम्बन्ध बनाये रखना चाहता है -

१. सु० १०, ८

२. सु० १०, १

३. सु० १०, १२, १३, १४, १५

४. सु० १०, १८

५. सु० १०, ७

मानुष हों तो वही रसखानि बरौ ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन ।
 जो पशु हों तो कहा बस मेरी बरौ नित नंद की धेनु मंफारन ।
 पाहन हों तो वही गिरि की जो धर्यौ कर ब्रज पुरन्दर धारन ।
 जो लग हों तो बसेरो करौ मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन ॥^१

यहां भगवान् कृष्ण बालम्बन हैं । उनका गोवर्धन पर्वत को धारण करना उद्दीपन विभाव है । धृति संचारी भाव के द्वारा भक्ति रस का परिपाक हो रहा है ।

निम्न पद में आत्म समर्पण की भावना है । रसखान द्वारा किया गया हर कार्य केवल भगवान् के लिए हो, ऐसी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहते हैं -

बैन वही उनको गुन गाढ़ औ कान वही उन बैन तो सानी ।
 हाथ वही उन गात सरे बरन पाह वही जु वही बनजानी ।
 जान वही उन जान के संग औ मान वही जु कर मनमानी ।
 त्यों रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि तो है रसखानी ॥^२

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन में यह स्पष्ट है कि रसखान ने भक्तिरस के कौन-कौन से पद लिखे हैं, तथापि उनके काव्यों में भक्तिरस की प्रधानता नहीं है । वे प्रमुख रूप से शृंगार के कवि हैं । उनका शृंगार कृष्ण की लीलाओं पर आश्रित है । अतएव सामान्य पाठक को यह प्रान्ति हो सकती है कि उनके अधिकांश पद भक्ति रस की अभिव्यक्ति करते हैं । शास्त्रीय दृष्टि से जिन पदों के द्वारा पाठक के मन में स्थित ईश्वर-विषयक-रतिभाव रसता नहीं प्राप्त करता, उन पदों को भक्ति रस व्यंजक मानना तर्क संगत नहीं है । इसमें सन्देह नहीं कि रसखान भक्त थे और उन्होंने अपनी रचनाओं में भजनीय कृष्ण का सरस रूप से निरूपण किया है ।

१. सु० १०, १

२. सु० १०, ४

शान्तरस

संसार से अत्यन्त निर्वेद होने पर या तत्त्व ज्ञान द्वारा वैराग्य का उत्कर्ष होने पर शान्त रस की प्रतीति होती है । 'शान्त रस वह रस है जिसमें 'शम' रूप स्थायी भाव का वात्साव हुआ करता है । इसके वाश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति हैं , इसका वर्ण कुन्द-श्वेत अथवा चन्द्र-श्वेत है । इसके देवता श्री भगवान नारायण हैं। अनित्यता किंवा दुःखमयता आदि के कारण समस्त सांसारिक विषयों की निःशरता का ज्ञान अथवा साक्षात् परमात्म-स्वरूप का ज्ञान ही इसका बालम्बन-विभाव है । इसके उद्दीपन हैं पवित्र आश्रम, भगवान की लीला भूमियाँ, तीर्थ स्थान, रम्य कानन, साधु-संतों के संग आदि आदि । रोमांच आदि इसके अनुभाव हैं । इसके व्यभिचारी भाव हैं - निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति, जीव दया आदि ।^१

रसज्ञान संसार की अशरता से ऊब उठे हैं , सार तत्त्व को पहचानते हैं । इसलिए उनके काव्य में कहीं कहीं शान्त रस का पुट मिल जाता है । वे कहते हैं कि किसी प्रकार सोच न करके माखन बाखन हार का ध्यान करो जिन्होंने महा-पापियों का उद्धार किया है ।

‘द्रौपदी जी गनिका गज गीध अजामिल ओं कियो सो न निहारो ।
गौतम-गोहिनी कैसी तरी , प्रह्लाद को कैसे हूयो दुख भारी ।
काहे को सोच करे रसज्ञानि कहा करि है रवि चंद विचारो ।
ता खन जा खन राखिये माखन-बाखन हारो सो राखन हारो ।

-
१. शान्तः शमस्थायिभाव उत्तम प्रकृतिमेतः ।
कुन्दे सुन्दरच्छायः श्री नारायण देवतः ॥
अनित्यत्वादि शेष वस्तुनिः शरता तु या ।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते ॥
पुण्याश्रम हरि सौत्र तीर्थ रम्य वनादयः
महा पुरुष संगायस्तस्योद्दीपन रूपिणः
रोमाश्चापानु भावास्तथास्य व्यभिचारिणः ।
निर्वेद हर्ष स्मरण मति भूत दया दयः । साहित्यदर्पण, पृ० २६३

यहाँ कृष्ण बालम्बन हैं , उनके द्वारा किये गये कार्य उद्दीपन विभाव हैं ।
संचारी भाव व स्मृति है । निर्वेद स्थायी भाव द्वारा शान्त रस का पूर्ण परिपाक
हो रहा है ।

दुनियै सब की कहियै न क्यू रहियै हमि या मन बागर में
करियै ब्रत नेम सचाई लिये, जिन तैं तरियै मन बागर में
मिलियै सब तौँ दुरभाव बिना, रहियै तत संग उजागर में
रसखानि गुबिंद मऊ हिं यौं भजियै जिमि नागरि की चित गागर में

रसखान के काव्य में भाव चित्रण (अन्तःवृत्ति निरूपण)

अन्तःवृत्ति निरूपण से आशय मानव मन में उठे हुए विभिन्न भावों के चित्रण से है। रसखान के काव्य में मानव मन में उठी भावनाओं का सूक्ष्म निरूपण मिलता है। रसखान के काव्य में अधिकांश पद गोपियों के माध्यम से लिखे गये हैं। उनको पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है कि गोपी नहीं स्वयं रसखान बोल रहे हैं और अपने मन के विभिन्न भावों के दर्शन करा रहे हैं।

हर गोपी प्रसन्न हो रही है कि कृष्ण मुरली पर उसी को नाम लेकर बुला रहे हैं। कई पदों में गोपियों के इस म्रम के रसखान ने दर्शन कराये हैं। एक गोपी कहती है -

मेरी नाम गाइ हार्द जादू किया मन में ^१

मुरली से निकले हुए स्वर पर अपने नाम की कल्पना बहुत ही स्वाभाविक है। वास्तव में कृष्ण किसी गोपी का नाम नहीं ले रहे, किन्तु कृष्ण-प्रेम के कारण मुरली-ध्वनि पर गोपी यह कल्पना कर लेती है कि कृष्ण उसी के नाम की वंशी बजा रहे हैं। गोपी की दशा इस कल्पना मात्र से ही ऐसी हो जाती है कि मानों किसी ने उस पर जादू कर दिया हो। वह कृष्ण से मिलने के लिए व्याकुल हो जाती है, लोक लज्जा को त्याग देती है किन्तु फिर भी बदनामी से घब्रह है -

‘काल्हि पड़्यो मुरली-धुनि में रसखानि जू कानन नाम हमारी।

ता दिन ते नहिं धीर रह्यो जग जानि लयो जति कीनो पंवारी।

गांवन गांवन में जब तो बदनाम भई सब तों के किनारी।

तौ सज्जी फिरि फेरि कहीं पिय मेरी वही जग ठोंकि नगारी ॥^२

वे वंशी के स्वर में अपने नाम की कल्पना करके कृष्ण-मिलन के लिए विकल हो उठती है। कृष्ण के साथ विहार करने की इच्छा होने पर भी अनेक संकल्प-विकल्प मन में उठते हैं जिनके कारण वे कृष्ण से नहीं मिल पाती। लोक और समाज आदि का भी भय है किन्तु जब बदनामी हो ही जाती है तब गोपी सींचती

१. सु० १०, ३२

२. सु० १०, ५२

है कि बाहरी दिखावे से क्या होगा । जब कलंकित होही गई हूं, तो किस बात की लज्जा, किस बात का डर। वह कह उठती है -

बावरी जो मैं कलंक लग्यो तो निरंक हूँ क्यों नहीं बंक लगावत ।^१

यहां मनोदशा का कितना स्वाभाविक चित्रण है । गोपियों के विभिन्न संकल्प-विकल्प की अभिव्यंजना रसखान ने बड़े मनोरम ढंग से की है ।

ईर्ष्या-भाव की व्यंजना भी बड़े मार्मिक ढंग से रसखान के काव्य में मिलती है । ऐसा प्रतीत होता है कि रसखान नारी हृदय परखने में कुशल थे । नारी में ईर्ष्या भाव स्वाभावतः अधिक होता है और यह भाव उस समय और भी प्रबल हो उठता है जब उनकी तुलना में कोई दूसरी वस्तु या व्यक्ति उनके पिय के उनसे अधिक निकट हो । गोपियों को मुरली से बहुत अधिक ईर्ष्या है । उसका एक कारण यह भी है कि मुरली स्त्रीलिंग है और कृष्ण के निकट गोपियों की अपेक्षा अधिक रहती है, उनका अवरोधान करती है । गोपियों को यह अवसर प्राप्त नहीं होता इसी से वे बांस तक कटा डालना चाहती हैं -

करिये उपाय बांस डारिये कटाय

नाहिं उपजैगो बांस नाहिं बाजे फेरि वांसुरी ।^२

गोपियों में ईर्ष्या भाव इस सीमा तक प्रबल हो उठता है कि जब वे कृष्ण के रूप का अनुकरण करने लगती हैं, मोरपंख, गुंजमाल, पीताम्बर तथा लकुरी धारण करने को तैयार हो जाती हैं, तब वे इसी ईर्ष्या भाव के कारण मुरली को अपने होठों पर सहन नहीं कर सकतीं ।^३ गोपियों की ईर्ष्या का सबसे बड़ा कारण यह है कि मुरली उनकी अपेक्षा कृष्ण के अधिक निकट है ।

ईर्ष्या और असन्तोष दुःख में बदल जाते हैं । वे सदा यही उवाच करती हैं -

१. सु० १०, ८४

२. सु० १०, ५४

३. सु० १०, ८६

‘कान्ह मर बस बांसुरी के अब कौन उसी हमको चह है ।

नितबीज रहे संग-साथ लगी यह सौतिन तापन क्यों चह है ।

जिन मोह लियो मन मोहन को रसतानि उदा हमको दह है ।

मिलि जाओ अब मिलितहि भाजि कैं अब तो ब्रज में^{बांसुरी} रहि है ॥’^६

गोपियाँ सौतिया ढाह के कारण ब्रज तक झोड़ने को तैयार हैं । अपनी उसी की दशा तराब होते देख कर चाहती हैं कि कृष्ण के हाथ से कोई जा कर इस ‘बैरिन बांसुरिया’ को त्याग दे ।^१ वंशी के साथ कृष्ण को देख कर गोपियों के क्रोध और ईर्ष्या का ठिकाना नहीं रहता । वे अपने बापे में नहीं रहतीं और कह उठती हैं -

राधिका जी है तो जीहैं अब न तो पाहैं हलाहल नंद के द्वारे ।^२

यहां गोपियों की जातुरता बड़ी स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी है । वंशंका भाव के भी दर्शन होते हैं । एक गोपी अपनी उसी एवं कृष्ण मिलन में सहायता दे रही है किन्तु चिन्तित है कि कहीं उनके प्रेम का भेद न खुल जाय । उसको अपनी उसी की बदनामी का डर है । उसे यह वंशंका बनी रहती है कि ऐसा न हो कि गोपी कृष्ण के प्रेम सम्बन्ध प्रकट हो जायं । चन्द्रमा को हाथों से कब तक क्षिपाया जा सकता है ? किन्तु कृष्ण और उनकी प्रेमिका अपने में मग्न हैं । उनको कैो समझाया जाय । इन भावनाओं का मानसिक द्रन्द दर्शनीय है -

रही बाज काल्ह सब लौक लाज त्यागि दीऊ

सीसे हैं अबे विधि सनेह तरसाइबो ।

यह रसतानि दिना है में बात फैलि जैहै,

कहां लीं सयानी चन्दा हाथन क्षिपाइबो ।^४

रसतान के काव्य में पञ्चाक्षर का निरूपण भी बहुत सुन्दर तथा भावपूर्ण

१. सु० १०, ६४

२. सु० १०, ६५

३. सु० १०, ६८

४. सु० १० १००

है । गोपी कहती है कि मुझे यह पक्तावा हो रहा है कि मैं बदनाम भी हुई
किन्तु सानिध्य के सुख की प्राप्ति भी न हो सकी -

नीकें निहारि के देखे न जांखिन, हों कबहुं भी नैन न जागी ।

मौ पक्ष्तानो यहै जु तखी कि कलंक लग्यो पर अंक न लागी ।^१

गोपियों की विवशता एवं बैनी का भी बड़ा सुन्दर चित्रण मिलता है ।
मुरली की ध्वनि सुनकर वे विवश हो उठती हैं, कानों में उंगली दे लेती हैं । कृष्ण
की मुस्कान का भार संभारने में असमर्थ हो कह उठती हैं -

माह बा सुख की मुत्कानि समहारी न जैहे न जैहे न जैहे ।^२

न जैहे की पुनरावृत्ति के द्वारा भाव की प्रबलता दर्शनीय है । उसका पाठक
पर अमिट प्रभाव पड़ता है ।

समस्त ब्रज बालावर्ग ने लोक मर्यादा के पालन का निश्चय किया किन्तु
गोपियाँ अपने प्रण पर स्थिर न रह सकीं । इस विवशता भाव की भी सुन्दर
अभिव्यक्ति हुई है -

अथपि राखन कीं कुलकानि सबै ब्रज बालन प्रान पच्यौरी ।

तथपि वा रसखानि के हाथ बिकानि को अंत लग्यो पै लग्यो री।^३

ज्ञोम के भी दर्शन रसखान काव्य में अनेक पद्यों में होते हैं । गोपियों को
कुलकानि न निभने का ज्ञोम हो रहा है -

‘कौ निभै रसखानि कहीं मुख चूमत घातन बात बनाइके ।^४

गोपी कृष्ण के रूप से प्रभावित हो चुकी है । ब्रज में सब उसके प्रेम की
दीवानगी को जान गये हैं । वह अपनी दशा पर ज्ञोम प्रकट करते हुए कहती है -

कैसी करौं जित जाउं अली सब बोलि उठै यह बाबरी जाई ।^५

१. सु० १०, १३८

२. सु० १०, ६१

३. सु० १० ३५

४. सु० १०, ३६

५. सु० १०, ८२

यहाँ रसखान^१ गौपी की मनोभावना एवं आन्तरिक द्वन्द्व का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि रसखान अन्तःवृत्ति निरूपण में सफल हुए हैं। चन्द्रशेखर पांडे जी ने न जाने किस बाधारे पर रसखान के विषय में यह कह डाला - 'ये अन्तःवृत्तियों की ज्ञान बीज तथा उसके चित्रण में नहीं लगे। इन्होंने प्रत्यक्षा दर्शित होने वाले बाह्य रूपों के चित्रण में ही अपनी कुशलता दिखाई।'^२ डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित का कथन है कि रसखान के प्रेमी हृदय तथा भक्ति ने उन्हें मानव जगत् की अन्तरप्रकृति के सूक्ष्म अवलोकन की अच्छी शक्ति प्रदान की। इस कारण रसखान के काव्य में बाह्य प्रकृति का अभाव है। उनके काव्य में मानव की अन्तरप्रकृति का सुन्दर चित्रण है।^३

इन दोनों विद्वानों का मत एकांगी है। वास्तविकता यह है कि रसखान अन्तःवृत्तियों और बाह्य वृत्तियों दोनों के सफल चित्रण और निरूपण में सिद्धहस्त हैं। एक ओर कृष्ण की अलौकिक रूप कृपा उनके बाह्यार्थ विधान का आलम्बन बनी तो दूसरी ओर गौपियों की गुढातिगुढ अन्तर्वृत्तियों का अवगाहन करने में भी उनकी वृत्ति खूब रही।^३

१. रसखान और उनका काव्य, पृ० ४४

२. बीणा सितम्बर अक्टूबर १९४६

३. रसखान जीवन और कृतित्व, पृ० १८०

(५)

प्रकृति-चित्रण

मनसु और उसको धारण करने वाले शरीर को तथा मनुष्य के निर्माण भाग को छोड़ कर अन्य समस्त चेतन और अचेतन दृष्टि-प्रसार को प्रकृति स्वीकार किया जाता है ।^१ व्यावहारिक रूप से तो जितनी मानवैतर दृष्टि है उसको हम प्रकृति कहते हैं किन्तु दार्शनिक दृष्टि से हमारा शरीर और मन उसकी ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सूक्ष्म तत्त्व प्रकृति के अन्तर्भूत हैं ।^२ काव्य में प्रकृति चित्रण हर काल में मिलता है । संस्कृत काव्य से लेकर आधुनिक काव्य तक में प्रकृति के दर्शन होते हैं । यह स्वाभाविक भी है । मानव अध्ययन भले ही काव्य का मुख्य विषय माना गया हो किन्तु प्रकृति के साहचर्य बिना मानव की चेष्टारं और मनोदशारं भाव-हीन सी प्रतीत होती है । यमुना तट, वंशीवट, कदम्ब के वृक्ष और वृज के बन बाग-तड़ाग बिना नट नागर कृष्ण की समस्त लीलाएं शून्य एवं नीरस सी प्रतीत होती हैं । अतः प्रकृति के अभाव में किसी सुन्दर काव्य की कल्पना कुछ अधूरी सी ही प्रतीत होती है । काव्य में प्रकृति चित्रण भिन्न भिन्न रूपों में मिलता है जिनमें से मुख्य रूप ये हैं -

- १- बालम्बन-रूप में
- २- उद्दीपन-रूप में
- ३- अहंकार-रूप में
- ४- मानवीकरण के रूप में
- ५- उपदेश और नीति के माध्यम रूप में
- ६- प्रकृति में विशिष्ट तत्त्व का आभास -

रत्नान के काव्य में प्रकृति की कृता तीन रूपों में दृष्टिगोचर होती है । कृष्ण की विहार-भूमि वृन्दावन, करील कुंज, कालिन्दी कूल आदि का विशद वर्णन प्रकृति सहचरी के रूप में मिलता है । संयोग और वियोग दोनों पक्षों में प्रकृति मानव भावनाओं की पौषिका रही है । कृष्ण-गोपिका मिलन और विरह वर्णन

१. देखिये प्रकृति और काव्य पृ० ४

२. देखिये हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण , पृ० ६

में रसखान ने प्रकृति को उद्दीप्त विभावों के वन्तर्गत दिखाया है। साथ ही अपने वाराध्य के कौमल सौन्दर्यमय पक्ष के निरूपण के लिए अलंकार रूप में प्रकृति को अपनाया है।

प्रकृति पृष्ठभूमि के रूप में

रसखान के उपास्य कृष्ण ब्रज-भूमि में अवतरित हुए एवं उनका व्यक्तित्व प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में विकसित हुआ। प्रकृति का उन्मुक्त क्षेत्र ही उनकी बाल-लीलाओं और किशोर-केलियों का रंगमंच बना। वन में गोचारण करते हुए उन्होंने यहीं विकट वसुरों का वध किया। राधा और कृष्ण के प्रथम मिलन की गवाही वाज भी ब्रज के कुंज दे रहे हैं। प्रेमालाप और रति झीझार वाज भी ब्रज की बाँसों में घूम रही हैं। यमुना का पवित्र प्रवाह, कदम्ब-वृक्षों का कम्पीय-कानन, करील की कुँजें, कालिन्दी के कूल में फैले हुए लताड्रुम अपनी रमणीय छटा द्वारा कवियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। फिर रसखान का कृष्ण के से भावनात्मक सम्बन्ध होने के कारण उन्हें उसमें अपूर्व सौन्दर्य और चेतना के दर्शन होते हैं। प्रकृति के इन उपकरणों के बिना गिरिधर-गान की कल्पना कुछ अधूरी सी प्रतीत होती है।

रसखान ने प्रकृति का वर्णन पृष्ठभूमि के रूप में किया है। प्रकृति का छुटा प्रांगण उन्हें इतना भाया कि उस पर कौटिक कलघात के घाम न्यूँहावर^१ करने को तैयार हो गये। केवल इतना ही नहीं वे तो पक्षी, पशु और पत्थर तक बनने के लिए तैयार थे। यदि उन्हें कालिन्दी-कूल कदम्ब की डालियों पर नन्द की धेनुओं के मध्य और गोवर्द्धन पर्वत के अंचल में बसेरा लेने, चरने तथा पड़े रखने की छूट दे दी जाती।^२ रसखान की इस भावना के सम्बन्ध में कहा गया है—'रसखान ब्रज भूमि के

१. कौटिक ये कलघात के घाम करील की कुंज ऊपर वारों ।। सु० र०, ३

२. मानुष हों तो वही रसखानि बसों ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।

जो पशु हों तो कहा बसु मेरो चरों नित नंद की धेनु संभारन ।

पावन हों तो वही गिरि को जो घायी कर इत्र पुरन्दर धारन ।

जो लग्न हों तो बसेरो करों मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन । सु० र०, ४

प्रति अत्यधिक वात्मीयता प्रकट करते हैं। अपने प्रिय को लेकर रसखान की यह जाकांजा ब्रज के गिरि, धेनु, खग और कदम्ब से निकट सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जाकुल हैं।^१

रसखान ने प्रकृति के साहचर्य में विचरण करने वाले 'नंद को शोहरा'^२ गौपाल का ही गुणगान किया है, गीता के उपदेशक योगिराज तथा महाभारत के योद्धा कृष्ण का नहीं। यह उचित ही है कि एक प्रेमी को कृष्ण का बालरूप तथा युवा रूप ही प्रिय हो सकता है।

रसखान ने कृष्ण को प्रकृति से भिन्न नहीं देखा। वे उनकी घोर समीर कालिन्दी के तीर खड़े हुए मिलते हैं^३ या यमुना से जल लेने के लिए जाती हुई गौपियों को मार्ग में धेरते हुए दिखाई पड़ते हैं -

'जात हुती जमुना जल की मनमोहन धेरि लयी मग जाहकें।'^४

केवल इतना ही नहीं यमुना में स्नान के हेतु गई हुई गौपियों के वस्त्र लेकर वे कदंब के वृक्ष पर चढ़ते हुए पाये जाते हैं^५ कृष्ण की अधिकांश लीलारं कालिन्दी के कूल पर ही होती हैं। ब्रज की करील कुंजों के प्रति रसखान का विशेष मोह है। उनके कृष्ण का विचरण कुंजों की छाया में ही होता है। वे वहीं धेनु चराते हुए बांसुरी बजाते हुए, गोधन गाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।^६ उनकी समस्त लीलारं कुंजों के मध्य ही स्थान पाती हैं। वे कुंजों में से मुसकाते हुए निकलते हैं।^७ रसखान

१. प्रकृति और काव्य, पृष्ठ २७४-२७५

२. 'जा दिन तैं वह नंद को शोहरा या बन धेनु चराई गयी है।' सु० १०, २५

३. घोर समीर कालिन्दी के तीर खरूयी रहै आजु ही डीठि पुरयी है। सु० १०, २२

४. सु० १०, ३६

५. 'एक समे जमुना जल में स्नान मज्जन हेत धरि ब्रज गोरी।

त्यों रसखानि गयी मनमोहन लेकर चोर कदंब की शोरी ॥

सु० १०, २७

६. सु० १०, २३

७. सु० १०, २८, २९, ३०, ३१

को कृष्ण का यह रूप बहुत प्रिय है । इसका वर्णन उन्होंने अनेक पथों में किया है ।
 वहीं वे गोपियों के साथ को हरते हैं , वहीं उनके साथ रास रचाते हैं-

देखि कै रास महावन को एक गोपबधु कह्यौ एक बधु पर ।^१

+ + +

बाज भट मुरली-बट के तट नंद के तांबरे रास रच्यौ री ।^२

कृष्ण की बांसुरी की सुरीली तान भी कुंजों के ही मध्य में सुनाई पड़ती
 है -

कालिह पुर्यौ मुरली-धुनि में रसखानि जू कानन नाम हमारो ।^३

ग्वालों के साथ बंसी बजाते हुए और गायें चराते हुए कृष्ण प्रायः कुंजों
 के मध्य ही दृष्टिगोचर होते हैं , वन में ही राधा से उनकी भेंट होती है -

बाज बचानक राधिका रूपनिधान तौ भेंट भई बन माहीं ।^४

ब्रज की प्रकृति के बिना कृष्ण गोपियों के प्रेम-व्यापारों का वर्णन नहीं
 किया जा सकता । कृष्ण लीला के साथ-साथ प्रकृति के रूपों को रसखान भुला न
 सके । कृष्ण के जीवन के साथ यमुना, कदम्ब, कुंज आदि प्रकृति के न जाने कितने
 रूप आके हैं । भावानुकूल रसखान ने प्रकृति के कोमल स्वरूप को ही ग्रहण किया है
 जो लीला पुरुषोत्तम की प्रेम-लीलाओं के अनुकूल ही है ।

प्रकृति उदीपन रूप में

भारतीय काव्य-शास्त्र में प्रकृति को मान्यता उदीपन विभाव के रूप में
 स्वीकार की गई है । जब किसी स्थायी भाव का आलम्बन प्रकृति न हो कर अन्य
 कोई प्रत्यक्ष आलम्बन होता है, उस समय प्रकृति भावों को उदीप्त करने के कारण
 उदीपन विभाव के अन्तर्गत आती है । प्रकृति और मनुष्य का सम्बन्ध स्थायी होने

१. सु० १०, ३४

२. सु० १०, ३५

३. सु० १०, ५५

४. सु० १०, १८४

के कारण मन की किसी भी दशा में प्रकृति उसे प्रभावित करती है। प्राकृतिक दृश्य संयोग वियोग में वाक्य के हृदय में जगै हुए भावों को तीव्रतर कर देते हैं। सम्भवतः यही कारण है कि कवियों ने क प्रकृति के उद्दीपन पदा को अधिक महत्त्व दिया है।

रसज्ञान ने काव्य-रचना करते समय काव्य शास्त्र की दृष्टि में नहीं रखा। काव्य के भावुक गायक के लिए काव्य शास्त्र के नियमों का पालन आवश्यक नहीं था। रसज्ञान का उद्देश्य प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों का चित्रण करना नहीं था। उन्होंने तो प्रेम में मस्त हो कर कृष्ण का लीला-गान किया। ये लीलारं प्रकृति के रमणीय द्रोत्र में पल्लवित हुई। इसलिए स्वभाविक रूप से ही कहीं कहीं प्रकृति ने उद्दीपन का कार्य किया है।

कृष्ण ने सम्बन्ध होने के कारण गोपियाँ कृष्ण को बन-बाग तड़ागनि कुंज गली^१ के मध्य ही देख कर उस का अनुभव करती हैं। कृष्ण का रूप सौन्दर्य प्रकृति के सान्निध्य के कारण और भी प्रभावोत्पादक प्रतीत होता है -

कैसे मनोहर बानक मोहन सोहन सुंदर काम लें जाली ।

जाहि बिलोक्त लाज तजो कुल छूटी है नैमनि की चर चाली ।

अधरा मुस्कान तरंग लखै रसज्ञानि पुहार महाद्वि जाली ।

कुंजगली मथि मोहन सोहन देख्यो सबो वह रूप रसाली ॥^२

यहां कुंज गली उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत है। कृष्ण के समीप होने के कारण जेठ की झुलसा देने वाली धूप भी सुखदायी प्रतीत होती है। वे कह उठती हैं -

जेठ की घाम भई सुखधाम अनंद ही जंग ही जंग समाहीं ।^३

संयोग के समय प्रकृति उद्दीपन के कर्तव्य को उचित रूप से पूरा करती है। प्रिय की निकटता के कारण दाहक वस्तुओं का प्रभाव भी शीतल हो गया। बसन्त वर्णन भी उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ही है। कृष्ण संयोग के कारण यह कितना सुखदायी

१. सु० १०, ८८

२. सु० १०, १२८

३. सु० १०, १८५

प्रतीत हो रहा है -

उहहही बैरी मंजुहार सहकार की पै,
 बहचही चुहल बहंकित जलीन की ।
 उहहही लीनी लता लपटी तमाउन पै,
 कहकही तापै कौकिला की काकलीन की ।
 तहहही करि रसखानि के मिलन हैत,
 वहवही बानि तजि मानव मलीन की ।
 महमही मंद मंद मारुत मिलनि तैसी
 गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की ।^६

वियोग की दशा में प्रकृति के समस्त उपकरण वियोगमग्न गोपी के ताप को बढ़ाने वाले हैं । फूलों के बन में फूलने से, पौधों के गुंजारने से, बसन्त में कौकिल की किलकार सुन कर सबके कन्त विदेश से लौट जाते हैं । वे अपने प्रिय से बागृह करती हैं कि तुम इतने कठोर क्यों हो गये कि मेरी पीर का तुम्हें अनुभव नहीं होता । कौकिल की कूक सुन कर वियोग-ताप और बढ़ जाता है । हृदय में हूक ली होने लगती है -

‘फूलत फूल सबे बन बागन बोलत भौर बसंत के आवत ।
 कौयल की किलकार सुनै सब कंत विदेशन ते सब धावत ॥
 ऐसे कठोर महा रसखान जु नैकहु मोरी ये पीर न पावत ।
 हूक ली सालत है हिय में जब बैरिन कौयल कूक सुनावत ॥’^७

प्रिय के साथ उदीपन उपकरण भावों का उत्कर्ष कर सुखदायी बनते हैं किन्तु वियोग में हृदय भार का अनुभव करता हुआ व्यग्र हो उठता है । उसे संयोग-दशा के सुखदायी पदार्थ दाहक प्रतीत होते हैं । बसन्त में कृष्ण के समीप होने के कारण बहच।हट लहलाहट जागरू थी, किन्तु कृष्ण के दूर होने पर कौकिल की कूक भी दुःखदायी प्रतीत होने लगी । कौकिल के लिर बैरिन विशेषण का प्रयोग किया

१. सु० १०, १६६

२. पद ३४, भवानीशंकर याज्ञिक जी से प्राप्त, हस्त लिखित याज्ञिक संग्रह, बस्ता नं० २२, ना० ५० तथा काशी ।

गया । इसी प्रकार का भाव बुरदास में भी मिलता है -

बिन गोपाल बैरिन मई कुंजै ।

तब ये लता लगति बति सीतल जब मई विषम ज्वाल की पुंजै।^१

रसखान ने प्रकृति वर्णन उद्दीपन रूप में कम किया है । उनका उद्देश्य प्रकृति चित्रण नहीं था । फिर भी प्रकृति के उद्दीपन-रूप-वर्णन में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है । वे मानव तथा प्रकृति के बीच सुन्दरता और सहृदयता से कोमल भावनाओं का प्रदर्शन करने में सफल हुए हैं ।

प्रकृति वर्णन रूप में

उपमान-व्यन करते समय सभी कवियों ने प्रकृति के असीम भंडार से लान उठाया है । यह स्वाभाविक भी है । सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, मेघ, बांधी, समुद्र, वन, पर्वत, लता, वृक्षा, पुष्प, फूल आदि हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं । इसीलिए किसी वस्तु का वर्णन करते समय सादृश्यों के लिए प्रकृति ही हमारी सहायिका हुई है ।

रसखान ने वर्णन रूप में प्रकृति का रमणीय चित्रण किया है । उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं बहुत ही सार्थक एवं सुन्दर हैं । अधिकांश उपमान काव्य-परम्परा में बंधे हुए हैं या कवि-समय सिद्ध हैं । बुरदास की भांति उन्होंने प्रकृति के गिने चुने स्वरूपों का वर्णन बार बार किया है, किन्तु बड़े स्वाभाविक ढंग से । प्रकृति का चित्रण अप्रस्तुत रूप में भी किया गया है । मुख के लिए प्रतिद्वि उपमान चन्द्रमा^२ और कमल नयनों के लिए मृग, खंजन, मीन और सरोज^३, पीताम्बर के लिए दामिनी^४ आनन्द्य के लिए धन, चन्द्रमा, हास्या के लिए सुधानिधि^५ आदि उपमानों का

१. मुरगीत-वार, पद ८५

२. सु० १०, ५३

३. सु० १०, ७२, ५३

४. सु० १०, ६७

५. सु० १०, १३३

बहारा लिया गया है ।

रसखान ने बांगिक सौन्दर्य के निरूपण में उपमान योजना करते समय समस्त प्राकृतिक उपमानों का बहारा लिया है । शरीर की उपमा बाग से देते हुए कहते हैं-

‘बागन काहे को जाबो पिया घर बैठे ही बाग लगाय दिखाऊं
रही बनार हो मीरि रही, बहियां दोउ चपे की डार नवांऊ ।
हातिन में रसके मियुवा जरु घुंघट खोलि के दास चखाऊं ।
ढांगन के रसके चसके रति फूलनि की रसखानि लुटाऊं ॥’^१

दानलीला वर्णन में गोपी के डरने तथा कांपने का वर्णन बड़ा स्वाभाविक तथा चमत्कारिक है । यहाँ रसखान के सूक्ष्म निरीक्षण के दर्शन होते हैं -

पहले दधि लै गई गोकुल में चस चारि पर नटनागर पै ।
रसखानि करी उनि में भई कहैं दान दे दान खरे जरपै ।
नख तैं सिख नील निचौल लपेटे खली उम मांति कपै डरपै ।
मनौ दामिनी सावन के घन में निकौ नहीं भीतर ही तरपै ॥’^२

नील वस्त्र धारण किये गोपी इस प्रकार डर कर कांप रही है जैसे सावन की चपला मैघों के भीतर ही भीतर चमकती है और बाहर नहीं निकलती । रसखान ने पीताम्बर की उपमा दामिनि की दुति से दी है -

रसखानि लखैं तन पीत पटा तत दामिनि की दुति लाजति है ^३

रसखान ने दामिनी का उपमान रूप में प्रयोग कई स्थलों पर किया है । कृष्ण के रवि कुंडल दामिनी के समान दमकते हैं ।^४ फाग खेलती हुई, गुलाब उड़ाती हुई ब्रज बालाजों की उपमा भी सावन की चपला से दी है -

रसखानि गुलाब की धुंधर में ब्रज बालन की दुति यों दमकैं ।
मनौ सावन सांक ललाई के सांक चहुं दिशि ते चपला चमकैं ॥’^५

१. सु० १०, १२२

२. सु० १०, ३६

३. सु० १०, ६७

४. सु० १०, ६४

५. सु० १० १६८

रसखान प्रेम की उपमा कमल तंतु की क्षीणता से दैते हुए कहते हैं -

‘कमल तंतु तो हीन बरु कठिन लड़ग की धार ।

बति बुझी टेंढी बहुरि , प्रेम पंथ अनिवार ॥’^१

रसखान के काव्य में प्रतीप, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक वादि अलंकारों में सर्वत्र प्रकृति को ही आधार बनाया गया है । प्रतीप के आधार पर उन्होंने प्रकृति को लजाया भी है -

मनो हं दु बधून लजावन को सब जगनिन कादि धरी गन-सी ।^२

उत्प्रेक्षा का आधार भी प्रकृति को ही बनाया है -

सागर को चलिता जिमि धावै न रीकी रहै कुल को पुल दूट्यो ।

मच मनो मन जंग फिरै रसखानि बरुप सुधारस घूट्यो ।^३

प्रकृति के आधार पर रसखान ने उपमेय को अधिक सुन्दर दिखा कर व्यतिरेक की व्यंजना की है -

बाली उला घन सी बति सुन्दर तैसी लो पियरो उपरेना ।^४

रसखान का ऋतु वर्णन

रसखान ने काव्य परम्परा से आई हुई ऋतु वर्णन की परिपाटी को नहीं अपनाया । इसलिए उनके काव्य में बारहमासा या षड्ऋतु वर्णन के दर्शन नहीं होते। एक अवसर पर जैठ की घाम की चर्चा की है -

जैठ की घाम मई सुखदाम अनंद ही जंग ही जंग समाहीं ।^५

फागुन लगने का वर्णन भी एक पद में किया है -

‘फागुन लाग्यो सखी जब तैं ब्रज मंडल घूम मच्यो है ।’^६

१. प्र० वा०, ६

२. पु० र०, ४७

३. पु० र०, १७८

४. पु० र०, १६२

५. पु० र०, १८५

६. पु० र०, १६२

रसखान ने बसन्त का वर्णन भी बहुत सुन्दर किया है। बसन्त का रमणीय दृश्य हृदय पटल पर अंकित हो जाता है -

ढहलही बैरी मंजुहार सहकार की पै,

बहलही चुल्ल बहंकित जलीन की ।

लहलही लौनी उता उपटी तमालन पै,

कहलही तापै कौकिला का काकलीन की ।

तहतही करि रसखानि के मिलन हैत,

बहलही बानि तजि मानस मलीन की ।

महमही मंद मंद मारुत मिलनि तैती,

गहलही खिलनी गुलाब की कलीन की ।

रसखान का उद्देश्य प्रकृति वर्णन नहीं था फिर भी उनके काव्य में जहाँ कहीं प्रकृति का निरूपण किया गया है वहाँ बहुत ही रमणीय दृश्य उपस्थित किये गये हैं। वास्तविकता तो यह है कि रसखान ने अपने आराध्य देव कृष्ण को प्रकृति के साहचर्य में प्रकृति के उपमानों से ही उजा कर दर्शाया है।

निष्कर्ष

अतः रसखान के काव्य के भाव पदा का अनुशीलन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वे मुख्यतया शृंगारी कवि हैं। यद्यपि उन्होंने शृंगार के दोनों ही पक्षों संयोग और विप्रलम्भ का चित्रण किया है, तथापि संयोग को ही विशेष महत्त्व दिया है। पूर्वराग, मान और प्रवास के रसाय ही उदाहरण उपलब्ध हैं। भक्त होते हुए भी उन्होंने भक्ति रस की अपेक्षा शृंगार रस के वर्णन में अधिक रुचि दिखाई। इसका प्रधान कारण कृष्ण भक्ति शास्त्र में वर्णित कृष्ण का सौन्दर्यमय मधुर रूप है। इसी कारण वत्सल भक्ति रस अथवा शुद्ध वात्सल्य रस को भी अधिक व्यंजना नहीं हुई। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने आलम्बन कृष्ण और आश्रय गोपियों के चित्रण पर ही विशेष ध्यान दिया है। इस वर्णन में उन्होंने उन्हीं प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक पदार्थों का निरूपण किया है जिनका कृष्ण विषयक रति से साक्षात् सम्बन्ध है। अतः उनका प्रकृति वर्णन व्यापक और वैविध्यपूर्ण

नहीं है । यमुना करील कुंज आदि में ही परि-सीमित है । वह भी केवल उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है । परन्तु मात्रा और विस्तार की दृष्टि से अधिक न होने के पर भी उनकी कविता का भाव-पटा काव्य में सौन्दर्य से शोभित है ।

पंचम अध्याय

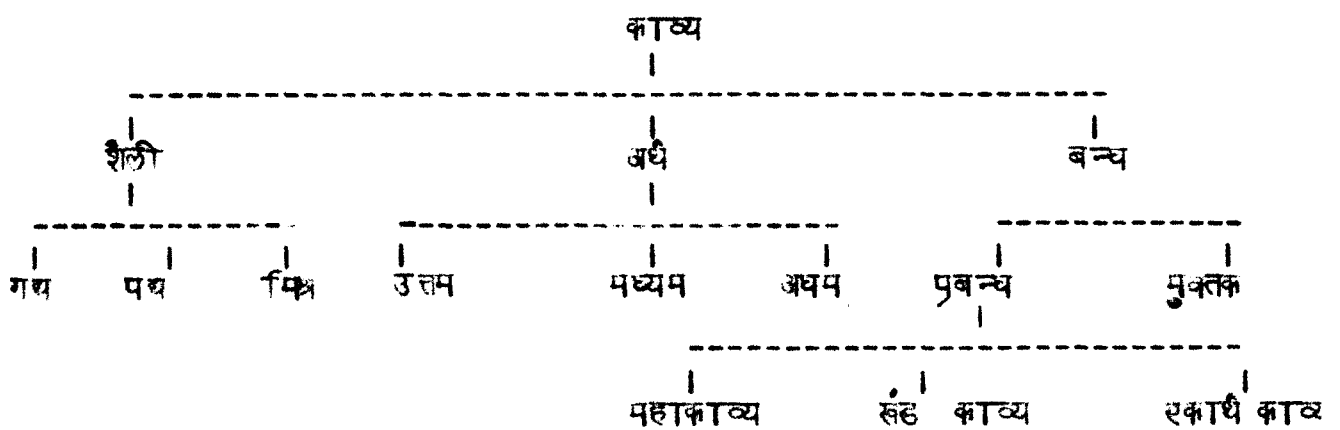
रसज्ञान के काव्य का कला-पदा

काव्य रूप

काव्य के भेद के सम्बन्ध में विद्वानों के अपने अपने दृष्टिकोण हैं । पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तीन प्रकार से काव्य के भेद किये हैं - शैली की दृष्टि से, बंध की दृष्टि से और बन्ध की दृष्टि से । शैली की दृष्टि से काव्य के तीन भेद होंगे- पद्य, गद्य और मिश्र । बंध की दृष्टि से भी काव्य के तीन भेद किये गये हैं - उत्तम, मध्यम और अधम या सामान्य । बन्ध की दृष्टि से दो प्रकार की रचनाएं मानी गई हैं - एक प्रबन्ध , दूसरी निबन्ध । प्रबन्ध-काव्य के तीन प्रकार देखे जाते हैं - महाकाव्य, खंड काव्य और एकांकी काव्य ।^१

दृश्यता की दृष्टि से काव्य के दो भेद माने गये हैं - दृश्य और श्रव्य । दृश्य काव्य में रूपक आते हैं । श्रव्य के तीन भेद माने गये हैं - पद्य, गद्य और मिश्र । पद्य के दो भेद किये गये हैं - प्रबन्ध और मुक्तक । प्रबन्ध के पुनः दो भेद हैं - महाकाव्य और

१. वाङ्. मय-विमर्श , पृ० ६



संज्ञा काव्य । मुक्तक के भी दो भेद - पाठ्य और प्रगीत हैं ।^१

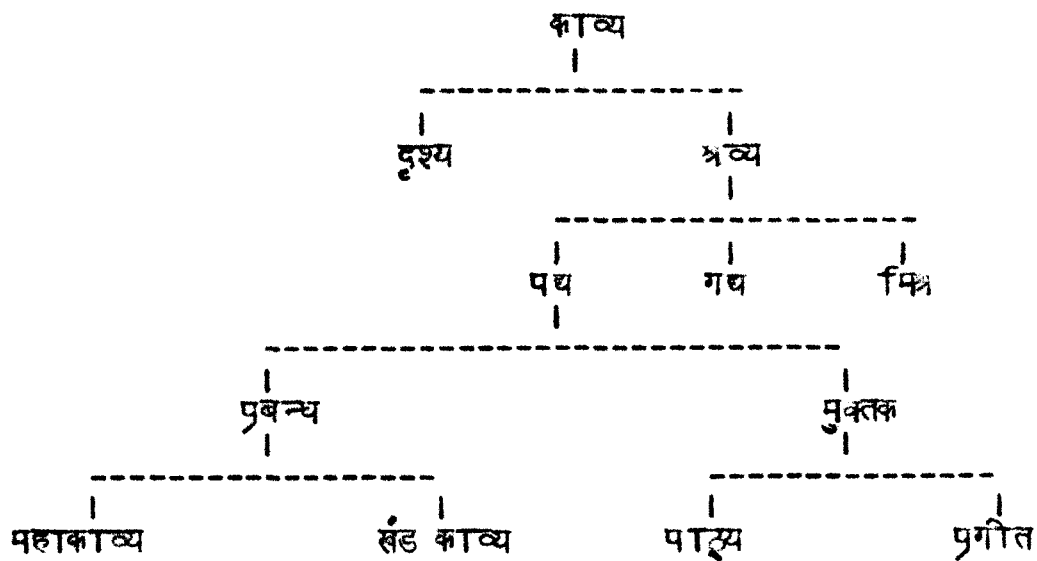
प्रस्तुत प्रसंग में काव्य से हमारा प्रयोजन श्रव्य काव्य से है । आचार्य विश्वनाथ ने श्रव्य काव्य के पञ्चम्य स्वरूप को लिया है । उनके अनुसार पद्यात्मक काव्य वह है जिसके पद कन्दोबद्ध हुआ करते हैं । यह पद्यात्मक काव्य भी कई प्रकार का हुआ करता है , जैसे - १. मुक्तक - जिसके पद्य (अपने अर्थ में) अन्य किसी पद्य की आकांक्षा से मुक्त अथवा स्वतन्त्र हुआ करते हैं, २. युग्मक - जिसमें दो पद्यों की रचना पर्याप्त मानी जाया करती है , ३. सांदानितक - रचना तीन पद्यों में पूर्ण हो जाया करती है, ४. कलापक - जिसकी रूप रेखा पद्य-चतुष्क में पूर्ण हो जाती है, ५. कुलक - जिसमें पाँच पद्यों का एक कुल दिखाई दिया करता है ।^२

संक्षेप में काव्य के दो भेद हैं - प्रबन्ध और मुक्तक , मुक्तक भी दो प्रकार के हैं - गीत और अगीत ।

प्रबन्ध काव्य :-

जिस रचना में कोई कथा क्रमबद्ध रूप से कही जाती है वह 'प्रबन्ध काव्य'

१. काव्य के रूप , पृ० २१



२. कन्दोबद्ध पदं पद्यं तेन मुक्तं न मुक्तकम् ।

द्वाभ्यां तु युग्मकं सांदानितकं त्रिमिरिष्यते ॥

कलापकं चतुर्मिश्रं पंचमिः कुलकं मतम् ॥

- साहित्य दर्पण, पृ० ५४७

कहलाता है। प्रबन्ध काव्य तीन प्रकार का होता है। एक तो ऐसी रचना जिसमें पूर्ण जीवन वृत्त विस्तार के साथ वर्णित होता है। ऐसी रचना को 'महाकाव्य' कहते हैं। जिस रचना में संक्षिप्त जीवन महाकाव्य की ही शैली में वर्णित होता है, ऐसी रचना को 'संक्षिप्त काव्य' कहते हैं। हिन्दी में कुछ ऐसी रचनाएँ भी देखी जाती हैं, जिनमें जीवन वृत्त तो पूर्ण लिया जाता है, किन्तु महाकाव्य की भाँति कथा-विस्तार नहीं दिखाई देता। ऐसी रचनाओं में जीवन का कोई एक पक्ष विस्तार के साथ प्रदर्शित करने का प्रयत्न देखा जाता है।

एकार्थ की ही अभिव्यक्ति के कारण ऐसी रचनाएँ महाकाव्य और संक्षिप्त काव्य के बीच की रचनाएँ होती हैं। इन्हें 'एकार्थ' या केवल 'काव्य' कहना चाहिये। रसखान ने इस प्रकार की कोई रचना नहीं की।

मुक्तक

मुक्तक काव्य तारतम्य के बन्धन से मुक्त होने के कारण (मुक्तेन मुक्तकम्) मुक्तक कहलाता है और उसका प्रत्येक पद स्वतः पूर्ण होता है। 'मुक्तक' वह स्वच्छन्द रचना है जिसके रस का उद्भेद करने के लिए अनुबन्ध की आवश्यकता नहीं।^१ वास्तव में मुक्तक काव्य का महत्वपूर्ण रूप है, जिसमें काव्यकार प्रत्येक क्षण में ऐसे स्वतन्त्र भावों की सृष्टि करता है, जो अपने आप में पूर्ण होते हैं। मुक्तक काव्य के प्रणेता को अपने भावों को व्यक्त करने के लिए अन्य सहायक शब्दों की आवश्यकता नहीं होती। प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा मुक्तक रचना के लिए कथा की आवश्यकता अधिक होती है, क्योंकि काव्य रूप की दृष्टि से मुक्तक में न तो किसी वस्तु का वर्णन ही होता है और न वह गेय है। यह जीवन के किसी एक पक्ष का अथवा किसी एक दृश्य का या प्रकृति के किसी पक्ष विशेष का चित्र मात्र होता है। इसी से काव्यकार को प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा सफल मुक्तकों की सृष्टि के लिए अधिक कौशल की आवश्यकता पड़ती है। पूर्वापर प्रसंगों की परवाह किये बिना सूक्ष्म एवं मार्मिक संक्षिप्त दृश्य अथवा अनुभूति को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने वाली

उस रचना को मुक्तक काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है - जिसमें न तो कथा का व्यापक प्रवाह रहता है और न ही उसमें क्रमानुसार किसी कथा को सजाकर वर्णन करने का आग्रह होता है, बल्कि मुक्तक काव्य में सूक्ष्मातिसूक्ष्म मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति होती है जो स्वयं में पूर्ण तथा अपेक्षाकृत लघु रचना होती है।

गीत -

रागरागिनी के अनुकूल जिन मुक्त पदों की रचना होती है वे विशेषतः गेय होने के कारण 'गीत' कहलाते हैं। गीतों का प्रचलन बहुत प्राचीन समय से है। इनके दो प्रवाह स्पष्ट दिखाई देते हैं - एक लौकिक दूसरा साहित्यिक। लौकिक 'गीत' के मुक्तक हैं जिनमें साहित्य के अंगों का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता, जो स्वच्छंद रूप से किसी भाव या स्थिति को व्यक्त करने में प्रवृत्त दिखाई देते हैं। साहित्य की रुढ़ियों के अनुकूल जो गीतों में हैं जो कवियों द्वारा निर्मित हुए हैं, वे साहित्यिक गीत हैं। गीत या प्रगीत काव्य में कवि जो कुछ कहता है अपने निजी दृष्टिकोण से कहता है। उसमें निजीपन के साथ रागात्मकता रहती है। यह रागात्मकता आत्म निवेदन के रूप में प्रकट होती है। महादेवी वर्मा ने गीत की परिभाषा देते हुए कहा - 'साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके'।^१ यह बात ध्यान देने योग्य है कि भक्तिकालीन अधिकांश कृष्ण भक्त कवियों की सामान्य गीत-रचना - प्रकृति के विरुद्ध रसखान में कवित्त सवैया में रचना की।

रसखान द्वारा प्रयुक्त मुक्तक

रसखान का उद्देश्य किसी संक्षिप्त काव्य या महाकाव्य की रचना न था। प्रेमीप्रेम के इस गायक कवि को तो अपने मार्मिक उद्गारों की अभिव्यक्ति करनी थी। उसके लिए मुक्तक से अच्छा माध्यम और क्या हो सकता था। वाचार्थ शुक्ल के शब्दों में यदि प्रबन्ध काव्य विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन का या उसके किसी अंग का प्रदर्शन

नहीं होता बल्कि कोई एक रमणीय संह दृश्य सत्सा सामने ला दिया जाता है।^१ वास्तव में रसखान ने अपने कोमल मार्मिक भावों-रूपी पुष्पों से मुक्तक-रूपी गुलदस्ते को सजा दिया।

मुक्तक के प्रकार

विषय के आधार पर मुक्तकों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है - शृंगार परक, वीर रसात्मक तथा नीति परक। स्वल्प के आधार पर मुक्तक के गीत, प्रबन्ध मुक्तक, विषय-प्रधान, संघात मुक्तक, एकांश प्रबन्ध तथा मुक्तक प्रबन्ध आदि भेद किये जा सकते हैं।^२ रसखान ने शृंगार मुक्तक तथा स्वतन्त्र मुक्तक के रूप में ही काव्य रचना की।

शृंगार मुक्तक

शृंगार परक मुक्तकों के अन्तर्गत ऐहिकता परक रचनाएं आती हैं जिनमें अधिकतर नायक नायिका की शृंगारी चैष्टाएं, भाव मंगिमा तथा संकेत स्थलों का सरस वर्णन होता है। मिलन काल की मधुर क्रीड़ा तथा वियोग के चाणों में बैठे आंसू गिराना अथवा विरह की उष्णता से धरती और आसमान को जलाना आदि अत्युक्तिपूर्ण रचनाएं शृंगार-मुक्तक के अन्तर्गत ही होती हैं। नायक-नायिकाओं की संयोग-वियोग अवस्थाओं तथा विभिन्न कृत्यों का वर्णन शृंगारी मुक्तककारों ने किया है।

रसखान के काव्य में शृंगार के दर्शन होते हैं। उन्होंने शृंगार-मुक्तक में सुन्दर पथों की रचना की है।

‘मोहन के मन भाह गयी एक भाह सों ग्वालिन गौधन गायी।

ताकों लग्यी चट, चौहट सों दुरि आँचक गात नों गात कुवायी।

रसखानि लही इनि चातुरता बुपचाप रही जब लीं घर आयी।

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २७५

२. देखिये - दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक, पृ० ४२

मैन चलाइ चितै मुसकाइ सुजोत ह्वै जाइ अंगूठा दिसायो ।^१

+ + +

बलिया बलियाँ सौँ सकाइ मिलाइ हिलाइ रिफाइ स्थियो हरिबो ।

बलियाँ चित चौरन पैटक सी रस चारु चरित्रन पुचरिबो ।

रसखान के प्रान सुधा भरिबो अघरान पै त्यौँ अवरा धरिबो ।

हतने सब मेन के मोहनी जंत्र पै मंत्र बसीकर सी करिबो ॥^२

+ + +

नवरंग अनंग भरी कवि सौँ वह मूरति आँखि गड़ी ही रहै ।

बलिया मन की मन ही में रहै, बलिया उर बीच अड़ी ही रहै ।

तबहुँ रसखानि सुजान अली नलिनी दल बूंद पड़ी ही रहै ।

जिय की नहिँ जानत हौँ सजनी रजनी अंगुवान लड़ी ही रहै ।^३

स्वतन्त्र मुक्तक

कोण मुक्तक की भाँति ही स्वतन्त्र मुक्तक विशुद्ध मुक्तक काव्य का एक अंग अथवा भेद है । जिसके लिए न तो संस्था का बन्धन है, और न एक प्रकार के छन्दों का ही । बल्कि कवि की लेखनी से तत्काल निकले प्रत्येक फुटकर छन्द को स्वतन्त्र मुक्तक की संज्ञा दी जा सकती है । स्वतन्त्र मुक्तक काव्य के लिए प्रेम शृंगार, नीति तथा वीर रस आदि कोई भी विषय चुना जा सकता है ।

रसखान ने अधिकांश रचना स्वतन्त्र मुक्तक के रूप में की। उन्होंने भक्ति एवं शृंगार सम्बन्धी मुक्तक लिखे ।

मौर पखा सिर ऊपर राखिहौ गुंज की माल गरी पहिराँगो ।

ओहि पितम्बर लै लकुटी बन गोधन खवारनि संग फिराँगो ।

भाव तो वीहि मेरो रसखानि सौ तेरे कहे सब स्वाँग कराँगो ।

१. सु० र० , १०१

२. सु० र० , १२०

३. सु० र० , १२७

या मुरली मुरलीधर की अघरान घरी अघरान धरणी ॥^१

रसखान द्वारा रचित कवित्त सवैये मुक्तक रचना की विभिन्न कसौटियों पर पूर्णरूप से खरे उतरते हैं। प्रत्येक छन्द अपने में एक इकाई है। चार पंक्तियों में सम्पूर्ण चित्र का निर्माण बड़ी कुशलता से किया है। चित्रात्मकता, भावातिरेक और उक्ति वैदग्ध्य का यह सामंजस्य अत्यन्त दुर्लभ है।

धूर भरे अति सौमित्र स्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।

खेलत खात फिर अंगना पग पैजनी बाजति पीरी कछौटी।

वा कवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी।

काग के पाग बड़े सजनी हरि हाथ तों ले गयो माखन रोटी ॥^२

रसखान की रचनाओं के अनुशीलन से यह स्पष्टतया सिद्ध होता है कि वे मुक्तक रचनाओं के कवि हैं। वस्तुतः कृष्ण-भक्त कवियों की यह एक अवैज्ञानीय विशेषता रही है कि उन्होंने प्रबन्ध रचना में रसचि नहीं दिखाई। इसका मूल कारण यह था कि उनकी दृष्टि भगवान् कृष्ण की सौन्दर्य मूर्ति पर ही केन्द्रित थी, शक्ति और शील पर नहीं। रसखान स्वभाव से ही सौन्दर्योपासक और प्रेमी जीव थे। अतः उनमें भी इस प्रवृत्ति का पाया जाना सर्वथा स्वाभाविक था। अपने प्रेम विह्वल चित्र के भावों की प्रवाहमयी और प्रेमोत्पादक व्यंजना के लिए मुक्तक का माध्यम ही अधिक उपयुक्त था।

रसखान में अपनी स्वानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए मुक्तक के इस माध्यम का असाधारण सफलता के साथ प्रयोग किया है।

मुक्तक के लिए प्रौढ़, प्रांजल तथा समासयुक्त भाषा आवश्यक है। मुक्तक के छोटे से कलेवर में भावों का सागर भरने के लिए इस प्रकार की भाषा को उत्तम कहा गया है। रसखान की भाषा मृदुल, मंजुल और गति पूर्ण होते हुए भी बोझिल नहीं है। उसमें व्यक्त एक एक चित्र अमर है। सानुप्रास शब्दों से भाषा की गतिपूर्ण लय में आन्तरिक संगीत ध्वनित होता है। आवेग की तीव्रता के द्वारा कोमल प्रभाव

१. सु० २०, ८६

२. सु० २०, २१

की अभिव्यंजना होती है। साधारण मुक्तक काव्य की गीतात्मकता में हृदय को संकृत कर देने की शक्ति है।

रसज्ञान के मुक्तकों की सबसे बड़ी विशेषता है, भाव एवं अभिव्यंजना की एकतामयता, जो उन्हें गीति काव्य के निकट ला देती है।

शब्दोयोजना

शब्द वह बैसरी (मानवोच्चरित ध्वनि) है, जो प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरंग मंगिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना कर सके।^१ भाषा के जन्म के साथ-साथ ही कविता और शब्दों का सम्बन्ध माना गया है।

शब्दों-द्वारा अनियंत्रित वाणी नियंत्रित तथा ताल युक्त हो जाती है। गद्य की अपेक्षा शब्द अधिक काल तक समाज में प्रचलित रहता है। जो भाव शब्दोबद्ध होता है उसे अपेक्षाकृत अधिक अमरत्व मिलता है। भाव को प्रेषित करने के लिये साथ-साथ शब्द में मुग्ध करने की शक्ति होती है। शब्द के द्वारा कल्पना का रूप सजग हो कर मन के सामने प्रत्यक्ष हो जाता है।

शब्द की व्यंजना शक्ति भी गद्य की अपेक्षा अधिक होती है। उसके माध्यम से धोड़े शब्दों में बहुत सी बातें कही जा सकती हैं। शब्द की सीमा में बंध कर भाव उसी प्रकार अधिक वेगवान और प्रभावशाली हो जाता है जिस प्रकार तटों के बन्धन से सरिता।

शब्द के आवर्तन में ऐसा आह्लाद होता है, जो तुरन्त मर्म को स्पर्श करता है। स्थिर कथा को वेग देकर चित्त में प्रवेश कराने का श्रेय शब्द को ही है। शब्द भावों का परिष्कार कर कोमलता का निर्माण करता है।

रसखान की शब्दोयोजना

शब्दों के अनेक भेदोपभेद मिलते हैं। (रसखान ने भक्तिकाल की गैय-पद परम्परा से छट कर सवैया, कवित्त और दोहों को ही अपनी रचना के लिए उपयुक्त समझ अपनाया)।

सवैया छन्द

इस छन्द की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। डा० नौन्द का विचार है कि सवैया शब्द सपाद का अपभ्रंश रूप है। इसमें छन्द के अन्तिम चरण के सबसे पूर्व तथा अन्त में पढ़ा जाता था। अर्थात् एक पंक्ति दो बार और तीन पंक्ति एक बार पढ़ी जाती थीं। इस प्रकार वस्तुतः चार पंक्तियों का पाठ पांच पंक्तियों का सा हो जाता था। पाठ में 'सवाया' होने से यह छन्द सवैया कहलाया। संस्कृत के किसी छन्द से भी इसका मेल नहीं है। अतः यह जनपद-साहित्य का ही छन्द बाँके कवियों ने अपनाया होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है।^१ यदि यह अनुमान सही हो तो प्राकृत, अपभ्रंश आदि में यह छन्द अवश्य मिलना चाहिये जो हिन्दी में रूपान्तरित किया गया है। किन्तु ऐसे किसी छन्द के दर्शन नहीं होते। यह सम्भव है कि तेईस वर्णों वाले संस्कृत के उपजाति छन्द के १४ भेदों में से किसी एक का परिवर्तित रूप सवैया बन गया हो। सवैया २२ अक्षरों से लेकर २८ अक्षरों तक का होता है। उपजाति भी २२ अक्षरों का छन्द है। अक्षरों का लघु-गुरु भाव सवैया में भी परिवर्तन करता है। वैदिक छन्दों का भी लौकिक संस्कृत छन्दों तक आते आते बड़ा रूप परिवर्तन हुआ। हो सकता है कि उपजाति का परिवर्तित रूप सवैया हो जो सवाया बोलने से सवैया कहलाया। प्राकृतपैगलम् में भी सवैया का रूप मिलता है किन्तु वहाँ उसे सवैया संज्ञा नहीं दी गई। 'प्राकृत पैगलम्' का रचनाकाल संवत् १३०० के आस पास माना जाता है। अतः सवैया के प्रयोग का अनुमान १३ वीं शताब्दी से लगाया जा सकता है।

भक्तिकाल में गेय पदों का व्यवहार विशेष रूप से होने लगा। सुरदास के आविर्भाव तक हिन्दी में सवैया का प्रचलन नहीं हुआ। जगनिक के आल्हा संह में कुछ सवैया अवश्य प्राप्त होते हैं, किन्तु उनकी भाषा से यही अनुमान होता है कि ये बाद में चौपक रूप में आये। प्रामाणिक रूप से इस छन्द का प्रयोग अकबर के काल में

१. रीतिकाल की भूमिका तथा देव और उनकी कविता! पृ. २३६.

प्रारम्भ होता है। पं० नरोत्तमदास का सुदामा चरित्र सवैयाँ और दोहों में ही लिखा गया है। तुलसीदास ने 'कवितावली' में इन्हीं इन्दों का वाश्रय लिया है। केशवदास की 'राम चन्द्रिका' में भी सवैयाँ काफी मिलते हैं। इस प्रकार रसखान ने भी भक्ति काल की पद परम्परा से हट कर सवैयाँ इन्द को अपनाया।

सवैयाँ बहुत व्यवस्थित वर्णवृत्त है। गणार्ध तथा अन्त के लघु गुरु अक्षरों के भेद से इसके अनेक भेद होते हैं। इसके बारह भेद माने गये हैं। इसके प्रमुख तीन भेद हैं - सगणाश्रित, जगणाश्रित और भगणाश्रित। इन में सगणाश्रित तीन, जगणाश्रित तीन, भगणाश्रित छः प्रकार के होते हैं। प्रत्येक का पारिभाषिक स्वरूप इस प्रकार है -

सगणाश्रित

दुमिल	आठ सगणा
सुन्दरी	आठ सगणा धन गुरु
अरविन्द	आठ सगणा धन लघु

जगणाश्रित

मुकुटहरा	आठ जगणा
बाम	सात जगणा धन यगणा
सुमुखी	सात जगणा धन लघु गुरु

भगणाश्रित

मदिरा	सात भगणा धन गुरु
मोद	पाँच भगणा धन यगणा धन सगणा धन गुरु
मलयन्द	सात भगणा धन दो गुरु
चकोर	सात भगणा धन गुरु लघु
अरसात	सात भगणा धन रगणा
किरीट	आठ भगणा

रसखान के काव्य में सगणाश्रित दुमिल तथा भगणाश्रित मदिरा, मलयन्द तथा

किरीट का प्रयोग मिलता है। भ्रगण की ल्य अवरोह मूलक तथा सगण की आरोह मूलक है। दोनों का प्रयोग शृंगार निरूपण में समल्य के विधान के अनुकूल है।

जगणाश्रित ल्य में मध्य गुरु अक्षर का उत्थान होने से ल्य में अपेक्षाकृत कम मृणता होती है। इसीलिए इसका प्रयोग रसखान ने अपने काव्य में कहीं नहीं किया है।

दुर्मिल

दुर्मिल सवैये में आठ सगण के क्रम से चौबीस अक्षर होते हैं। रसखान के काव्य में लगभग पैंतीस^१ दुर्मिल सवैये मिलते हैं जिनकी पिंगल शास्त्र की दृष्टि से उपेक्षा नहीं की जा सकती।

सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण

॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥
दुनियै सबकी कहियै न कहु रहियै इमिया मन बा गर मे^२

सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण

॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥
यहजा को लै मुख चं द समा न कमा न सी पाँ ह्युमा न हरी।^३

इस पंक्ति में दो स्थानों पर लघु की जगह गुरु का प्रयोग किया गया है।

किन्तु यह प्रयोग काव्य-सौन्दर्य-वर्द्धक ही प्रतीत होता है।

१. सु० २० - ८, ३६, ४७, ४६, ५३, ५६, ६०, ६४, ६७, ७४, ७८, ८८, ६४,
६५, ११८, १२०, १२७, १४१, १४३, १४५, १४६, १५४, १५५,
१५७, १६४, १६५, १७१, १७५, १७७, १८०, १८६, १८८, २१०,
२११, दा० ली० ३

२. सु० २०, ८

३. सु० २०, ५३

सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण

॥ ९ ॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥
घर ही घर धरि घनी धरि ही धरि हा इनि वा गनसां स परी ।^१

सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण

॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥
बिहरीं पिय प्यारी सने ह सने कहरें चुनरी के फवा फहरी ।^२

भावानुकूल शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

मदिरा

मदिरा सवैया में बाईस अक्षर होते हैं । सात भगण तथा एक गुरु होता है । रसखान के काव्य में एक ही मदिरा सवैया के दर्शन होते हैं -

भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण

॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥
खिलत भाग सु हाग म री अनु राग हि लालन को धरि कै ।

भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण

॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥
भारत कुकुम के सरि के पिच कारि न में रंग को धरि कै ।

भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण

॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥ १॥
गैरत लाल गु लाल ल ली मन मोहिनि मौज मि टा करि कै

१. सु० र० , ७८

२. सु० र० , १८६

भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण

जात च ली रस खानि व ली मद मत्त म नी मन को हरि कै ।^१

अन्तिम पंक्ति में गुरु के स्थान पर लघु और लघु के स्थान पर गुरु हो गया है । यह इन्द्र रसखान की काव्य प्रकृति के अधिक अनुकूल नहीं रहा इससे सम्भवतः इसका उन्होंने प्रयोग नहीं किया ।

मत्तयंद

मत्तयंद सवैये में तेईस अक्षर सात भगण दो गुरु होते हैं । रसखान के काव्य में लगभग एक सौ अट्ठाईस^२ मत्तयंद सवैये प्रयुक्त हुए हैं ।

भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण गुरु गुरु

बासर तू जूक हूं निक री रबि को रथ मांफ अ कास बीरी ।^३

१. सु० १०, १६१

२. सु० १० पद, ३, ४, ५, ७, १३, १४, १५, १८, २१, २२, २३, २४, २६, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३५, ३७, ३८, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४८, ५०, ५१, ५२, ५५, ५८, ५९, ६१, ६२, ६५, ६८, ६९, ७२, ७५, ७६, ८०, ८१, ८२, ८३, ८५, ८६, ८७, ८९, ९०, ९२, ९६, ९९, १०१, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११६, ११७, ११९, १२१, १२२, १२४, १२५, १२६, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४२, १४४, १४६, १४८, १४९, १६१, १६२, १६३, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७२, १७३, १७४, १७६, १७८, १७९, १८१, १८२, १८३, १८६, १८७, २०३, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१२, दा० ली० १, २, ४, ११

३. सु० १०, ४८

भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण गुरु गुरु
 मोर प सा मुर ली बन माल ल हैं ह्यि को ह्यि रा उमह्यी री ^१
 भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण उरु उरु

ज्ञानव ही जुर हैं रिफि वा पर रूप व ही जिहि वाहि रि फायी ^२
 इस छन्द के प्रयोग में भी मात्राओं ^३ छन्द नियम का पूरा पालन न हो सका ।
 गुरु के स्थान पर लघु और लघु के स्थान पर गुरु प्रयोग मिलते हैं । उदाहरण के
 लिए निम्न पंक्तियों में देखिये -

भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण गुरु गुरु
 बांकी मरीर गही भूकुटीन लगीं अंखियां तिरखानि तिया की

टांक मी लांक भई रसखानि सुदामिनि ते दुति दुनी ह्यिया की । ^३

रैखांकित शब्द में भगण की अवहेलना हुई है ।

रसखान की प्रवृत्ति मत्तयंद सवैया लिखने की ओर अधिक रही है । इस छन्द
 के प्रयोग में वे पूर्णतया सफल हुए हैं । छन्द भाव तथा रस के अनुकूल है ।

किरीट

किरीट सवैया में प्रत्येक चरण में आठ भगण के कुम से चौबीस अक्षर होते
 हैं । रसखान के काव्य में लगभग तेईस ^४ किरीट सवैये मिलते हैं ।

१. सु० १०, ८३

२. सु० १०, ६०

३. सु० १०, ५१

४. सु० १०, १, २, १२, १६, १७, २०, ३३, ३४, ३६, ४०, ४३, ५७, ७६,
 ८४, ६७, १०२, ११५, १३२, १६०, १६०, २०१, २०२, २०४

भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण

मानुष ही तो व ही रस खानि ब सी ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन ।
भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण

तेरी ग लीन में जा दिन ते निक से मन मोहन गोधन गावत ।
सवैया इन्द्र की कोमल मृणाल ल्य शृंगार रस की प्रकृति के अनुकूल है । सफल
सवैयाकार वही कवि कहलाते हैं जिनके पद्यों में कर्कश शब्दों की संख्या कम हो, शब्द
रोड़े की भांति न लटकें । रसखान के काव्य में भी इस बात का ध्यान मिलता है ।
उनके अधिकांश सवैया कोमल कान्त पदावली में लिखे गये हैं । उनका यह दुर्लभ सवैया
देखने योग्य है ।

मकराकृत कुंडल गुंज की माल के लाल लैं पग पांवरिया ।
वहरानि चरावन के मिस भावती दे गयो भावती भांवरिया ।
रसखान विलोकत ही सिगरी बावरिया ब्रज डांवरिया ।
सजनी इहिं गोकुल में विष सो बगरायो है नंद की सांवरिया ॥^१
सागर मिलन को जाती हुई सरिता की भांति इन्द्र धारावाहिक रूप से बल
रहा है । अनुप्रास द्वारा वीणा-वादन हो रहा है ।
रसखान के सवैया में कहीं कहीं टवर्ग का भी प्रयोग पाया है । उदाहरण के

लिए -

बंसी बजावत जानि कढ़ी सो की में जली, टोना सो डार ।
हरि चित्त, तिरही करि दृषिबली गयो ल मूठि सो मार ।
ताही घरी सों परी धरी सेर प्यारी गलति प्रानहुं वार ।
राधिका जी है तो जीहै सबैतो पोहै ल नंद के डार ॥^२

१. सु० २०, १४१

२. सु० २०, ६८

इस मत्सर्यद सवैये में कुछ शब्द कर्कशता लिए हुए हैं। किन्तु रसज्ञान के काव्य में टवर्ग का प्रयोग सौन्दर्यातिक्रमण करता नहीं दिखाई देता।

प्रभावशाली कवि इन्दों के अनुगामी न होकर इन्दों को अपना अनुगामी बना लेते हैं। सवैयों के प्रयोग में घनानन्द, पद्माकर ही क्या इससे पूर्व के कवियों ने भी गणों को गौण स्थान दिया। फिर रसज्ञान जो कि कवि प्रतिभा लेकर आए थे, उनके काव्य में गणों का पूर्ण पालन होना व्यर्थ ही होगा। उन्होंने गति को सुन्दर बनाने के लिए लघु को गुरु और गुरु को लघु किया। कौमल-कान्त-मदावली का प्रयोग सवैया इन्द की प्रवृत्ति के अनुकूल ही है। रसज्ञान के परवर्ती कवियों-घनानन्द, मतिराम, पद्माकर ने भी इसी इन्द को अपनाया।

घनाक्षरी

घनाक्षरी या कवित्त के प्रथम दर्शन भक्तिकाल में होते हैं। हिन्दी में घनाक्षरी वृत्तों का प्रचलन कब से हुआ, इस विषय में निश्चित रूप से कहना कठिन है। बंद-वरदायी के पृथ्वीराज रासो में दोहा तथा छप्पय इन्दों की प्रचुरता है। सवैया और घनाक्षरी का वहाँ भी प्रयोग नहीं मिलता। प्रामाणिक रूप से घनाक्षरी का प्रयोग अकबर के काल में मिलता है।

घनाक्षरी इन्द में मधुर भावों की अभिव्यक्ति उतनी सफलता के साथ नहीं हो सकती जितनी बीजपूर्ण भावों की। रसज्ञान ने इन्द की प्रवृत्ति का विचार न करते हुए शृंगार तथा भक्ति रस के लिए इस इन्द का प्रयोग किया और ल्य तथा शब्दावली के आधार पर इसे भावानुकूल बना लिया।

यों तो घनाक्षरी के अनेक भेद हैं, किन्तु मुख्य भेद दो हैं - मनहर और घनाक्षरी। मनहर में ३१ अक्षर और घनाक्षरी में ३२ अक्षर होते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से आठ आठ अक्षरों पर यति होती है। होनी चाहिये किन्तु यह ल्य पर निर्भर करता है। १६ अक्षरों पर भी विराम देते हैं, कहीं कहीं पर आठ के स्थान पर सात या नौ पर यति पड़ जाती है। रसज्ञान ने मनहर तथा घनाक्षरी दोनों का ही प्रयोग किया है। रसज्ञान के लगभग ११ मनहर^१ तथा ८ घनाक्षरी^२ इन्द

१. सु० २०, ६, २०, २१, ३२, ५४, ७३, १४७, १४८, १६५, १६६, दा०ली० ८, १०

२. सु० २०, ४६, ६३, १००, १८२, १८३, दा० ली० ५, ६, ६

प्रकाशित मिलते हैं ।

मनहर कवित्त का एक उदाहरण देखिये -

कहा रसखानि सुख संपति सुमार कहा,

कहा तन जोगी हूँ लगाए अंग झार को ।

कहा साथे पंचानल, कहा सोए बीच जल,

कहा जीति लारे राज सिंधु आर पार को ।

जप बार बार, तप संजम वयार-वृत,

तीरथ हज़ार और बूझत लबार को ।

कीन्ही नहीं प्यार नहीं मैयाँ दरबार, चित

चाह्यो न निहार्यो जो पै नंद के कुमार को ।^१

इस कवित्त में आखें अक्षर पर यति है। लय-संयोजन देखने योग्य है।

अनुप्रास-योजना लय विधान के सौष्ठव को बढ़ाने में सहायक हुई है। घनाक्षरी में भी रसखान ने अतीव सुन्दर ढंग से शृंगार-रस की व्यंजना की है -

ऐरी आजु काल्हि सब लोक लाज त्यागि दोऊ,

सीसै छँ सबै बिधि सनैह सरसाइबो ।

यह रसखानि दिना द्वे में बात फैलि जैहै,

कहाँ लौँ सयानी बंदा हाथन क्षिमाइबो ।

आजु हौँ निहार्यो वीर निपट कलिंदी तीर,

दोउन को दोऊ सौँ मुरि मुसकाइबो ।

दोऊ परँ मैयाँ दोऊ लेत हैं बलैया उन्हें

भूलि गई मैयाँ इन्हें गागर उचाइबो ।^२

उपर्युक्त पद्य में प्रत्येक पंक्ति १६-१६ अक्षरों की है। लय विधान संगीतात्मक है। एक के बाद दूसरा शब्द फिसलता आ रहा है। रसखान के सवैया छन्द ने यद्यपि साहित्य प्रेमियों को अधिक आकर्षित किया है, किन्तु उन्हें घनाक्षरी लिखने में भी

१. सु० १०, ६

२. सु० १०, १००

पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है ।

दोहा -

दोहा छन्द बहुत प्राचीन है । संस्कृत साहित्य में यह दूहा कहलाता था । भक्ति काल तक इसका यह नाम प्रचलित रहा , फिर दोहा हो गया । यह अद्वैतम मात्रिक छन्द है । इसमें कुल मिला कर, दोनों चरणों में ४८ मात्राएं होती हैं । रसखान ने 'प्रेमवाटिका' की रचना दोहों में की । इस छोटी सी पुस्तक में कुल ५३ दोहे हैं । इसके अतिरिक्त १२ दोहे^१ सुजान रसखान में मिलते हैं । 'अष्टश्लोक'^२ में भी २६ दोहे पाये जाते हैं जिसके अन्तिम ३: सुजान रसखान में मिलते हैं ।

दोहों की रचना करने में रसखान ने अपने परवर्ती कवि बिहारी की भांति गागर में सागर भरने की कहावत तो नहीं चरितार्थ की, परन्तु यह बात अधिकार पूर्वक कही जा सकती है कि उन्होंने दोहा जैसे छोटे छन्द में भी सारगर्भित विचारों और मार्मिक भावों का सफलता के साथ निरूपण किया है । उदाहरणार्थ -

सुवन कीरतन दरसनहिं जो उपजत सोइ प्रेम ।

सुधासुद्ध बिभेद तैं द्वैविध ताके नेम ॥^३

यहां दोनों पंक्तियों में मिला कर ४८ मात्राएं हो जाती हैं ।

जोहन नंदकुमार कों गई नंद के गैह ।

मोहि देखि मुसकाह के बरस्यो मेह सनेह ॥^४

रसखान ने सरस दोहे लिखे हैं । प्रेमवाटिका आदि के अनुशीलन से यह सिद्ध होता है कि दोहा छन्द पर भी उनका पूर्ण अधिकार था ।

१. सु० १०, १६, ७०, ७१, ६१, ६३, १०६, १४६, १५०, १५१, १५३, २१३, २१४

२. कल्याण सन्त वाणी अंक, जनवरी १९५५

३. प्रेम वाटिका, ४०

४. सु० १०, ६३

सौरठा

यह अर्द्ध सम मात्रिक छन्द है। दोहा छन्द का उल्टा होता है। इसमें २५-२३ मात्राएं होती हैं। रसखान के काव्य में चार^१ सौरठे मिलते हैं।

प्रीतम नंद किशोर, जा दिन ते नैननि लग्यौ । २२+२३=२५

मन भावन चित्त बौर, पलक ओट नहि सहि सकौ ॥ २२+२३=२५

इस प्रकार रसखान के काव्य में कवित्त, सवैया, दोहा, सौरठा आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त एक धमार सारंग, राग पद में भी मिलता है। रसखान के छन्द कोमल कान्त पदावली से युक्त हैं। उनमें संगीतात्मकता है। दोहा जैसे छोटे छन्द में गूढ़ तथ्यों का निष्पण उनकी प्रतिभा का परिचायक है। छन्दों में अन्त्या-नुप्रास का सफल निर्वाह हुआ है। साथ ही छन्द भाव तथा रसानुकूल हैं।

छंद और शब्द स्वरूप विषय

काव्य में सुन्दर अभिव्यक्ति के लिए तथा छन्दानुरोध पर प्रायः कवि शब्दों को तोड़ा मरोड़ा करते हैं। रसखान ने भी काव्य वमत्कार एवं छन्द की मात्राओं के अनुरोध पर शब्दों के स्वरूप को बदला है -

१- फलकैयत, तुल्यैयत, ललकैयत, लैयत^३ - छन्दाग्रह से फलकाना, तुलाना, ललवाना, लाना शब्दों से।

२- पग पैजनी बाजत पीरी कशौटी^४ - कृष्ण की वय की लघुता के आग्रह, स्वाभाविकता एवं सौन्दर्य लाने के लिए कशौटा से कशौटी।

३- टूटे झरा बझरादिक गोघन^५ - छन्दानुरोध पर तथा बझरा से शब्द साम्य के लिए झला से झरा।

१. सु० र०, ७७, ६८, १२३, १५२

२. सु० र०, ७७

३. सु० र०, ६१

४. सु० र०, २१

५. सु० र०, ४४

- ४- मोल झला के लला न बिकेहाँ^१ - लला के आग्रह से झला ।
 ५- मीन सी आँखि भरी अँसुवानी रहै^२ - आँसुओं से भरी रहने के अर्थ में माधुर्य लाने के लिए आँसू से अँसुवानी ।
 ६- मान की औधि है आधी घरी^३ - इन्द्र की मात्रा के आग्रह से अवधि से औधि ।
 ७- पाँवरिया, भाँवरिया, डाँवरिया, साँवरिया, बावरिया^४ - पौरी, भौरी, नाँवो, बावरी आदि से इन्दानुरोध पर पाँवरिया, भाँवरिया बना लिया गया ।
 ८- लुकुटनि, भूकुटनि, उघुटनि, मुकुटनि^५ - इन्दाग्रह से लुकुटी, भूकुटी, मुकुट आदि शब्दों से बनाया ।
 ९- हम हैं वृषभानपुरा की लली^६ - लला (पुत्र) के जोड़ पर पुत्री के अर्थ में लली शब्द का प्रयोग हुआ है ।
 १०- फौरि ही मटूकी माट^७ - इन्दानुरोध पर मटुकी से मटूकी ।
 ११- ज्ञान कमै रेण^८ उपासना, सब अहमिति को मूल - यहाँ इन्दानुरोध पर अरु ने रेण किया गया है ।

रसखान के काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ उन्होंने क्रांतिक सौन्दर्य के लिए शब्दों को तोड़ा मरोड़ा है । किन्तु इस शब्द-विपर्यय में कहीं भी अस्वाभाविकता के दर्शन नहीं होते । न ही शब्द नट की कला की भाँति रूप बदलते हैं । कहीं कहीं तो उन्होंने शब्दों को इस प्रकार संजोया है कि स्वाभाविकता के

१. सु० २०, ४४

२. सु० २०, ७४

३. सु० २०, ११५

४. सु० २०, १४१

५. सु० २०, १६५

६. दान लीला, ३

७. दान लीला, ६

८. प्रेम वाटिका, १२

दर्शनों के साथ साथ भाव सौन्दर्य भी दिखाई देता है । और पता मुरली बनमाल लक्ष्मि को ह्यिरा उमह्यौरी, यहां मसृणाता लाने के लिए ह्यिरा शब्द का प्रयोग किया गया है ।

संदीप में कहा जा सकता है कि रसज्ञान इन्द्र योजना में पूर्ण सफल है । अन्त्यानुप्रास के सुन्दर स्वरूप को भी उन्होंने अपने इन्द्रों में स्थान दिया है । उनमें संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है ।

अलंकार-योजना

अलंकार शब्द का अर्थ है जो दूसरी वस्तु को अलंकृत करे - अलंकारोति इति अलंकारः । आचार्य दण्डी ने कहा है कि काव्य के सभी शोभाकारक धर्म अलंकार हैं ।^१ उनकी इस परिभाषा में चमत्कार उत्पन्न करने वाले सभी काव्य तत्वों की विशेषताओं को अलंकार मान लिया गया है । अलंकार से भामह का अभिप्राय ऐसी शब्द उक्ति से है जो वक्र अर्थात् विचित्र अर्थ का विधान करने वाली हो ।^२ अलंकार शब्द और अर्थ में विद्यमान कविप्रतिभोत्थित ऐसे वैचित्र्य को अलंकार कह सकते हैं, जो वाक्य-सौन्दर्य को अतिशयता प्रदान करता है । इसी से सभी भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने काव्य में अलंकार के महत्त्व की ओर निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है ।

अलंकारों के विधिवत प्रयोग से ही काव्य अलंकृत होता है । नीरस काव्य में अलंकार-योजना उक्ति वैचित्र्य मात्र है । अलंकार-प्रयोग में औचित्य का पूर्ण निर्वाह होना चाहिए । रसज्ञान ने इसका ध्यान रखा है । कविवर रसज्ञान की गणना भक्त कवियों में की जाती है । भक्त काव्यधारा के कवियों ने अलंकारों का सन्निवेश बहुतायत से किया है । परन्तु उन्होंने अलंकारों की अपेक्षा अलंकार्य-भाव-रस को ही अधिक गौरव दिया है । रसज्ञान की प्रवृत्ति भी ऐसी ही है । उन्होंने भाव पर अधिक बल दिया है । बाहरी तड़क भड़क और अलंकारों के बरबस विधान का प्रयास नहीं किया । उनकी रचना में आये हुए अलंकार स्वाभाविक और अभिव्यक्ति को प्रांजल बनाने में सहायक हैं । अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है ।

१. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रवक्षते ।

ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कात्स्न्येन वक्ष्यति ॥

काव्यादर्श, २।१

२. वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृतिः । काव्यालंकार, १।३६

कलंकारों का वर्गीकरण

संस्कृत काव्यशास्त्र में शब्दगत और वर्णगत वैचित्र्य के संबंध में कलंकारों को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया गया है - १. शब्दालंकार तथा २. वर्णालंकार ।

शब्दालंकारों का लक्ष्य किन्हीं विशिष्ट शब्दों के आधार पर कथन में वैचित्र्य उत्पन्न करना होता है । वर्णालंकारों में वर्ण-वैचित्र्य पर अधिक बल दिया जाता है ।

वर्ण के आधार पर वर्णालंकारों को मुख्यतः पांच भागों में विभाजित किया गया है -

- १- ताम्यमूलक कलंकार - इस वर्ग के कलंकारों में उपमेय और उपमान में समता का वर्णन होता है । उपमा, रूपक, उन्नेह, भ्रान्तिमान, दृष्टान्त आदि कलंकार इसी श्रेणी के हैं ।
२. विरोधमूलक कलंकार - जहाँ वर्ण्य पदार्थों में विरोध का वर्णन होता है । विरोधामात्र, विभावना, अंगति, विषम, विशेषोक्ति आदि कलंकार इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं ।
- ३- शृङ्खलामूलक कलंकार - जहाँ पदार्थों का एक तिरछि से वर्णन होता है । कारण माला, एकावली, चार आदि कलंकार इसी श्रेणी में आते हैं ।
- ४- अन्वयसंगममूलक - जहाँ किसी वस्तु का अन्य वस्तु से संगम दिखाकर वर्णन में समत्कार लाया जाता है । काव्यलिङ्ग, तद्गुण, मीलित, परिसंख्या आदि कलंकार इसी श्रेणी के हैं ।
- ५- गुहाधीप्रतीतिमूलक - जहाँ व्यंग्य की प्रतीति कराई जाती है । व्याजोक्ति, स्वामावोक्ति, अत्युक्ति आदि कलंकार इसी वर्ग के हैं । अन्य भारतीय कवियों की भांति रत्नान के काव्य में भी ताम्यमूलक कलंकारों की अधिकता है । वे रस-सिद्ध कवि हैं । इसलिए रस या भाव के उत्कर्ष के लिए ही उन्होंने कलंकारों की निबन्धना की है ।

शब्दालंकार

अनुप्रास

केवल भारतीय कवियों ने ही नहीं बल्कि पाश्चात्य कवियों ने भी अनुप्रास अलंकार का बहुत अधिक रुचि के साथ प्रयोग किया है। अनुप्रास की परिभाषा एवं स्वरूप के विषय में भी आचार्य मूलतः एकमत हैं। स्कूल रूप से, वर्णनाम्न्य को 'अनुप्रास' कहा गया है। आचार्य भामह के अनुसार स्वरों की विषमता होने पर भी व्यंजनों की ऐसी बाधुति जिसमें बहुत व्यसमान न हो और जो रस एवं भाव के अनुरूप हो, उसे 'अनुप्रास' कहते हैं।^१

अनुप्रास के प्रधानतः दो भेद हैं - ऐकानुप्रास और वृत्त्यानुप्रास।

ऐकानुप्रास - जहाँ एक या अनेक वर्णों की क्रमानुसार बाधुति केवल एक बार हो अर्थात् एक या अनेक वर्णों का प्रयोग केवल दो बार हो, वहाँ ऐकानुप्रास होता है।

वृत्त्यानुप्रास - जहाँ वृत्तियों (उपनागरिका, परुषा और कौमला) के अनुसार एक या अनेक वर्णों की बाधुति क्रमपूर्वक अनेक बार हो।

रसज्ञान के काव्य में अनुप्रास की बड़ी चित्ताकर्षक योजना हुई है। अनुप्रास की नियोजना से कविता सुनने में भली लगती है। उससे कविता का प्रभाव परिवर्धित हो जाता है। रसज्ञान के कवि और श्रव्यों की वर्णयोजना भावक के मन को तरंगित करती रहती है। भावानुरूप अनुप्रास का प्रयोग सफल कवि ही कर सकते हैं। रसज्ञान ने अपने को इस कला में पारंगत सिद्ध किया है।

ऐकानुप्रास का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

देखो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठी पलोटत राधिका पायन।^२

१. स्वरवेत्तादृश्यै पि व्यञ्जनसदृशत्वं वर्णनाम्न्यम् । रसापनुगतः प्रकृष्टो न्यासी नुप्रासः । - काव्यप्रकाश, ६।२ पर वृत्ति ।

२. गु० २०, १७

मेन मनोहर वैन बने सुतणे तन लोह्म पीत पटा है ।^१

उपर्युक्त पहली पंक्ति में 'द' और 'क' का तथा दूसरी पंक्ति में 'म' और 'ब' का प्रयोग दो बार हुआ है। इन वर्णों की बावृत्ति एक बार होने से यहाँ ऐकानुप्रास है।

रसज्ञान की कविता में वृत्थानुप्रास के भी अनैकानैक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। ऐसा लगता है कि कवि शब्दों को नचाता हुआ चल रहा है।

सैब गनेस मस्त दिनैत सुरेस हु जाहि निरंतर गार्वे ।

जाहि जनादि अनंत कतह बहैत जमीद तुबैद बतार्वे ।^२

अन्वय- हाकि हेल हकीली हटा हहराह के कौतुक कौटि दिताह रही ।^३

यमक

जहाँ भिन्नार्थक वर्णों (निरर्थक या सार्थक) की क्रमशः पुनरावृत्ति हो, वहाँ 'यमक' अंकार होता है।^४

'यमक' का शाब्दिक अर्थ है जोड़ा। इस अंकार का नाम 'यमक' इसलिए रखा गया है क्योंकि इसमें एक जैसे दो शब्द प्रयुक्त होते हैं। सार्थक वर्णसमूह की अपेक्षा निरर्थक वर्णसमूह की बावृत्ति यमक के चमत्कार में विशेष वृद्धि करती है। यमक में कहीं दोनों वर्ण समूह सार्थक होते हैं, कहीं दोनों निरर्थक एवं कहीं एक सार्थक होता है और एक निरर्थक। समानार्थक वर्णों की बावृत्ति को यमक नहीं माना जा सकता। यमक के दो भेद हैं - १. सभंग यमक और २. असभंग यमक। १. सभंग यमक - निरर्थक वर्ण समूह वाले यमक को 'सभंग यमक' कहते हैं, क्योंकि निरर्थक वर्ण समूह पूर्ण नहीं होते। वे केवल दूरे शब्दों के सष्ठ मात्र होते हैं।

१. सु० १०, १७२

२. सु० १०, १८१

३. सु० १०, १५७, अन्य उदाहरणों के लिए देखिए - सु० १०, १, २, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १४, ३७, ७८।

४. शिष्टः मन्त्रैकवर्णविधाने शेषे लब्धे - साहित्यदर्पण, ३०६६२

२. अमंग यमक - साधारण शब्दों वाले यमक को 'अमंग यमक' कहते हैं। कारण यह है कि इसमें शब्दों को तोड़ना नहीं पड़ता।

रसखान के काव्य में 'यमक' की योजना यत्र-तत्र दर्शनीय है। उनकी यमक योजना बायासमुच्च एवं स्वाभाविक सौन्दर्य से युक्त है। उसमें चमत्कार दिखाने की कलाबाजी नहीं, बल्कि नैसर्गिक झटा है।

समंग यमक का निम्नांकित उदाहरण देखिए -

जुधा के जागे वजुधा के मान-मोचन ये।

तामरस लोचन खरीचन को ठाढे हैं।^१

यहां 'जुधा' शब्द की आवृत्ति हुई है जो कि निरर्थक है तथा 'जुधा' और 'वजुधा' शब्दों को तोड़ा गया है। अतः समंग यमक है। उसी प्रकार 'लोचन' और 'खरीचन' में प्रयुक्त 'चन' भी निरर्थक है।

इसी प्रकार निम्नांकित पंक्ति में भी समंग यमक का चमत्कार है -

ताखन जाखन राखिये माखन - बाखनहारो सो राखनहारो।^२

उपर्युक्त पंक्ति में भी 'खन' की आवृत्ति हुई है, 'ख' 'माखन', 'बाखन' और 'राखन' शब्दों को तोड़ कर 'खन' को अलग किया गया है। अतः समंग यमक है।

जब अमंग यमक की झटा देखिए। कृष्ण के वंशी-वादन से गौपियां विह्वल हुई हैं। साथ ही जब कृष्ण वंशी बजाते हैं तब उनकी युध-युध स्वयं 'बिसार' देते हैं। ऐसी मन-व्याकुल करने वाली और सौत की तरह आचरण करने वाली वंशी से परेशान होकर गौपियां उससे कहती हैं -

हम तो ब्रज को बलिबोईं तजी बतरी ब्रज बैरिन तूं बंसरी।^३

यहां 'बतरी' और 'बंसरी' शब्दों में यमक का चमत्कार है। एक का अर्थ

१. सु० १०, १०

२. सु० १०, १८

३. सु० १०, ५६

है (तू ही) बस (निवास कर) और दूसरे का अर्थ है वंशी ।

इसी तरह कवि की अमंग यमक-योजना का एक और सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है । उसी मानिनी नायिका को परामर्श दे रही है कि वह मोहन से सलोना बोल बोले -

जोई दिवावत हौं रसखानि तूं जोई करे किन लाखनि लौने ।

नोखी तूं माननि मान कह्यौ किन मान बसंत में कीनी है कीने ॥^१

उपर्युक्त पंक्तियों में 'जोई' और 'जोई' तथा 'मान' और 'मान' दोनों शब्दों के जोड़े एक जैसे हैं परन्तु अर्थ भिन्न है । पहले बार हुए 'जोई' का अर्थ है 'शपथ' तथा दूसरी बार बार हुए 'जोई' का अर्थ है 'सुमुख' । इसी प्रकार पहले बार हुए 'मान' का अर्थ है (कहना) मानना और दूसरी बार बार हुए शब्द का अर्थ है प्रिया का प्रियतम के प्रति रति-विषयक कोप । रसखान के काव्य में यमक अलंकार का बहुतायत से प्रयोग किया गया है । कवि ने इस अलंकार की योजना बड़े ही सफल रूप में की है ।^२

श्लेष

जहां श्लिष्ट पदों द्वारा अनेक अर्थों का कथन किया जाय वहां श्लेष अलंकार होता है ।^३ श्लेष प्रायः अन्य अलंकारों का सहयोगी होकर ही काव्य में योजित होता है ।

भावुक कवियों के काव्य में इस अलंकार का प्रयोग बहुत सीमित रूप में हुआ है । इसका कारण यह है कि श्लेष में ऐसे शब्दों का विधान होता है जो अनेक अर्थों को प्रकट करते हैं । अनेकार्थक शब्दों की योजना में प्रयास करना पड़ता है । श्लेष के द्वारा काव्य का बाह्य आवरण ही अधिक अलंकृत होता है ।

रसखान के काव्य में इस अलंकार का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है । रसखान निश्चिंत भावनाओं को व्यक्त करने वाले कवि हैं और श्लेष भावोत्कर्ष में बहुत अधिक सहयोगी नहीं होता । फिर भी कहीं कहीं उसकी योजना सुंदर रूप में हुई

१. सु० १०, ११३

२. यमक के अन्य उदाहरणों के लिए देखिए- २, ४, ७, ६५, ७६, १०७, ११३, १३४, १४५.

३. श्लिष्टः पदेरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते ॥ - साहित्यदर्पण, १०।१४

है -

मन लीनों प्यारे चितै पै कटांक नहिं देत ।

यहै कहा पाटी पढ़ी दल को पीछो लेत ॥^१

इस दोहे में 'मन' और 'कटांक' शब्द में स्पष्ट रूप से श्लेष है। 'मन' का अर्थ है चित्त और दूसरा अर्थ है 'चालीस सेर'। इसी तरह 'कटांक' का एक अर्थ है फलक या कटांक (कटाका) और दूसरा अर्थ है सेर का सोलहवां भाग। श्लेष का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है। गोपी कृष्ण की अलकावलि पर मुग्ध है। उसकी वंशी की तान सुनकर विदुब्ध है। और -

लटकी लट यों दृग - मीननि तों बनसी जिय वा नट की अटकी ।^२

इस पंक्ति के 'बनसी' शब्द में श्लेष है। इसके दो अर्थ हैं - एक वंशी (वाद्य) और दूसरा मछली फंसाने की बंकुसी।

वक्रोक्ति

किसी एक अभिप्राय वाले कई हुए वाक्य का, किसी अन्य द्वारा श्लेष अथवा काकु से, अन्य अर्थ लिए जाने को 'वक्रोक्ति' अलंकार कहते हैं।^३

वक्रोक्ति अलंकार दो प्रकार का होता है - श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति। श्लेष वक्रोक्ति में किसी शब्द के अनेक अर्थ होने के कारण वचता के अभिप्रेत अर्थ से अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है और काकु वक्रोक्ति में कंठ ध्वनि अर्थात् बोलने वाले के लहजे में भेद होने के कारण दूसरा अर्थ कल्पित किया जाता है।

वक्रोक्ति अलंकार का नियोजन एक कष्टसाध्य कर्म है, जिसके लिए प्रयास करना अनिवार्य है। भावुक कवियों ने इसका प्रयोग कम ही किया है। रसज्ञान की रचनाओं में वक्रोक्ति की योजना नाममात्र की है, परन्तु जी है, वह सहृदय के चित्त

१. सु० २०, २५०

२. सु० २०, २६४

३. यदुक्तामन्यथावाक्यमन्यथा न्येन योज्यते ।

श्लेषेण काज्वा वा ज्ञेया वा वक्रोक्तिस्तथा विधा ॥

को प्रसन्न करने वाली है। दानलीला के पसंग में कवि की कला का चमत्कार द्रष्टव्य है -

झीर जो चाहत चीर गईं अबु लैउ न केतिक झीर अबे हो ।

चाखन के मित माखन मांगत साउ न माखन केतिक सैहो ।

जानति हीं जिय की रसखानि तु काहे को रतिक बात बड़े हो ।

गौरस के मित जो रस चाहत जो रस कान्हजू नेकु न पैहो ॥^१

‘कान्हजू’ ने गौपी के प्रति जो चैष्टा की उसका उच्चर वह बड़े वक्रतापूर्ण ढंग से देती है। यदि ‘चीर’ ‘गहने’ से ‘झीर’ चाहते हो, तो लो कितना पीजोगे, चखने के बहाने मखन मांगते हो तो लो साखी, कितना खाजोगे। परन्तु गौपी कृष्ण की इन चैष्टाओं का दूसरा अर्थ लेती है हुई कहती है कि मैं तुम्हारे मन की बात जानती हूँ, तुम गौरस (दूध, दही, घी) के बहाने ‘गौरस’ (इंद्रियों का रस) चाहते हो, तो लो तुम लो कि वह रस तुम जरा सा भी नहीं पाजोगे। सबैया की अन्तिम पंक्ति में वक्रोक्ति की सरस एवं नाट्यमय व्यंजना हुई है।

अधोलिखित पद्य में अनेक अलंकारों, विशेषकर रमणीय वर्ण योजना का चमत्कार दर्शनीय है -

ढहढही बैरी मंजुहार सहकार की पै,

चहचही बुहल चहुँकित जलीन की ।

लहलही लीनी लता लपटी तमालन पै,

कहकही लपै कौकिला की काकलीन की ।

तहतही करि रसखान के मिलन हेत,

बहबही बानि तजि मानस मलीन की ।

महमही मंद मंद मारुति मिलनि तैसी,

गहगही खिलनि गुलाब की कलनि की ।^२

१. सु० १०, ४२

२. सु० १०, ४६६

वर्धलिकार

साम्यमूलक वर्धलिकार

उपमा

जहाँ एक ही वाक्य में दो पदार्थों का, वैधर्म्य-रहित, वाच्य सादृश्य हो वहाँ 'उपमा' वर्धलिकार होता है ।^१

उपमा में किसी वस्तु का उत्कर्ष प्रतिपादित करने के लिए उसकी तुलना किसी लोक प्रसिद्ध वस्तु के साथ की जाती है ।

वर्धलिकारों में उपमा सबसे प्रधान है । इसे वर्धलिकारों का मूल कहा जाता है । यह वर्धलिकार इतना व्यापक है कि इसका कोई - न - कोई अंग प्रायः सभी वर्धलिकारों में देखा जा सकता है । इसे काव्य की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति माना गया है । राजशेखर ने तो इसे कवि-वंश की माता के समान सम्झा है ।^२ भारतीय साहित्य का ही नहीं अपितु पाश्चात्य साहित्य-ज्ञान का भी यह परम प्रिय वर्धलिकार है ।

उपमा के लिए दो बातें अपेक्षित होती हैं । पहली यह कि तुलना दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में होती है और दूसरी बात यह है कि तुलना किसी उत्कृष्ट गुण-वाली लोक प्रसिद्ध वस्तु से की जाती है । 'उपमा' का शाब्दिक अर्थ ही है - 'उप' (समीप) 'मा' (मापना) अर्थात् समीप ले जा कर मापना (तुलना करना) ।

सभी कवियों के काव्य में उपमा की योजना बहुलता से हुई है । संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास तो 'उपमा' के लिए ज्ञात-विख्यात हैं -

'उपमाकालिदासस्य' । रसज्ञान के काव्य में भी उपमा की कृपा देखने ही योग्य है । कवि ने प्रायः सभी अवसरों, कविचर्चा और अन्ये दोहों में भी अपनी मार्मिक दृष्टि से सुमनोहर उपमाओं की योजना की है । नायिका की रूपश्री का वर्णन करते

१. साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्यं उपमा द्वयोः । -साहित्यदर्पण, २०।१४

२. वर्धलिकारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम् ।

उपमा कविवंशस्य मातैवैति मतिर्निम ।। - राजशेखर

दुर कवि ने लोक-ख्यात उपमानों को चुना है -

वति लाल गुलाल दुकूलते फूल बली , वति कुंतल राजत है ।

मखतूल समान के गुंज किरानि में किंसुक की श्वि क्षाजत है ।

मुनता के कदम्ब ते बंभ के भीर जुने दुर कौकिल लाजत है ।

यह आवनि प्यारी जू की रसखानि बसंत - सी बाज बिराजत है ॥^१

यहाँ कवि राधा की रूप-छटा का वर्णन करता है । इन सबैया में रूपक, प्रतीप आदि से पुष्ट उपमा अवलंकार है । बसंत में गुलाल, भीर, किंसुक, बौर, कौकिल - ये विशिष्ट हैं । यहाँ नायिका में इनका आरोप हुआ है - उसका दुपट्टा लाल गुलाल के समान है, केशराशि भीरों के समान चिकनी बौर काली है , रेशम के समान कुछ-कुछ श्यामांग लाल रंग के गुंजा की माला किंसुक के फूलों की तरह लग रही है । मोतियों का समूह आम के भीर की तरह लग रहा है , बाणी कौकिल की ध्वनि को भी लज्जित करने वाली है (अतः यहाँ प्रतीप है), इन सब विशेषताओं से मंडित 'प्यारी जू' की 'आवनि' बसंत ऋतु के समान शोभा को प्राप्त कर रही है । उपर्युक्त पंक्तियों में कवि की उपमा योजना मनोहर है ।

वियोगावस्था में प्रेमी वेदना से व्यथित होने के कारण फूल के समान मुरझा जाते हैं । उसी प्रकार की एक नायिका का उदाहरण द्रष्टव्य है -

नाह-वियोग बढ़यो रसखानि मलीन महा दुति दैहतिया की ।

पंकज सों मुर गौ मुरफाह लगी लपटें बरि स्वांस हिया की ॥^२

१. सु० २०, ४६, उपमा के उदाहरण के लिए देखिए - सु० २०, ५३, ५७, ६४, ६४, ६५, १००, १३३, १५३ ।

२. सु० २०, ११७, इसी से मिलता-जुलता प्राकृत के अमर कवि राजशेखर का एक श्लोक द्रष्टव्य है -

एवं वासरजीवपिंडसरिसं चेदंशुणो मंडलं

को जाणादि कहिं पि संपदि गधं एतस्मि कालतेरे ।

जादा किं च इअं पि दीह विरहा सौऊण णाहे गदे

णिदा मुदिदलोवण व्व णालिणी मीलंतपेरेहा ॥

- कर्पूरमंजरी, १।३५

यह लोक प्रसिद्ध है कि सूर्य के क्षिप्त जाने पर कमल मुरझा जाता है , वह सूर्य की उपस्थिति में ही खिला रहता है । यहाँ भी नायिका को कमल-सी कहा गया है । प्रियतम के न होने पर उसका हास-उल्लास समाप्त हो गया है , फलतः उसके देह की कान्ति मलीन हो गई है । उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने अपनी नव-नवीन्मेषशालिनी प्रतिभा से एक और चमत्कार उत्पन्न कर दिया है । सूर्य के क्षिप्त जाने पर ताप नहीं रहता , वातावरण में एक स्निग्धता व्याप्त हो जाती है । परन्तु वियोगिनी की स्थिति तो विचित्र है । वियोग-संतप्त हृदय से निकले हुए दाहक उच्छ्वास उसकी दशा को और भी दयनीय बना देते हैं । प्रियतम के वियोग के कारण विनोद-विलास नहीं है और विरह-व्यथा के कारण लपटों का आगमन हो रहा है । इस स्थिति में उसका पंकज-ता मुख तो और भी मुरझा जाएगा । कवि ने 'पंकज' के उपमान से नायिका की कमीलता , सुन्दरता और उसके पद्मगंधा होने की ओर संकेत किया है । वहाँ 'पंकज सी मुख गो मुरझाव' में उपमा बलंकार की मार्मिक नियोजना है ।

भारतीय कवि मोहों की उपमा धनुष से और नेत्रों की उपमा बाण से देते आते हैं । रसखान ने भी ऐसा ही किया है । परन्तु बाण से प्रहार तब किया जाता है जब लक्ष्य दूर हो । समीप आ जाने पर अस्त्र के स्थान पर शस्त्र का प्रयोग किया जाता है । कृष्ण ने भी गोपी के साथ इसी प्रकार का व्यवहार किया -

वह नंद को साँवरो ड़ेल बली अब तो अति ही इतरान लग्यो ।

नित घाटन बाटन कुंज में मोहिं देखतही नियरान लग्यो ।

रसखानि बखानि कहा करिये तकि सैननि तौ मुसकान लग्यो ।

तिरछी बरछी सम मारत है दुगबान कमान तु कान लग्यो ।^६

उपर्युक्त पद में 'बरछी' शब्द का प्रयोग ध्यान देने योग्य है । इस पर उद्गू-फारसी का प्रभाव परिलक्षित होता है । इस चमत्कारपूर्ण उक्ति की विशेषता यह है कि समीप आते हुए कृष्ण धनुष को कानों तक खींच कर नेत्र-बाण चलाते

हैं और उनकी तिरछी दृष्टि गोपी के हृदय को बर्छी की भांति बेध देती है ।

रूपक

उपमेय पर उपमान के निषेध-रहित अमेद आरोप को रूपक कहते हैं ।^१

‘आरोप का अर्थ है - रूप देना अर्थात् दूसरे के रूप में रंग देना । यह ‘आरोप’ कल्पित होता है । रूपक में उपमेय को उपमान समझ लिया जाता है । उपमा में उपमेय और उपमान में सादृश्य होते हुए भी भिन्नता होती है जबकि रूपक में दोनों एक से जान पड़ते हैं । उनमें एकरूपता होती है । रूपक के तीन मुख्य भेद हैं - सांगरूपक, निरंगरूपक और परम्परित रूपक ।

- १- सांगरूपक - जहाँ उपमेय में उपमान का अंगों के सहित आरोप हो वहाँ सांग-रूपक होता है ।
- २- निरंगरूपक - अंगों से रहित उपमान का जहाँ उपमेय में आरोप होता है वहाँ निरंगरूपक होता है ।
- ३- परम्परितरूपक - जहाँ एक आरोप दूसरे आरोप का कारण हो वहाँ परम्परित-रूपक होता है ।

रूपक अलंकार की निबन्धना में भारतीय महाकवियों की विशेष प्रवृत्ति रही है । यह रसखान का भी प्रिय अलंकार है । उनके काव्य में स्थल स्थल पर रूपकों की सुन्दर नियोजना की गई है । वे स्वाभाविक रूप से आए हैं तथा उनके द्वारा भावों की भाविक व्यंजना हुई है । रूपक चित्तविधायक अलंकार है । रसखान ने इसका सफल प्रयोग किया है ।

प्रेम किया नहीं हुआ जाता हो जाता है । नायिका ने नायक को देखा और उसका मन उसके हाथ से निकल गया । वह प्रियतम के प्रति बेबस हो गई -

नैन दलालनि चौहटें, मन-मानिक पिय हाथ ।

रसखां ढोल बजाइ के, बेच्यो हिय जिय साथ ॥^२

१. अमेदप्राधान्ये आरोपे आरोपविषयानपह्नवे रूपकम् ।

-अलंकारसर्वस्व, पृ० ३४

२. सु० २०, ७८

उपरिलिखित दोहे में सांगरूपक की योजना दर्शनीय है। नैन रूपी दलालों ने मन रूपी मानिक को ढोल बजाकर बीच बाजार में हृदय और प्राण के सहित प्रियतम के हाथ बेच दिया। इसी से मिलती जुलती बात बिहारी ने भी कही है -

लौम लगे हरि-रूप के, करी सांठि जुरि जाइ ।
हाँ इन बैची बीच ही, लौम बड़ी बलाइ ॥^१

शरीर का रूपक बाग के रूप में बांधती हुई नायिका के कथन में शुद्ध शृंगार-परक सांगरूपक की योजना चिदाकर्णक है -

बागन काहे को जाजो पिया घर बैठे ही बाग लगाय दिखाऊं ।
रड़ी बनार सी मौरि रही, बहियां दौड चंपे की डार नवाऊं ।

शांतिन में रस के निबुवा बरन धुंघट लौलि के दास बसाऊं ।
ढांगन के रस के चसके रति फूलन की रसखानि लुटाऊं ॥^२

इस संवैध में बाहों पर चंपा की फुकी हुई डाल का, स्तनों पर सरस नीबू का और गोठों पर अंगूर का आरोप अंग-रूप से करके बाग-रूपी शरीर के मुख्य रूपक को पूर्ण किया है। इस प्रकार यहाँ पर सांग रूपक की नियोजना की गई है। निरंग रूपक के अंकन में भी रसखान खूब सफल रहे हैं। नायक पर मोहित हुई नायिका कहती है -

संजन नैन फंदे पिंजरा कबि, नाहि रहै थिर कैसे हूं मारि ।^३

यहाँ पर नायिका के संजन रूपी नेत्रों का नायक के कवि रूपी पिंजड़े में फंदा होने का वर्णन है। 'नैन' उपमेय पर 'संजन' उपमान का आरोप हुआ है। इसमें 'नैन' उपमेय के अंगों में संजन उपमान के अंगों का आरोप नहीं हुआ है। यही अर्थ 'पिंजरा' और 'कवि' की भी है।

निरंग रूपक का एक उदाहरण और लीजिए। नन्दकुमार की देखने के लिए दूकान के घर गई हुई गोपी लौटकर अपनी सखी से अपने अनुभव का वर्णन करती है -

बिहारी रत्नाकर, दोहा १६५

१० १०, १२२

१० १०, ८१

जोहन नंदकुमार को गई नंद के गेह ।

मोहिं देखि मुसकाइ के बरस्यो मेह सनेह ॥^१

यहाँ 'मेह सनेह' में रूपक है, अर्थात् मेह-रूपी स्नेह की वषाई हो गई । स्नेह की अतिशयता सूचित करने के लिए उसे मेह के रूप में चित्रित किया गया है ।

उपर्युक्त उदाहरणों के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि रूपक अलंकार की योजना में रसखान को अतीव सफलता मिली है ।

प्रतीप

जहाँ प्रसिद्ध उपमान का निर्णय किया जाय, उसकी निन्दा का वर्णन हो या उसकी उपमेय-रूप में कल्पना किए जाने का वर्णन हो वहाँ 'प्रतीप' अलंकार होता है ।^२

प्रतीप की योजना में कल्पना-विलास की अधिकता होती है । प्रतीप अलंकार के लिए उक्ति-चातुर्य नितान्त अपेक्षित है । इसके द्वारा वर्णित भाव के उत्कर्ष में सहायता मिलती है । इस अलंकार में कल्पना की ऊंची उड़ानें मरने के कारण अभिव्यक्ति में क्लिष्टताजन्य अवरोध उपस्थित होने का भय बना रहता है । रसखान की प्रतीप-योजना इन दोषों से सर्वथा मुक्त है । उसके द्वारा भावाभिव्यक्ति में कोई रुकावट नहीं आई है । इस अलंकार का प्रयोग प्रायः रूप-चित्रण के प्रसंगों में हुआ है ।

रसखान के काव्य में बार बार प्रतीप अलंकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

- (१) वा लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुं पुर को तजि डारैं ।
आठहु सिद्धि नवी निधि को जुल नंद की गाइ बराइ बिचारैं ।

१. सु० २०, ६३, रूपक अलंकार के और उदाहरण के लिए देखिए- सु० २०, ८, ८६, ७२, ७४ आदि ।

२. बाजौप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता ।

तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कारनिबन्धनम् ॥

र रसखानि जैसे इन नैनन तें ब्रज के बन-बाग निहारौं ।

कोटिन ये कलधौत के धाम करील की कुंज ऊपर वारौं ।^१

इस सर्वे में कवि ने उपमेय की तुलना में उपमान की तुच्छ माना है । कृष्ण 'लकुटी' और 'कामरिया' लेकर गाय चराने जाते थे । रसखान कहते हैं कि उसमें जो आनन्द है, लकुटी और कामरिया में जो महत्ता है, गौरव है, उस पर तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) के वैभव को न्योझावर करता हूँ । नन्द की गायों को चराने में जो अपार सुख मिलता है, उसकी प्राप्ति के लिए बाठों सिद्धियों और नवीं निधियों के सुख का विस्मरण कर सकता हूँ । जब मैं इन वांछों से ब्रज के बन-बाग को निहारता हूँ तब करोड़ों ऐश्वर्य से भरे हुए विशाल स्वर्ण-निर्मित भवनों को करील के कुंजों पर निझावर कर देता हूँ ।

(२) मुरली कर में अथरा मुसकानि - तरंग महाश्रवि श्रजति है ।

रसखानि लखें तन पीत पटा सत दामिनि की दुति लाजति है ।^२

यहाँ श्याम रंग के कृष्ण पर सुशोभित पीला रेशमी वस्त्र बादलों में चमकती हुई बिजली की चमक को भी लज्जित करने वाला है । उपमान दामिनी की निन्दा करके उपमेय पीताम्बर में अधिक चमत्कार वर्णित किया गया है, अतः इस पंक्ति में प्रतीप अलंकार है ।

(३) यह जाको लखे मुखचंद - समान कमानभीहं गुमान हरै ।

अति दीरघ नैन सरोजहू तें मृग संजन मीन की पांति दरे ।^३

अन्तिम पंक्ति में प्रतीप अलंकार है । विशालता सूचित करने के लिए नेत्रों की उपमा कमल से दी जाती है । यहाँ नायिका के नेत्र कमल से भी विशाल हैं तथा मृग, संजन तथा मीन के नेत्रों की कजरारेपन, चंचलता और निमीलता का दर्प-दलन करने वाले हैं ।

१. सु० २०, ३

२. सु० २०, ६२, प्रतीप के अन्य उदाहरणों के लिए देखिए - सु० २०, ३, २१, ३१, ६४, ४४६, ४६१

३. सु० २०, ५३

शीमित हो रही है मानो सावन के बादल के बीच में बिजली घिर गई हो और बाहर न निकल पाने के कारण वह भीतर ही भीतर चमक रही हो। नील वस्त्र से आच्छादित गौर वर्ण युवती के बिजली के समान अंगों की ऐसी ही सुन्दर कल्पना 'कामायनी' में ज्योत्संकर प्रसाद ने भी की है -

नील परिधान बीच सुकुमार

खुल रहा मृदुल अधसुला वंग ,

खिला हो ज्यों बिजली का फूल

मेघ-वन-बीच गुलाबी रंग ।^१

(२) नायिका वयःतन्त्रि की स्थिति में है। उसमें विलास-वैष्टावों का धीरे धीरे आगमन हो रहा है। उसके उरोजों के उभार को देखकर कवि ने कितनी दूर की उड़ान लेंते हुए मनोहर उत्प्रेक्षा की है -

जो हैं तरंग अनंग की अंगनि ओप उरोज उठी हतिया की ।

जोबन-जोति तु यो दमकै उत्साह दई मनो बाती दिया की ।^२

यहां प्रस्तुत है उठे हुए उरोजों की कान्ति का वर्णन करना। 'जोबन-जोति' से दमकती हुई इस नायिका को देख कर कवि कहता है मानो दिया की बाती 'उत्साह' दी गई हो। नायिका के उरोजों की आभा दर्शकों के हृदय में प्रकाश-सा फैला रही है।

(३) कवि हौली के अवसर का चित्र खींच रहा है। अनुराग और गुहाग से सनी, बठखलियां करती हुई कमल-मुखी ब्रज बालारं हाथ में कुंकुम लिए हुए खड़ी हुई हैं -

रसखानि गुलाब की धुंध में ब्रजालन की दुति यो दमकै ।

मनो सावन सांझ ललाह के सांझ चहुं दिशि तें चपला चमकै ।^३

उपर्युक्त पंक्तियों में उपमेय है - गुलाब की धुंध में चमकती हुई ब्रजालाओं की दुति। ललाह के उस वातावरण में गौरी गोपियों को देख कर कवि ने प्रकृति-

१. कामायनी, पृ० ४६

२. सु० १०, ५१

३. सु० १०, १६८

सौन्दर्य का सूक्ष्म दर्शन किया है। वह उत्प्रेक्षा करता है - मानो 'सावन' मास की संध्या की लालिमा में चारों दिशाओं में चपलारं (बिजलियां) चमक रही हों।

इन उदाहरणों को देख कर ही कवि की असाधारण प्रतिभा का अनुमान किया जा सकता है। उसकी उत्प्रेक्षारं परम्परा से पिटी पिटाई हुई नहीं है बल्कि उनमें कुछ नवीनता भी है। इस प्रकार की अनैकानेक उत्प्रेक्षाओं ने रसखान के काव्य को विभूषित किया है।^१

अपह्नुति

जहाँ प्रकृत का निषेध कर अप्रकृत का स्थापन किया जाय वहाँ 'अपह्नुति' अलंकार होता है।^२

अपह्नुति केवल सादृश्य-सम्बन्ध में ही होती है। 'अपह्नुति' का शाब्दिक अर्थ है - क्षिप्ताना या निषेध करना। इसमें किसी सत्य बात को क्षिप्त कर या निषेध करके उसके स्थान पर कोई झूठी बात स्थापित की जाती है।

अपह्नुति की योजना में प्रायः कृत्रिमता आने की आशंका रहती है। रसखान के काव्य में यह अलंकार बहुत ही विरल रूप में आया है। एकाध स्थलों पर इसकी चिन्ताकर्षक व्यंजना हुई है। बांसुरी बजाते हुए, गौचरण का गीत गाते हुए, ग्वालियों के साथ श्रीकृष्ण गोपिका की गली में आ गए। गोपिका उनकी बांसुरी की टेर को चुन कर कहती है -

'बांसुरी में उनि मेरोई नांव सुग्वालनि के मित टेरि जुनायो।
उपर्युक्त पंक्ति में अपह्नुति अलंकार की सुन्दर छटा है। यहाँ पर कृष्ण वंशी से गोपी-नाम-ध्वनि नहीं करते। वे 'सुग्वालनि' की ध्वनि टेरते हैं। यहाँ गोपी के नाम का निषेध किया गया है और अप्रकृत 'सुग्वालनि' नाम की स्थापना की गई है। लेकिन गोपी इस सत्य को समझती है कि उन्होंने बांसुरी में 'सुग्वालनि' के मित से मेरे नाम को ही जुनाया है।

१. उत्प्रेक्षा के लिए अन्य उदाहरण देखिए - सु० १०, ५२, ११८, १७०, १७२ आदि।

२. प्रकृतस्य निषेधेन यदन्यत्वप्रकृत्यनम्।

सामादपह्नुतिर्विक्रमेदामेदवती द्विधा ॥ चित्रमीमांसा, पृ० ७०

अतिशयोक्ति

जहाँ उपमान द्वारा उपमेय का निगूण, असम्बन्ध में सम्बन्ध की कल्पना, उपमेय का अन्यत्व अथवा कारण और कार्य का पौर्वापर्य - विपर्यय वर्णित हो, वहाँ 'अतिशयोक्ति' जलंकार होता है ।^१

अतिशयोक्ति का अर्थ है अतिक्रान्त अथवा उल्लंघन अर्थात् किसी वस्तु के विषय में लोकसीमा से बढ़ा चढ़ा कर कथन करना । काव्य में अतिशयोक्ति की योजना का महत्त्व असंदिग्ध है । अतिशयोक्ति के आधार पर ही कवि कल्पना की मधुर उड़ानें भरते हैं । सामान्य जीवन के व्यवहार में भी अतिशयोक्ति का प्रयोग बहुलता से किया जाता है । अतः उसे मानव की स्वभाव-जन्य विशेषता कहा जा सकता है ।

अतिशयोक्ति कवियों का परम्परा से प्राप्त जलंकार है । रसखान ने भी काव्य-परम्परागत रूप में ही उसका ग्रहण किया है, जिससे उसमें नवीनता और कथन में सुन्दर चमत्कार आ गया है । उनकी अतिशयोक्ति-योजना केवल वैचित्र्य-प्रदर्शन बनकर ही नहीं रह गयी है, बल्कि अभिप्रेत वर्ण्य विषय में उत्कृष्ट लाने में पूर्णतः समर्थ है ।

कवि श्रीन्दर्य-निकेतन राधा की अनन्य रूप-कृटा का चित्रण करता हुआ अतिशयोक्ति करता है -

बाहर तुं जु कहूं निकरै रवि को रथ मांक अकास बरैरी ।

रैन यहै गति है रसखानि कृपाकर आंगन तैं न टरै री ।

पौस निस्वान चत्यौई करै निसि पौस की वासन पाय धरै री ।

तेरौ न जात कछु दिन राति बिचारे बटौलै की बाट चरै री ॥

१. निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत् ।

प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं पथर्थीकौ च कल्पनम् ॥

कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः

विशेषा अतिशयोक्तिः सा ----- ॥ - काव्यप्रकाश, १०११००-१०१

नायिका गोरे रंग की है। उनके सौन्दर्य में अप्रतिम आभा है। वह बहुत ही दर्शनीय है। तभी उसे बरजता हुई कहती है कि तू दिन में घर से बाहर न निकल अन्यथा तेरे रूप को देखने के लिए सूर्य का रथ आकाश में ही रुक जाएगा। यही स्थिति रात में भी होगी - चन्द्रमा आंगन में आ कर तुझे टकटकी बांधकर देखता रहेगा, वहां से 'टरेगा' नहीं (शायद यह सोचकर कि मेरा प्रतिबिम्ब कहां से आ गया)। (तू पद्मगन्धा है अतः) दिन में वायु तेरी सुगन्ध लेने आता है। रात में भी वह दिन की सी आशा से पीछे लगा है। (तुम्हारे बाहर निकलने से) तुम्हारा तो कुछ नहीं जाएगा, हां पथिक बैचारे का रास्ता रुक जाएगा। (अर्थात् समय सूचक ये ग्रह रुक जाएंगे, अपना कार्य करना बन्द कर/देगे)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उल्लेख में कवि ने राधा की सौन्दर्य-गरिमा के प्रभाव का लोकजीमा से बढ़ा बढ़ा कर कथन किया है। अतः यहां अतिशयोक्ति अलंकार है।

रसज्ञान ने अतिशयोक्ति का परम्परागत रूपों में ही प्रयोग किया है। श्री राधा और श्रीकृष्ण की मधुर मुस्कान से प्रकृति प्रभावित है। उसकी क्रिया का कारण उसकी मुस्कान को मानता हुआ कवि अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पना करता है -

कातिग न्वार के प्राप्त ही प्रातःरोज किते बिकलात निहारे ।

ढीढ़ि परे रत्नाकर के दरके बहु दाढ़िम बिम्ब विचारे ॥^६

कार्तिक और आश्विन मास में प्रातःकाल ही कमल खिल जाते हैं। कवि की उत्प्रेक्षा है कि ये राधाकृष्ण की मनोहर मुस्कान को देखकर खिलते हैं। इसी प्रकार इनके रत्नों के आकार की धवल दन्त पंक्ति की चमक को देखते ही वार्तक से 'दाढ़िम' दरक जाते हैं।

व्यतिरेक

जहां उपमान की अपेक्षा अधिक गुण होने के कारण उपमेय का उत्कर्ष

हो वहाँ 'व्यतिरेक' अलंकार होता है ।

व्यतिरेक का शाब्दिक अर्थ है आधिपत्य । व्यतिरेक में कारण का होना अनिवार्य है । रसखान के काव्य में व्यतिरेक की योजना कहीं कहीं हो चुकी है । किन्तु जो है , वह आकर्षक है ।

नायिका अपनी उसी से कह रही है कि ऐसी कोई स्त्री नहीं है जो (कृष्ण) के सुन्दर रूप को देखकर अपने को सम्यत् लगे । है उला, मैंने 'ब्रजवन्द' के लोने रूप को देखते ही लोलाज की 'तजे' दिया है क्योंकि -

खंजन मीन सरोजनि की क्वि गंजन नैन लला दिन होनी । - - -

महि कमान लो जोहन को सर बैयन प्राननि नंद की होनी ।^१

यहाँ नन्दलाल के दिन दिन होनहार नयन खंजन, मीन और सरोज (कमल) से भी अधिक क्वि वाले बतलार गए हैं । किन्तु उनमें एक विशिष्टता और भी है । वह यह कि कृष्ण 'महि कमान' से कटाका का बाण छोड़ कर प्राणों को बेधते हैं । यहाँ उपमेय में उपमान की अपेक्षा अधिक गुण होने के कारण व्यतिरेक अलंकार है ।

एक अन्य उदाहरण लीजिए -

नायिका में यौवनागम हो गया है । उसकी माँहों में बाँकापन तथा चितवन में तिरक्षापन जा गया है । साथ ही -

टांक लो लोके मई रसखानि सुदामिनि ते दुति दूनी हिया की ।^२

यहाँ 'सुदामिनि ते दुति दूनी हिया की' में व्यतिरेक अलंकार है । क्योंकि, उपमेय नायिका के उमरे हुए वक्षःस्थल की दुति बिजली से भी दूनी है - ऐसा कहा गया है ।

पर्याय

जहाँ एक वस्तु की अनेक वस्तुओं में अथवा अनेक वस्तुओं की एक वस्तु में

१. सु० १०, १८७.

२. सु० १०, ५९

क्रम से (काल-भेद से) स्थिति का वर्णन हो वहाँ पर्याय अलंकार होता है ।^१

निम्नांकित पंक्तियों में कृष्ण की अनेक चेष्टाओं का वर्णन है -

काहू को माखन चाखि गयो अरु काहू को दूध दही ढरकायो ।

काहू को चीर ठै रुख चढ़यो अरु काहू को गुंजारा बहरायो ।^२

‘जसोमति’ के ‘झीहरा’ (कृष्ण) किसी का मखन खा गर तो किसी का दही ढरका दिया, किसी का ‘चीर’ लेकर वृद्धा पर चढ़ गर तो किसी की गुंजाफल की माला को बिखेर दिया । यहाँ कृष्ण के द्वारा की जाने वाली अनेक क्रियाओं का वर्णन है । अतः यहाँ पर्याय अलंकार है ।

विरोधमूलक अलंकार -

विरोधाभास

वस्तुतः विरोध न होने पर जहाँ विरोध का आभास हो वहाँ ‘विरोधा-भास’ अलंकार होता है ।^३

विरोध के कारण सामान्य उक्ति में भी अनोखा चमत्कार आ जाता है । इस अलंकार में विरोध केवल आभासित होता है । लेकिन विचार करने पर उसका परिहार हो जाता है । ऐसी उक्तियों के कारण काव्य-सौन्दर्य में उत्कर्ष आता है ।

रसखान के काव्य में विरोधाभास अलंकार की योजना नाममात्र की हुई है। उसका कारण यह है कि वे निश्कल भक्त थे , काव्य उनकी तीव्र भावाभिव्यक्ति का साधन था । वे बात को बैलाग कहते थे - घुमा फिरा कर नहीं । वचन-विदग्धता के प्रदर्शन की चेष्टा उन्होंने कहीं नहीं की है । प्रेम-बंध बड़ा विचित्र है - कमल नाल से भी क्षीण और सड़ग की धार से भी तीक्ष्ण । अनिवार प्रेम

१. एकमनेकस्मिन्ननेकमेकस्मिन्क्रमेण पर्यायः । - अलंकारसर्वस्व, पृ० १८६

२. पु० १०, १०४

३. विरुद्धाभासत्वं विरोधः । - काव्यालंकारसूत्र, ४।३।२२

के मार्ग के विषय में कवि का 'विरोधाभास' चमत्कार देखिए -

कमलतंतु से हीन बरु , कठिन खड़ग की धार ।

वत्सिखी टेंढी बहुरि , प्रेम पंथ अनिवार ॥^६

जो सीधा है वह टेंढा कैसे हो सकता है ? यहीं तो विरोधाभास है ।

प्रत्यक्षतः दोनों (जूथी, टेंढी) में विरोध दृष्टिगत होता है, परन्तु तत्त्वतः विरोध है नहीं । प्रेम हो जाता है, उसमें झल-झंड रंभात्र भी नहीं है । वह निश्कल हृदय का प्रवाह है - इस दृष्टि से 'जूथी' (सीधा) है । लेकिन प्रेम-मार्ग पर चलना टेंढी सीर है, दुनिया का व्यंग्य और उपहास साथ रहता है , कठिनायों जीवन को वस्थिर कर देती हैं । इस दृष्टि से 'टेंढी' (टेंढा) है ।

एक अन्य उदाहरण भी अवलोकनीय है । गोपी कृष्ण के अप्रतिम सौन्दर्य पर मुग्ध है । उनके नेत्र-कटाक्ष को देखते ही उसकी लाज की गांठ खुल जाती है -

तुनि री सज्जी बलबैली लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है ।

रसखान लखें मन बूझि गयी मधि रूप के सिंधु कलोलत है ।^७

प्रश्न उठता है - जब मन डूब गया तो किलौल कैसे करेगा ? लेकिन फिर भी किलौल करता हुआ चित्रित किया गया है । यहाँ विरोध आभासित हो रहा है । लेकिन व्यंग्य यह है कि मन कृष्ण दर्शन से ही उनमें अनुरजित हो गया और उनके रूप सिंधु में अवगाहन करने लगा , अर्थात् वत्सिख्य वानन्द की अनुभूति करने लगा ।

असंगति

जहाँ आपाततः विरोध दृष्टिगत होते हुए , कार्य और कारण का वैयधिकरण्य वर्णित हो, वहाँ असंगति अलंकार होता है ।^८

इसमें दो वस्तुओं का वर्णन होता है - जिनमें कारण कार्य सम्बन्ध होता

६. प्रेम वाटिका, दोहा ६

७. जु० १०, १५७

८. विरुद्धत्वेनापाततो भासमानं हेतुकार्यपौर्वैयधिकरण्यमसंगतिः ।।

है। इन वस्तुओं की एकदेशीय स्थिति आवश्यक है, लेकिन वर्णन भिन्नदेशत्व का किया जाता है।

रसखान के साहित्य में वसंगति की योजना अत्यन्त सीमित रूप में हुई है। एक प्रभाव-व्यंजक उदाहरण अवलीक्षणीय है। गोकुल के ग्वाल (कृष्ण) की मनोहर वेषटाओं पर मुग्ध हुई गोपी कहती है -

पिचका चलाइ और जुवती भिजाइ नैह,
लौक नचाइ मेरे अंगहि नचाइ गौ ।^१

यहां क्रिया कृष्ण के नेत्रों में होती है परन्तु प्रभाव गोपी के अंग पर होता है। उसका अंग अंग उसके लोल लौकनों के कटाका से नाच उठता है।

एकावली

जहां शृंखलारूप से वर्णित पदार्थों में विशेष्यविशेषणभाव-सम्बन्ध हो। वहां एकावली अलंकार होता है।^२

इस अलंकार की योजना कवि लोग केवल चमत्कार उत्पन्न करने के लिए करते हैं। इसमें कल्पना की उड़ान का विनीटात्मक रूप होता है। निम्नांकित पंक्ति में कवि ने एकावली अलंकार का नियोजन किया है -

वा रस में रसखान पगी रति रैन जी अंसियां अनुमाने ।
चंद पे बिम्ब जी बिंब पे कैरव कैरव पे मुक्तान प्रमाने ।^३

यहां पर नायिका के मुख, अघर और नेत्रों के अंगों का एक के बाद एक करके शृंखला रूप से वर्णन हुआ है। रात भर जागरण के कारण नायिका की आँखें लाल हो गई हैं। उसके मुख चन्द्र पर 'बिंब' (कुंदल - लाल आँखों की ललाई) है, बिंब पर कैरव (आँखों में सफेद कीर) है और 'कैरव' पर मुक्तारं (रात भर जागने से अंजई लैने पर स्वतः निकल पड़ने वाली आँसु की बुंदें) हैं।

१. पु० २०, १६४

२. तैव शृंखला संतर्गस्य विशेष्यविशेषणभावरूपत्वे एकावली ।

-रसगंगाधर, पृ० ६२३

३. पु० २०, ११६

रसखान ने 'एकावली' का प्रयोग एकाध स्थलों पर ही किया है, क्योंकि यह उनका प्रिय बलंकार नहीं है ।

बन्धुसंगमूलक बलंकार

उदाहरण

सामान्य रूप से कही हुई बात को स्पष्ट करने के लिए जहाँ उन्नी सामान्य में एक अंश को उदाहरण के रूप में रखा जाता है, वहाँ उदाहरण बलंकार होता है ।^१

उदाहरण बलंकार की योजना रसखान ने बल्क मात्रा में की है । उनके उदाहरण सामान्य जीवन से ग्रहण किए गए हैं और सुन्दर बन पड़े हैं । उदाहरण के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं -

रसखान गुबिंदहि यों भज्यै जिमि नागरि को चित गागर में ।^२

कवि कहता है कि गोविन्द का भजन एकाग्र चित से करना चाहिए । वप बात को स्पष्ट करने के लिए वह एक उदाहरण देता है कि मन को भगवान में उस प्रकार केन्द्रित रखना चाहिए जिस प्रकार चिर पर कई घड़े रख कर चलने वाली नागरी संतुलन बनाए रखने के लिए अपने मन को घड़े पर केन्द्रित रखती है । यहाँ कवि ने सामान्य जीवन से रमणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

(२) प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम-रूप ।

एक होय द्वे यों लखें, ज्यों सूरज जी धूप ॥^३

इस दोहे में कवि की दृष्टि है 'प्रेम' और 'हरि' (ईश्वर) की एकरूपता प्रतिपादित करना । एक होते हुए ये दोनों कैसे शोभित होते हैं - इसको स्पष्ट करने के लिए उसने सूरज और धूप का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

१. बलंकार प्रदीप () संसार चन्द्र , पृ० १८६

२. सु० २०, ८

३. प्रेम-बाटिका, १२४

अन्य अलंकार

अनुमान

साधन के द्वारा साध्य के चमत्कारपूर्ण ज्ञान के वर्णन को अनुमान अलंकार कहते हैं।^१ अनुमान अलंकार में हेतु के द्वारा साध्य का अनुमान कराया जाता है और यह ज्ञान कवि के द्वारा कल्पित चमत्कार से पूर्ण होता है। रसखान के काव्य में इस अलंकार का प्रयोग बहुत कम हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

मोहनलाल को हाल बिलौकिये नैकु कछू किनि हूँ कर जों कर ।

ना करिबे पर बारें हैं प्रान कहा करिहैं अब हां करिबे पर ।^२

नायिका मान कर रही है और नायक उसे प्रसन्न करने की चेष्टा कर रहा है। उसी नायिका की समझाती है कि मान करने की अवधि तो घड़ी भर की होती है और तुम इतनी देर से तीक्ष्ण नेत्रों से देखदेख कर नायक के हृदय को बैध रही हो। मोहनलाल तुम से प्रेम करने के लिए बेहाल हो रहे हैं। जरा अनुमान तो करो कि तुम्हारे 'ना' करने पर अब उनकी यह हालत है तो 'हां' करने पर क्या स्थिति होगी।

लौकीकित

जहाँ वर्णित प्रसंग में लोक-प्रसिद्ध प्रवाद (मुहावरा, लौकीकित वादि) का कथन किया जाय, वहाँ 'लौकीकित' अलंकार होता है।^३

रसखान के काव्य में लौकीकितियों का प्रयोग सुन्दर रूप में हुआ है। कवि ने उन्हें भावों के पूषण में चमकते हुए नगीनों की तरह स्थान स्थान पर जड़ दिया है। इसके अनेक सरस उदाहरण द्रष्टव्य हैं। नायक और नायिका दोनों कालिन्दी के तीर पर मिलते हैं, मुड़ मुड़ कर मुस्कराते हैं, एक दूसरे की बलियाँ लेते हैं। इसे लक्ष्य करके कोई उसी कहती है कि दोनों ने बाजकल लौकलाज को त्याग दिया है,

१. अनुमानं तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात् । - साहित्यदर्पण, १०।६३

२. गु० १०, ११५

३. लोकप्रवादानुकूलिलौकीकितरिति भव्यते । - कुल्लयानन्द, १५७

केवल स्नेह को 'सरसा' रहे हैं, उन्हें नहीं मालूम है कि बागे क्या होगा-

यह रसखानि दिना है में बात फैलि जैहै,

कहां लीं स्यानी चंदा हाथन क्षियाखी ।^१

दो दिन में बात फैल जाती है । चन्द्रमा को हाथ से नहीं क्षियाया जा सकता । यह लोक-प्रसिद्ध है । लौकीकित बलंकार की सहायता से लक्षणा द्वारा सखी यह कहना चाहती है कि गोपी और कृष्ण की इस प्रेम-लीला को गुप्त रखना असम्भव है । ब्रज में इसकी चर्चा फैलते देर नहीं लगेगी ।

इसी तरह निम्नांकित उद्धरण में भी कवि ने 'न रह्या बांस न बजैगी बांसुरी' लौकीकित का बड़ा ही रमणीय प्रयोग किया है -

करिये उपाय बांस डारिये कटाय

न हि उपजैगी बांस नाहिं बाजे फेरि बांसुरी ।^२

कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनकर गोपियां तन्मय होकर व्याकुल हो जाती हैं । उन्हें न तो पानी का घड़ा भरने का सुधि रहती है और न पग धरने की । वे घर का ध्यान ही भूल कर लम्बी-लम्बी उंसों भरने लगती हैं । कोई बेहाल होकर भूमि पर गिर जाती है तो कोई बांसुओं से पूरित बांछों वाली हो जाती है । कवि कहता है कि ब्रज-बनिताओं के मन का वध करने वाली वंशी कुलीनता का ध्वंस करने वाली है । इसका तो एक ही उपाय है कि बांस ही कटा दिये जायं, इसी यह होगा कि न तो न बांस उपजैगी और न ही फिर वंशी ही बजैगी । कवि ने बलंकार का कितना प्रभावशाली प्रयोग किया है ।

मानवीकरण

पारश्वात्य काव्यशास्त्र के प्रभाव से हिन्दी में कुछ वाधुनिक बलंकारों की चर्चा भी होने लगी है । उन्हीं में एक बलंकार 'मानवीकरण' है । यह शब्द अंग्रेजी के 'personification' का हिन्दी अनुवाद है । 'अमानव' में 'मानव' गुणों

१. सु० १०, १००

२. सु० १०, ५४

के आरोप करने की साधारण प्रवृत्ति या प्रक्रिया को 'मानवीकरण' कहा जाता है ।^१

मानवीकरण के द्वारा वर्णनीय विषय में मार्मिकता और प्रेषणीयता लाई जाती है । हिन्दी की शाय्यावादी कविता में मानवीकरण का बड़ा ही मनीहर एवं सशक्त प्रयोग हुआ है । प्राचीन कवियों के काव्य में भी मानवीकरण की विशेषताएं उपलब्ध हैं । सहज भावुक कवि रसखान ने भी 'मानवीकरण' अलंकार की सुन्दर योजना की है । कुछ उदाहरण देखने योग्य हैं -

(१) प्रेमी की मुस्कान पर मुग्ध नायिका कहती है -

बैरिनि बाहि भई मुसकानि जु बा रसखानि के प्रान बसी है ।^२

यहां 'मुसकानि' चेतन प्राणी नहीं है । (न मानव ही है) फिर भी उसे 'बैरिनि' कहा गया है । बैरिणी वही हो सकती है जो चेतन हो । 'मुसकानि' का यहां मानवीकरण करके उक्ति में चमत्कार लाया गया है । अतएव यह 'मानवीकरण' अलंकार का उदाहरण है ।

(२) वहि बांसुरि की धुनि कान परें कुलकानि हियो तजि भाजति है ।^३

'कुलकानि' प्राणी नहीं है जो भागे । कुलकानि की चिन्ता मानव को ही हो सकती है । जानवरों में इस प्रकार की भावना नहीं होती । अतः यहां 'कुलकानि' में मानव की विशेषता को चित्रित करके उसका मानवीकरण किया गया है ।

(३) मोहन में नायिका का मन अटका हुआ है तथा मन को चैन नहीं पड़ता और स्थिति यह है कि -

ब्याकुलता निरखे बिन मूरति भागति भूख न भूषन भावै ।^४

यहां भागति भूख में मानवीकरण अलंकार है , क्योंकि अमूर्त और अचेतन 'भूख' का मानवीकरण किया गया है तथा उसमें भागने की विशेषता दिखाई गई है ।

१. साहित्य कोश (सं०- डा० धीरेन्द्र वर्मा), पृ० ५८६

२. सु० २०, ३८

३. सु० २०, ६७

४. सु० २०, १३६

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसज्ञान की कविता में विभिन्न प्रकार के शब्दगत और अर्थगत अलंकारों का प्रयोग हुआ है। कवि ने कहीं चमत्कार लाने के लिए अलंकारों को बरबस ठूंसने की चेष्टा नहीं की है। भाव और रस के प्रवाह पर भी उसकी दृष्टि केन्द्रित रही है। भावों और रसों की अभिव्यक्ति को उत्कृष्ट बनाने के लिए ही अलंकारों की योजना की गई है। उचित स्थान पर अलंकारों का ग्रहण किया गया है। उन्हें दूर तक खींचने का व्यर्थ प्रयास नहीं किया गया है। औचित्य के अनुसार ठीक स्थान पर उनका त्याग कर दिया गया है। रसज्ञान द्वारा प्रयुक्त अलंकार अपने 'अलंकार' नाम को सार्थक करते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास और अर्थालंकारों में स उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक की निबन्धना में कवि ने विशेष रुचि दिखाई है। बड़ी कुशलता के साथ उनका सन्निवेश किया है। कुल मिला कर उसे इस विधान में पूर्ण सफलता मिली है। अलंकारों की सुन्दर योजना से उसकी कविता का कला-पद्म निस्सन्देह निसर आया है।

षष्ठ अध्याय

रसज्ञान की भाषा

(क) साहित्यिक विवेचन

गोलखीं शताब्दी में ब्रज भाषा साहित्यिक ज्ञान पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी । मन्त कवि सुरदास इसे सार्वदेशिक काव्य भाषा बना चुके थे । किन्तु उनकी शक्ति भाषा-शौष्ठव की अपेक्षा भाव धोतन में अधिक रही । स्त्रीलिर बाबू ज्ञानाथ दास रत्नाकर ब्रजभाषा का व्याकरण बनाते समय रसज्ञान, बिहारी और घनानन्द के काव्याध्ययन की सुरदास से अधिक महत्व देते हैं । बिहारी की व्यवस्था कुछ कड़ी तथा भाषा परिमार्जित एवं साहित्यिक है । घनानन्द में भाषा-शौन्दर्य उनकी लक्षणा के कारण माना जाता है । रसज्ञान की भाषा की विशेषता उसकी स्वाभाविकता है । उन्होंने ब्रज भाषा के साथ खिलवाड़ न कर उसके मधुर, सहज एवं स्वाभाविक रूप को अपनाया । साथ ही बोलचाल के शब्दों की साहित्यिक शब्दावली के निकट लाने का उफल प्रयास किया ।

शब्दशक्ति-चमत्कार

प्रत्येक शब्द के अर्थ का बोध शब्द की शक्ति द्वारा होता है । वैयाकरणों ने 'शब्दार्थ-सम्बन्धः शक्ति' कहकर इसी परिभाषा को सार्थक किया है । शब्द की शक्ति ही उसकी सार्थकता की धोतक होती है । काव्य में अपीप्सित अर्थ की स्पष्ट अभिव्यक्ति के अतिरिक्त, यह भी आवश्यक है, कि भाषा में शिष्टता, समणीयता, चमत्कारिता और संवेदनशीलता हो । रसज्ञान की भाषा की शक्ति इस उद्य की पूर्ति में कहाँ तक उफल हो सकी है इसी का विवेचन प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है ।

शब्दशक्तियाँ तीन मानी गई हैं - अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना । अभिधा शक्ति वह शक्ति है जिसे संकेतित(प्रसिद्ध) अर्थ का अवबोध हुआ करता है

और स्तीलिए उसे शब्द की प्रथम (मुख्य) शक्ति कहा करते हैं।^१ लक्षणा शक्ति वह शक्ति है जो कहीं मुख्यार्थ के (अन्वयमन्य के) बाधित अथवा अनुपपन्न हो जाने पर वहाँ एक ऐसे वर्ण का अवबोधन कराया करती है जो कि मुख्यार्थ से (सर्वथा असंबद्ध नहीं अपितु) किसी न किसी रूप से सम्बद्ध तो अवश्य रहा करता है किन्तु मुख्यार्थ के स्वभाव से भिन्न स्वभाव का ही हुवा करता है और ऐसा होने के कारण रुढ़ि है या प्रयोजन-विषयता।^२ व्यंजना शक्ति वह शक्ति है जो वभिधा वादि शक्तियों के शान्त हो जाने पर (अपने अपने कार्य कर चुकने के बाद क्षीण सामर्थ्य हो जाने पर) एक ऐसे वर्ण का अवबोधन कराया करती है जो बाध्य, लक्ष्यादि रूप अर्थों से सर्वथा एक विलक्षण प्रकार का वर्ण हुवा करता है।^३

वभिधा शक्ति

रसखान के काव्य में भक्ति तथा प्रेम सम्बन्धी वर्णों में, वात्सल्य-वर्णन में, संयोग लीला तथा रूप-चित्रण के सामान्य हृत्प्रेक्षात्मक वर्णों में वभिधाशक्ति से प्रोत्तित वाच्यार्थ की प्रधानता स्वभावतः है ही, विशेष भावपूर्ण स्थलों पर वभिधा में भी चमत्कार का निरूपण है -

‘बैन वही उनकी गुन गाई वी कान वही उन बैन वी सानी।’^४

+ +

१. साहित्यदर्पण, पृ० ४०

२. साहित्यदर्पण, पृ० ४८

३. साहित्यदर्पण, पृ० ७५

४. पृ० १०, ४

‘वेष गुरेस दिनैस गनेस ब्रजेस धनेस महेस मनावी ।^१

+ +

‘देस विदेस के देसे नरेसन रीझ की कौऊ न बुझ करीगो ।^२

+ +

‘वैह ब्रस ब्रसा जाहि सेवत हैं रैन-दिन, सदासिव सदा ही धरत ध्यान गाढ़े
हैं ।^३

+ +

‘बुनिये सब की कहिये न कहू रहिये इमि या बन-बागर में ।^४

+ +

‘गर्व गुनी गनिका गंघरबुब की वारद सबे गुन गावत ।^५

उपसृक्त पंक्तियों में रसखान ने अभिधा शक्ति के द्वारा अपने मन की अभिलाषा को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। भक्तिपूर्ण मनोभिलाषा की इस हृदयहारिणी अभिव्यक्ति में चमत्कार का वैशिष्ट्य है। रसखान ने कृष्ण के बाल-रूप का चित्रण अभिधा के द्वारा किया है -

जाज गई हुती भीर ही हौं रसखानि रहैं वहि नंद के भौनहिं ।

वाकौ जियौ जुग लास करौर ज्यौमति को पुस जात कह्यौ नहिं ।

१. सु० १०, ५

२. सु० १०, ७

३. सु० १०, १०

४. सु० १०, ८

५. सु० १०, १२

तेल लगाइ लगाइ के अंजन भाँह बनाइ बनाइ छिठौनहिं ।
 डालि हमैलनि हार निहारत वारत ज्यौ चुवकारत झौनहिं ॥^१

+ +

‘धूर भरे बति सोमित स्याम जू तैसी बनी गिर सुन्दर चोटी ।
 खेलत खात फिरँ अंगना पग पैजनी बाजति पीरी कशौटी ।
 वा अबि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कौटी ।
 काग के भाग बड़े अजनी हरि-हाथ सौँ ठै गयो माखन रौटी ॥’^२

लक्षणा और व्यंजना की निबन्धना न होने पर भी कृष्ण के बाल
 सौन्दर्य की अभिव्यक्ति निस्संदेह शक्तिमती है ।

‘मैया की सौँ जीव कछु मटकी उतारे को न गौरत के डारे को न चीर
 चीरि डारे को ।
 यहै दुख भारी गहै डगर हमारी माँफ, नगर हमारे ग्वाल नगर हमारे
 को ।’^३

+ +

‘गौरज बिराजै माल लहलही बनमाल, जागे गैयां पाहे ग्वाल गावैं मृदु
 बानि री ।
 तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर , जैसी बंक चितवनि मंद मंद
 मुसकानि री ।
 कदम विटप के निकट तटनी के तट, अटा चढ़ि चाहि पीत पटा
 फहरानि री ।
 रस बरसावै तनतपनि बुझावै नैन, प्राननि रिफावै वह जावै रसखानि
 री ॥’^४

१. सु० १०, २०

२. सु० १०, २१

३. सु० १०, ४६

४. सु० १०, १८३

रसखान ने पद्यों में अभिधा शक्ति का प्रयोग किया है। अन्तिम पद्य अभिधा का सुन्दर उदाहरण है। रसखान के भक्ति प्रेम तथा बाललीला उम्बन्धी पद्यों में अभिधा-शक्ति के चमत्कारपूर्ण दर्शन होते हैं। उनकी प्रायः सभी रचनाएं रसपूर्ण या भावपूर्ण हैं। अतएव उनके काव्य में अभिधा का स्कान्त प्रयोग अधिक नहीं है। जहां रस या भाव की व्यंजना होती है वहां व्यंजना-शक्ति का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है।

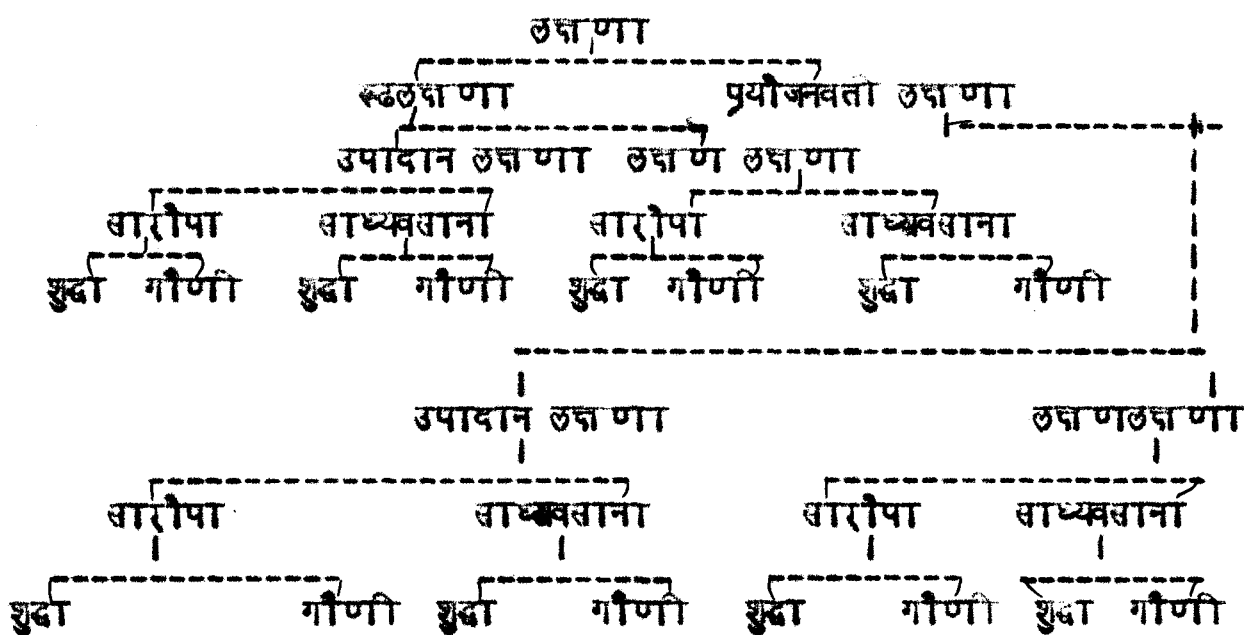
लक्षणा शक्ति

लक्षणाशब्द शक्ति वह शब्द शक्ति है जो कहीं मुख्यार्थ के (अन्वयबोध) बाधित हो जाने पर वहां एक ऐसे अर्थ का अवबोधन कराया करती है, जो कि मुख्यार्थ से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध तो अवश्य रहा करता है, किन्तु मुख्यार्थ के स्वभाव से भिन्न स्वभाव का ही हुवा करता है और ऐसा होने का कारण या तो रुढ़ि है या प्रयोजन-विवक्षा।^१ लक्षणा शक्ति के अनेक भेदोपभेद हैं।^२

१. मुख्यार्थबाधे तद्युक्तौ ययान्धीर्धः प्रतीयते।

श्लो: प्रयोजनादा तौ लक्षणा शक्तिरर्पिता ॥ साहित्यदर्पण, पृ० ४८

२. साहित्यदर्पण के अनुसार लक्षणा के प्रमुख भेद इस प्रकार हैं -



देखिये - साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद

उनके विशेष विस्तार में न जाकर हम केवल प्रमुख पैरों के आधार पर रसखान के काव्य में प्रयुक्त लक्षणा शक्ति का विवेचन करेंगे ।

रुद्धिलक्षणा

रुद्धि-लक्षणा वह है जिसमें रुद्धि के कारण मुख्यार्थ को छोड़ कर उससे सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ ग्रहण किया जाय ।^१ रसखान के काव्य में रुद्धि-लक्षणा यत्र तत्र मिल जाती है । रुद्धि-लक्षणा का उफूल प्रयोग कवि के भाषाधिकार का परिचायक है -

‘कुंजाली में बली निकली तहां तांकी डोटा कियो मटपेरी ।

मार रो वा मुख की मुसकान गयो मन बुद्धि फिर नहिं फेरी ।

गैर लियो दृग चोरी लियो चित डारयो है पैस को फंद घनेरो ।

कैसी करी जब क्यो निकली रसखानि पर्यो तन रूप को घेरो ॥^२

‘मन बुझने’ में रुद्धि-लक्षणा है। मन वास्तव में छूबा नहीं । उसका लक्ष्यार्थ यह है कि मन कृष्ण के सौन्दर्य के वशीभूत हो गया । ‘रूप के घेरो’ का लक्ष्यार्थ यह है कि एक बार देखने के बाद गोपी का हृदय कृष्ण के स्वरूप से प्रभावित हो गया है ।

बार ही गौरव बैचिरी बाजु हूं मार के मुह चढ़े कत माँढी ।^३

मुह चढ़ने में रुद्धि लक्षणा है ।

‘कालिह पर्यो मुरली-धुनि में रसखानि जू कानन नाम हमारी ।

ता दिन ते नहिं धीर रह्यो जा जानि लयो बति कीनो फंवारी ।

गांवन गांवन में जब तो बदनाम भई तब तो के किनारी ।

तो तजनी फिरि फेरि कहीं पिय पेरो वही जा ठौंकि नगारी ॥^४

१. काव्य-दर्पण, पृ० २२

२. पु० १०, २८

३. पु० १०, ४१

४. पु० १०, ५५

इस पद में रसखान ने तीन बार रुढ़ि-लक्षणा का सफल प्रयोग किया है। वास्तव में नगाड़ा ठीका नहीं गया। कहने का तात्पर्य यह है कि बात सब में प्रसिद्ध हो गई है।

कहांलों सयानी चंदा हाथन क्षिमाखो ^१

चन्द्रमा को हाथ से क्षिमाया नहीं जा सकता। चन्द्रा को क्षिमाने में लक्ष्यार्थ बात क्षिमाने से है। इस पंक्ति में रुढ़ि लक्षणा की चमत्कारिक ढंग से व्यक्त किया गया है।

‘जांस से जांस लड़ी जवहीं तब तों ये रहैं जुंवा रंग भीनी।’ ^२

यहां जांस लड़ने का लक्ष्यार्थ दर्शन होने से है। रसखान के काव्य में रुढ़ि लक्षणा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ये प्रयोग भाव एवं भाषा को सुन्दर बनाने में सहायक हुए हैं।

प्रयोजनवती-लक्षणा

प्रयोजनवती लक्षणा वह है जिसमें किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए लक्षणा की जाय। ^३ रसखान के काव्य में प्रयोजनवती लक्षणा के प्रायः सभी पैरों के दर्शन होते हैं।

वा इवि रसखानि विलोकत वारत कामकला निधि कौटी। ^४

कृष्ण-रूप के सामने करौड़ों कामदेवों और चन्द्रमा के सौन्दर्य वारने से प्रयोजन कृष्ण को अधिक रूपवान सिद्ध करना है।

मैं तबही निकसी घर तैं तकि नैन बिताल की चौट चलाई। ^५

चौट चलाने से प्रयोजन प्रहार करने से है। नयनों के कटाक्ष-प्रभाव का यहां वर्णन है।

१. सु० १०, १००

२. सु० १०, १८१

३. काव्य-दर्पण, पृ० २३

४. सु० १०, २१

५. सु० १०, ३०

जाजु ही बारक लैहू दही कहि कै कहु नैनन में बिहंसी है ।

बैरिनि बाहि मई मुसकानि जु वा रसखानि के प्रान बसी है ।^१

‘नैनन में बिहंसने’ में शरारत के लक्ष्यार्थ द्वारा प्रयोजनवती लक्षणा है ।
बैरिनि में मुसकान के दुखदायी होने की व्यंजना है । मुसकान वेदना का कारण बन गई ।

हार हिये भरि भावन सी पट दीने लला वचनामृत बोरी ।^२

वचनामृत का प्रयोजन प्रेम भरे वचनों से है ।

मेरी तुनी मति बाइ अली उहां जौनी गली हरि गावत है ।

हरि लैहै बिलोक्त प्रानन कों पुनि गाढ़ परें घर आवत है ।

उन तान की तान तनी ब्रज में रसखानि तयान सिखावत है ।

तकि पाय धरौ रपटाय नहीं वह चारौ सी डारि फंदावत है ।^३

द्वितीय पंक्ति में प्रयोजनवती गौणी लक्षणा है और चतुर्थ पंक्ति में चैतावनी द्वारा कि तुम मुरली की ध्वनि सुन कर फिसल न जाओ, उभल कर बली में प्रयोजनवती शुद्ध लक्षणा है ।

उपादान लक्षणा

जहां वाक्यार्थ की संगति के लिए अन्य अर्थ के लक्षित किये जाने पर भी अपना अर्थ न छोटे वहां उपादान लक्षणा होती है ।^४ रसखान के काव्य में उपादान लक्षणा के सफल प्रयोग के दर्शन होते हैं ।

अंत तैं न जायो याही गांवरे को जायो

मारें बापरे जिंजायो प्याइ दूध बारे बारे को ।

जौइ रसखानि पहिचानि पहिचानि कानि जांठि चाहै,

लौचन नचावत नवैया दारे दारे को ।

ध-----

१. सु० १०, ३८

२. सु० १०, २७

३. सु० १०, ६०

४. काव्य-दर्पण, पृ० २४

मेया की सी पीच कछू मटकी उतारे को न

गौरस के डारे को न चीर चीरि डारे को ।

यह दुख भारी गहै छार हमारी मांफ,

नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को ।^६

तीसरी पंक्ति में उपादान लक्षणा है । द्वार द्वार न चनेवाला आज हमारे सामने बाँहें नचा रहा है । उपादान लक्षणा से विदित हो रहा है कि वह हमारे साथ झूल कर रहा है ।

लक्षणा लक्षणा

जहाँ वाच्यार्थ की सिद्धि के लिए वाच्यार्थ अपने को झौड़ कर केवल लक्ष्यार्थ को सूचित करे, वहाँ लक्षणा लक्षणा होती है ।^१

पै रखखानि वही मेरो साधन, बीर त्रिलोक रहौ कि नसावौ ।^२

यहाँ त्रिलोक से लक्ष्य शेष जो कुछ भी है उस ऐश्वर्य की मुझे कामना नहीं यहाँ कार्यकारक सम्बन्ध से लक्षणा लक्षणा है ।

मांगत दान में जान लियो तु कियो निलजी रख जीवन सावौ ।^३

‘रख जीवन’ खाने की वस्तु नहीं है । इसका लक्ष्यार्थ रति क्रीड़ा से है । काम रति के आनन्द की व्यंजना का गई है । वाच्यार्थ के त्याग से यहाँ लक्षणा लक्षणा है ।

जहदजहल्लक्षणा

जहाँ पर किसी शब्द का वाच्यार्थ अंशतः स्वीकृत किया जाता है और अंशतः बाधित होता है वहाँ जहदजहल्लक्षणा होती है । इसी विशेषता के कारण इसे भाग त्यागलक्षणा भी कहते हैं । रखखान के काव्य में जहदजहल्लक्षणा के भी उदाहरण मिलते हैं -

१. सु० १०, ४६

२. काव्य-दर्पण, पृ० २५

३. सु० १०, ५

४. सु० १०, ४१

जरी जनीखी वाम, हूं जारि गौने नर ।

बाहर धरति न पाम , है झलिया तुम ताक में ॥^१

'तुम ताक में' देख रहा है, इस वाच्यार्थ के होते हुए भी लक्ष्यार्थ यह निकल रहा है कि वह तुम्हें पकड़ना चाहता है । ध्वनि यह है कि तुम वावधान हो जाओ ।

नीकें निहारि कै देखे न जांखिन , हौं कबहुं मरि नैनन जागी ।

मो पक्षितावो यहै जु उखी कि कलंक लग्यो पर जंक न लागी ।^२

जहदजहल्लक्षणों के द्वारा यह चरितार्थ हो रहा है कि मैं बदनाम भी हुई किन्तु कृष्ण के जालिंजन का आनन्द भी नहीं प्राप्त हुआ । रसखान के काव्य में लक्षणा शक्ति के अनेक सफल उदाहरण मिलते हैं ।

व्यंजना शक्ति

व्यंजना शक्ति शब्द और अर्थ आदि की वह शक्ति है जो अभिधा आदि शक्तियों के शान्त हो जाने पर (अपने अपने कार्य कर चुकने के बाद क्षीण सामर्थ्य हो जाने पर) एक ऐसे अर्थ का व्यवबोधन कराया करती है जो बाध्य , लक्ष्यादिरूप अर्थों से सर्वथा एक विलक्षण प्रकार का अर्थ हुआ करता है ।^३ रसखान की भाषा पारदर्शी है । शब्दों में निबद्ध भाव अनुभूति की मूर्तता प्रदान करते हैं । नेत्रों के सामने एक सजीव चित्र खिंच जाता है । इसके लिए रसखान ने व्यंजना शक्ति का आश्रय लिया । भक्तिभाव से भरे हुए पदों में भी व्यंजना द्वारा अपने भावों का सुंद निरूपण किया है -

१. सु० १०, ६८

२. सु० १०, १३८

३. विरतास्वभिधाधातु ययाधौ बोध्यते परः

ता वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दत्यार्थादिकस्य च ॥

कहा रसखानि सुख संपति सुभार कहा

कहा तन जोगी ह्वै लगार बंग हार को ।^१

यहां यह व्यंजित हो रहा है कि समस्त ऐश्वर्य और बाहरी नियम, व्रत आदि व्यर्थ हैं । अर्थात् उनका लेवन नहीं करना चाहिये ।

ऐसे ही मर तो नर कहा रसखानि जो पै,

चित्त दै न कीनी प्रीति पीत पटवारे तों ॥^२

व्यंजना द्वारा ध्वनित हो रहा है कि कृष्ण-प्रेम के बिना सब चीजें व्यर्थ हैं ।

काहे को सोच करे रसखानि कहा करि है रवि नंद विचारो ।

ता खन जा खन राखिये माखन चाखन हारो जो राखन हारो ॥^३

यहां विवक्षितान्य पर वाच्य ध्वनित है । प्रश्नात्मक वाक्य से नकारात्मक ध्वनि यह निकल रही है कि रसखान को सोच करने की तकनीक भी आवश्यकता नहीं है ।

काग के भाग बड़े सज्जी हरि-हाथ तों ले गया माखन-रौटी ।^४

यह व्यंग्य ध्वनित हो रहा है कि कौवे जो छोटे से पक्षी का इतना बड़ा भाग्य है कि वह कृष्ण के हाथ से माखन रौटी ले गया । मुझे यह सौभाग्य भी प्राप्त नहीं ।

कौऊ न काहू की कानि करै कहु बैठक तौ जु कियो जदुरैया ।^५

प्रभाव बैठक तौ में है । वास्तव में जादू नहीं किया गया है । अर्थात्तर-संक्रमितवाच्य द्वारा 'तौ' में समत्कार है ।

१. सु० १०, ६

२. सु० १०, ११

३. सु० १०, १८

४. सु० १०, २१

५. सु० १०, २४

गौरस के मित जी रस चाहत तो रस कान्हू नैकु न पैहौ ।^१

उपर्युक्त पंक्तियों में कान्हू अभिधामूला व्यंजना है । गौरस और जी रस में रेन्ड्रिय सुख भोग, कामरति के आनन्द की व्यंजना है ।

हांसी में हार हरयो रसखानि जू जी कहूं नैकु तगा टुटि जैहैं ।

रकहि मोती के मोल लला खिगरे ब्रज हाटहि हाट बिकैहैं ॥^२

वाक्य ध्वनि यह है कि यदि हमारा हार टूट गया तो तुम्हारा बड़ा अपमान होगा । नायिका के मन में विद्यमान कृष्ण विषयक प्रेम की भी व्यंजना हो रही है ।

करिये उपाय बांस डारिये कटाय

नाहिं उपजौ बांस नाहिं बाजे फिरि बांजुरी ।^३

यहां लौकीकित के आधार पर मुरली को समूह नष्ट करने की व्यंजना है ।

मोहन के मन भाइ गयो एक भाइ सों खालिनें गोधन गायो ।

ताकों लग्यो चट, चौहट सों दुरि बीचक गात सों गात बुवायो ।

रसखानि लही अनि चातुरता बुपचाप रही जब लीं घर बायो ।

नैन नबाइ चितै मुसकाइ तु बीट ह्वै जाइ अंगूठा दिखायो ।^४

इस पद में गौपी की बुद्धिमानी की व्यंजना हो रही है । वह कृष्ण की सब चेष्टाओं पर चुप रही किन्तु घर आने पर उसने नयन नचा कर मुसकरा कर अंगूठा दिखा दिया । यहां पर व्यंजना है कि जब कृष्ण इसका कुछ नहीं कर सकते। साथ ही गौपी की शरारत और चातुर्य भी ध्वनित हो रहे हैं ।

नवरंग अनंग मरी कवि सों वह मूरति बांलि गड़ी ही रहे ।

वक्तियां मन की मन ही में रहे। क्षतिया उर बीच बड़ी ही रहे ।

१. सु० १०, ४२

२. सु० १०, ४५

३. सु० १०, ५४

४. सु० १०, १०४

तबहुँ रसखानि सुजान जली नलिनीदल बूंद पड़ी ही रहे ।

जिय की नहिं जानत हौं सजनी रजनी बंशुवान लड़ी ही रहे ।^१

नवरंग में अतिशय सौन्दर्य की जो नित्य नर रूप में दिखार देता है ,
व्यंजना हो रही है। 'बांखि गड़ी ही रहे' अर्थात् बांख में ऐसी बसी है कि छिलती
ही नहीं है । बांख में कोई चीज पड़ने से पीड़ा होती है । यहाँ कृष्ण प्रेम के
कारण कसक हो रही है । रजनी में एकान्त हो जाने पर सब के तो जाने के
उपरान्त अश्रुओं में किसी प्रकार की बाधा न पड़ती । यहाँ नायिका के रोदन के
साथ-साथ प्रेम की अतिशयता की व्यंजना है ।

कौऊ रही पुतरी जी खरी कौउ घाट डरी कौउ बाट परी जु ।^२

यहाँ गोपियों के किंर्त्तव्यविमूढ़ हो जाने की व्यंजना है ।

पै कहा करी वा रसखानि बिलौकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै ।^३

प्रेमिक नायिका के प्रेमावशीभूत होने की व्यंजना है ।

लखि नैन की कोर कटाइ चलाइ के लाज की गांठन खोलत है ।^४

यहाँ लज्जा के बन्धनों को तोड़ देने की व्यंजना है । उनके कटाघा के
प्रभाव से लज्जा के बन्धन टूट गये हैं । लज्जा की पराकाष्ठा की हृदयस्पर्शी अभि-
व्यंजना है ।

मट सुंदर स्याम गिरौमन मोहन जोहन में चित चौरत है ।

अवलोकन बंक विलोकन में ब्रज बालन के दुग जोरत है ।^५

यहाँ प्रेम के वशीभूत होने की व्यंजना है ।

'मोहनी मोहन हौं रसखानि अचानक भेंट मई बन माहीं ।

जेठ की घाम मई सुखधाम अनंद ही अंग ही अंग तमाहीं ।

१. सु० १०, १२७

२. सु० १०, १४२

३. सु० १०, १४३

४. सु० १०, १५७

५. सु० १०, १७४

जीवन को फल पायी मट्ट रसबातन कैलि तौ तोरत नाही ।

कान्ह को हाथ कंधा पर है मुख ऊपर मोर किरौट की दाहीं ॥^१

प्रिय की निकटता के कारण कष्टदायक वस्तुओं के सुख प्रतीत होने की व्यंजना द्वितीय पंक्ति में है । जेठ की धूप इसलिए सुख प्रतीत हो रही है कि गर्मी में कोई वन में नहीं घूमता । इसी नायक-नायिका को एकान्त में मिलने की सुविधा प्राप्त है । 'अंग ही अंग समाही' में प्रगाढ़ आलिंगन से उत्पन्न वत्सल्य सुख की अभिव्यक्ति है । रूपक और श्लेष अलंकार के द्वारा रति के वत्सल्य आनन्द को किसी भी प्रकार बाधित नहीं करना चाहती । सुख की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई प्रेयसी के रति आनन्दातिरेक की व्यंजना हो रही है ।

पिचका चलाई और जुमती भिंजाइ नैह,

लोचन नवाई मेरे अंगहि नवाई गौ ।

सासहिं नवाई मोरी नंदहि नवाई सोरी

बैरनि उवाई गोरी मोहि सकुवाई गौ ।^२

चंचल नेत्रों का प्रभाव इतना अधिक था कि सात्त्विक भावों का उदय होने लगा । 'बैरनि उवाई' में पिछले बैर का बदला निकालने की व्यंजना है । पहले कभी गोपी ने कृष्ण-प्रेम की अवहेलना की होगी । 'सकुवाने' में यह व्यंजना है कि लोग देखकर भांप गये कि उसके मन में प्रेम है ।

रसखान के काव्य का अवलोकन करने पर यह मली भांति विदित हो जाता है कि रसखान ने व्यंजना शब्दशक्ति के वाच्य से उत्तम कसे कौटि के ध्वनि काव्य की रचना की । रसखान द्वारा 'व्यंजना' के बहुधा प्रयोग से भी यह सिद्ध होता है कि भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था । रसखान के प्रसूत लाक्षणिक प्रयोगों और ध्वन्यात्मक अभिव्यंजनाशैली की सम्यक् प्रतीति न होने के कारण ही हिन्दी के स्काय आलोचकों ने उनके काव्य को अभिधा काव्य माना है ।^३

१. सु० २०, १८५

२. सु० २०, १६४

३. 'रसखान का काव्य अभिधा का काव्य है' ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्टतया सिद्ध है कि उनकी यह मान्यता सर्वथा वर्जित है ।

रसखान के काव्य में प्रयुक्त शब्द शक्तियों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने स्थान-स्थान पर काव्य-चमत्कार को उत्कर्ष प्रदान करने वाली लक्षणा और व्यंजना का उपयुक्त प्रयोग किया है । उनकी भाषा के धारावाहिक और प्रसाद-गुण पूर्ण बाह्य रूप के कारण उनके बालीचकों को यह भ्रान्ति ही गई है कि वे अभिधा के कवि हैं । तत्त्वतः अभिधा और प्रसाद में कोई विरोध नहीं है । जटिलता न होते हुए भी रसखान की रचनाओं में उपर्युक्त शब्द-शक्तियों का चमत्कार अतुल्य है ।

रसखान की भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग

मुहावरों के प्रयोग से भाषा तशक्त एवं तजीव हो जाती है। जनता के सम्पर्क में रहने वाले लेखक की भाषा में मुहावरे स्वभावतः अधिक होते हैं। मुहावरे भाषा की स्वाभाविकता के परिचायक हैं। जिस लेखक या कवि की भाषा में जितने अधिक मुहावरे होंगे उतना ही उसका भाषा पर अधिकार माना जायेगा। रसखान की भाषा में मुहावरे बहुत मिलते हैं। उन्होंने अपनी भाषा में मुहावरों का बहुत ही सहज रूप में प्रयोग किया है जिसे उनका लोक-प्रचलित भाषा पर विशेषाधिकार सूचित होता है। तजीव और प्रचलित मुहावरों से अलंकृत भाषा विशेष शक्तिमती हो गयी है।

तातें तिन्हें तजि जानि गिरयो ली गुन बीगुन गांठि परैगी ।^१

ताहि अहीर की झोहरियां झझिया भरि क्षा पैं नाच नचावत।^२

नारद से तुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावै ।^३

गुंज गरें तिर मोर पखा बरु बाल गयंद की मो मन भावै ।^४

साज समाज सबै चिरताज औ क्षाज की बात नहीं कहि जावै ।^५

दे चित ताके न रंग रच्यौ जु रह्यौ रचि राधिका रानी के रंगहि।^६

टेरत हेरत हारि पर्यौ रसखानि बतायौ न लोग लुगायन ।^७

धीर समीर कालिंदी के तीर खूयौ रहै बाजु ही डीठि पर्यौ है ।^८

१. सु० १०, ८

२. सु० १०, १२

३. सु० १०, १३

४. सु० १०, १५

५. सु० १०, १५

६. सु० १०, १६

७. सु० १०, १७

८. सु० १०, २२

जा रसखानि विलोक्त ही तहसा डरि रांग ओ बांग डायी है ।^१
 गाहन धैरत हैरत ओ पट फेरत टैरत जानि अय्यी है ।^२
 या ब्रज में सिगरी बनिता अब वारतिं प्राननि होतिं बलैया ।^३
 कौऊ न काहु की कानि करै कहु बैठक ओ जु किया जुरैया ।^४
 वा दिन ओं कहु टोना ओ कै रसखानि हिये में समाइ गयी है ।^५
 कौऊ न काहु की कानि की कानि करै सिगरी ब्रज बीर बिकाइ गयी है ।^६
 माई री वा मुख की मुसकान गयी मन बूझि फिरे नहिं फेरी ।^७
 डोरि लियो हम चोरि लियो चित डायी है प्रेम की फंद घनेरी ।^८
 छूटि गयी रसखानि लखें उर , भुलि गई तन की सुपि जाती ।^९
 फूटि गयी सिर तें दधि भाजन टूटि गौ नैननि लाज की नाती ।^{१०}
 मैं तबहीं निकली घर तें तकि नैन बिसाल की चोट कलाई ।^{११}
 टूटि गयी घर को अब बंधन छूटि गौ बारज-लाज-बढ़ाई ।^{१२}
 रसखानि कय्यी घर मो हिय में निशिवासर एक पलौ निकौना ।^{१३}
 मेरी नाम गाइ हाइ जादु किया मन में ।^{१४}
 जयपि राखन को कुल-कानि सबें ब्रज बालन प्रान पच्यी री ।^{१५}
 तथपि वा रसखानि के हाथ बिकानि की जंत लच्यी पै लच्यी री ।^{१६}
 कौ निभे कुलकानि रही हियें आवरी मुरति की खबि हाइ कै ।^{१७}
 हाहा करी सिगरी मति मेन हरी हियरा हुलवाने ।^{१८}

१. सु० २०, २२
 २. सु० २०, २४
 ५. सु० २०, २५
 ७. सु० २०, २७
 ६. सु० २०, २६
 ११. सु० २०, ३०
 १३. सु० २०, ३२
 १५. सु० २०, ३५
 १७. सु० २०, ३६

२. सु० २०, २२
 ४. सु० २०, २४
 ६. सु० २०, २५
 ८. सु० २०, २८
 १०. सु० २०, २६
 १२. सु० २०, ३०
 १४. सु० २०, ३२
 १६. सु० २०, ३५
 १८. सु० २०, ३७

बाजु ही बारक लेहु दही कहि कै कहु नैनन में विहरी है ।^१
 बैरिनि बाहि मई मुसकानि जु वा रखानि के प्रान बसी है ।^२
 पहलें दधि लै गई गोकुल में बस चारि मर नट नागर पै ।^३
 नाहिं री वा मटु क्यों करि कै वन पैठत पाखी लाज उम्हारन ।^४
 वार हीं क गोरत बैचि री बाजु तुं माझै मुहु चढे कत भाँडो ।^५
 पाळे परी में बकेली ली, ला लाज लियौ तु कियो मन भायो ।^६
 रौक्त ही बच में रखानि पधारत हाथ महा दुस पैही ।^७
 जैह जो भूषन काहु तिया को तौ मौल हला के ला न बिकै ही ।^८
 लावन नचावत नैया द्वारे द्वारे को ।^९
 तैरो न जात कहु दिन राति विचारे बटोही की बाट परी री ।^{१०}
 यह जाको लो मुस चंद उमान कमान लो मोह गुमान ही ।^{११}
 स्कै तुनि लौट गई एक लौट-पौट मई ।^{१२}
 एकनि कै दुगनि निकलि बार बांजु री ।^{१३}
 नाहिं उपजैगौ बांस नाहिं बाजै फेरि बांजुरी ।^{१४}
 ता दिन तैं नहिं धीर रह्यौ जा जानि ल्यौ अति कीनौ पवारो ।^{१५}
 गांवन गांवन में अब तौ बदनाम मई खबर्तों कै किनारी ।^{१६}
 तौ उज्जनी फिरि-फेरि कहीं पिय भरो वही जा ठौकि नगारी ।^{१७}

१. पु० १०, ३८
 ३. पु० १०, २६
 ५. पु० १०, ४१
 ७. पु० १०, ४४
 ९. पु० १०, ४६
 ११. पु० १०, ५३
 १३. पु० १०, ५४
 १५. पु० १०, ५५
 १७. पु० १०, ५५

२. पु० १०, ३८
 ४. पु० १०, ४०
 ६. पु० १०, ४३
 ८. पु० १०, ४४
 १०. पु० १०, ४८
 १२. पु० १०, ५४
 १४. पु० १०, ५४
 १६. पु० १०, ५५

बांसुरी में उनि मेरोई नांव गुम्वालिन के मिठा टेरि गुनायो ।^१
 कैरी करीं रसखान नहीं हित नैन नहीं चित चौर चुरायो ।^२
 काननि दै अंगुरी रहियो जवहीं मुरली धुनि मंद बजै है ।^३
 मिलि बाजौ सबे सखी, भागि चलीं जब तो ब्रज में बंसुरी रहि है ।^४
 बाजु मट्ट एक गोपवधु भई वावरी नेकु न अंग तम्हारे ।^५
 वहि बांसुरी की धुनि कान परीं कुलकानि हियो तजि भाजति है ।^६
 बंसी बजावत जानि कढ़ी तो गली पै बली कहु टोना तो डारै ।^७
 हरि चितै, तिरही करि दृष्टि चलीं गयो मोहन मुठि तो मारै ।^८
 तान पुनी जिनहीं तिनहीं तबहीं तित लाज बिदा करि दीनी ।^९
 मनभावन चितचौर पलक ओट नहिं सहि सकीं ।^{१०}
 रते लाज बिकाज करीं रसखानि की काहे को जारे पै जारौ ।^{११}
 तो रसखानि तनैह लग्यो कौउ एक कह्यो कौउ लाख कह्यो री ।^{१२}
 ये ब्रज लोग तो कौन ती बात चलाइ के जी नहिं नैन चलावत ।^{१३}
 तू न कहै न कहै तो कहैं हों कहूं न कहैं तेरे पांय परांगी ।^{१४}
 हेर्यो लला ललचाइ के मो तन जोहन की चकडोर भइ हई ।^{१५}
 होत कहा अब के पक्षितारं जी हाथ तें छुटि गई लरिकार ।^{१६}
 बाहर घरति न पाय, है छलिया तुव ताक में ।^{१७}

१. सु० १०, ५८

२. सु० १०, ५८

३. सु० १०, ६१

४. सु० १०, ६४

५. सु० १०, ६५

६. सु० १०, ६७

७. सु० १०, ६८

८. सु० १०, ६८

९. सु० १०, ६८

१०. सु० १०, ७७

११. सु० १०, ८०

१२. सु० १०, ८३

१३. सु० १०, ८४

१४. सु० १०, ८६

१५. सु० १०, ८२

१६. सु० १०, ८६

१७. सु० १०, ८८

कहाँ लीं स्यानी चंदा हाथन शिपाखो ।^१
 नैन नचाइ चितै मुसकाइ तु बीट ह्वै जाइ अंगूठा दिखायो ।^२
 ताकीं लग्यो चट, चौहट तौं दुरि बीचक गति तौं गात गुवायो ।^३
 आवरी बूफेँ असीमति तौं यह होहरा जायो कि मैव मंगायो ।^४
 सीतल के भाग बढ़यो ब्रज में जिन लुटत है निजि रंग धनैरी ।^५
 लालहि लालि कियेँ बसियां गहि लालहि काल तौ क्योँ मरेँ रौते ।^६
 नंद के लालिले ढाँकि है सीत हहा हमरो बस हाथ मार्यो है ।^७
 जो कबहुँ मग पाव न दैत तु तौ हित जउन जापुन गौने ।^८
 ऐसी मनौहर प्रीतम के तरुनी बरुनी पग पौछे नवीनी ।^९
 रसखानि न लागत तौहिँ कहुँ अब तेरी तिया किनहुँ मति दीनो ।^{१०}
 फटका फटकी में फटी पटुका दरकी अंगिया मुक्ता फरि कै ।^{११}
 वा मुसकान पै प्रान दियो जिय जान दियो वहि तान पै प्यारी ।^{१२}
 मान दियो मन मानिक के संग वा मुख मंजु पै जीवन वारी ।^{१३}
 कौन को सीस सिखी सजनी अजहुँ तजि दै बलि जाउं तिहारी ।^{१४}
 रसखानि मई मधु की मसियां अब नैह को बंधन क्योँ हुँ छुटे ना ।^{१५}
 नवरंग अनंग मरी कबि तौं वह मुरति बाँसि गड़ी ही रहै ।^{१६}
 बतिया मन की मन ही में रहै, कतिया उर बीच बड़ी ही रहै ।^{१७}

१. सु० १०, १००

२. सु० १०, १०१

३. सु० १०, १०२

४. सु० १०, १०४

५. सु० १०, १०६

६. सु० १०, १०७

७. सु० १०, ११०

८. सु० १०, ११३

८. सु० १०, ११४

१०. सु० १०, ११४

११. सु० १०, ११८

१२. सु० १०, १२४

१३. सु० १०, १२४

१४. सु० १०, १२५

१५. सु० १०, १२६

१६. सु० १०, १२७

१७. सु० १०, १२७

वा मुख की मुसकानि भट्ट जंखियानि ते नैकु टरि नहिं टारी ।^१
 जो पलकें पल लागति हैं पलही पल मांफ पुकारें पुकारी ।^२
 मोहन रूप इसी बन डोलति घुमति री तजि लाज विचारी ।^३
 रंग मरी मुख की मुसकान लखैं उसी कौन जु देह सम्हारी ।^४
 मन मनोहर मन बड़े सखि सैननि ही मन मेरी हरयो है ।^५
 गेह के काज तज्यौ रसखानि हियें ब्रजराज कुमार बरयो है ।^६
 बोलैं बिना नहिं चैन परै रसखानि तुनैं कल ओनन पावै ।^७
 चैन नही रसखानि दुहुं विधि मूली तबै न कहु बनि जावै ।^८
 पै गिरै ब्रज के हरि ही हरि ही के हर् हियरा हरि लीने ।^९
 तो तुनि जात रही मुख मोरि , जिठानी फिरै जिय में रिग पागी ।^{१०}
 मो पक्षिवावो यहै जु उसी कि कलंक लग्यौ पर जंक न लागी ।^{११}
 जो कौउ चाहै मली अपनो तो तनैह न काहुं तों कीज्यौ माई ।^{१२}
 कौऊ रही पुतरी ती खरी कौउ घाट डरी कौउ बाट परी जु ।^{१३}
 समुझै न कहु अजहुं हरि तो ब्रज नैन नचार नचार हो ।^{१४}
 उन तो अपने अपने घर की रसखानि मली बिधि राह लई ।^{१५}
 कहु मोहिं कों पाप परयो पल में पग पावत पौरि पहार मई ।^{१६}
 बेरी होति एक बार कुंजनि-दिखायो की ।^{१७}

१. गु० २०, १२६
 २. गु० २०, १३०
 ३. गु० २०, १३४
 ४. गु० २०, १३५
 ५. गु० २०, १३७
 ६. गु० २०, १३८
 ७. गु० २०, १३८
 ८. गु० २०, १४२
 ९. गु० २०, १४६
 १०. गु० २०, १४७

१. गु० २०, १२६
 ४. गु० २०, १३०
 ६. गु० २०, १३४
 ७. गु० २०, १३६
 १०. गु० २०, १३८
 १२. गु० २०, १३८
 १४. गु० २०, १४३
 १६. गु० २०, १४६

वह ब्रज राजकुमार , हिय जिय नैननि में बस्यो ।^१
 मैं जब तैं कुलकानि तजी तु बजी ब्रजमंडल मांह दुहार ।^२
 लखि नैन की कौर कटाइ चलाइ कै लाज की गांठन सोलत है ।^३
 रसखानि लखें मन बूझि गयो मधि रूप के सिंधु कलोलत है ।^४
 जाहि बिलोक्त लाज तजी कुल छूटी है नैननि के बल चाली ।^५
 दीर्घ बंक विलोकनि की अवलोकनि चोरत चित को बेना ।^६
 हौं रसखानि बिकाइ गई उन मोल लई अपनी मुसकंदा ।^७
 यातैं कहूं सिख मान भट्ट कहै हरनि तेरे ही पैरे परंगी ।^८
 बेधत हैं हिय तीक्ष्ण कौर कुमार गिरी तिय कोटिक हेली ।^९
 रौरि परी अब की ब्रज मंडल कुंडल गंडनि कुंतल केली ।^{१०}
 अवलोकन बंक विलोकन में ब्रज बालन के दृग जोरत है ।^{११}
 रसखानि महावत रूप ललने को, मारग तैं मन मोरत है ।^{१२}
 रसखानि परी मुसकानि के पाननि कौन गनै कुलकानि बिचारी ।^{१३}
 धाश्ल धूमि कुमार गिरी रसखानि सम्हारति अंगनि नाहीं ।^{१४}
 रतै पै वा मुसकानि की डाँडी बजी ब्रज में अबला कित जाहीं ।^{१५}
 बलि कोटि कियो हटकी न रही बटकी अंखियां उटकी लट लीं ।^{१६}
 लोलि रो नैननि , लोलों कह वह मुरति नैननि मांझ बसी है ।^{१७}

१. पु० १०, १५१

२. पु० १०, १५७

३. पु० १०, १५८

४. पु० १०, १६१

५. पु० १०, १७०

६. पु० १०, १७१

७. पु० १०, १७३

८. पु० १०, १७४

९. पु० १०, १७६

१. पु० १०, १५६

४. पु० १०, १५७

६. पु० १०, १५८

८. पु० १०, १६८

१०. पु० १०, १७०

१२. पु० १०, १७१

१४. पु० १०, १७३

१६. पु० १०, १७५

बांस तौ बांस लड़ी जवहीं तब तौ ये रहैं जुंवा रंग भीनी ।^१
 देखत ही रखानि नैननि जुभी हों सी ।^२
 रस बरसावैं तन तपनि बुझावैं नैन ।^३
 जेठ की घाम मई सुखघाम अनंद ही अंग ही अंग समाहीं ।^४
 राधिका श्री मुरलीधर की मधुरी मुसकानि के ऊपर वारे ।^५
 लोग चितै चित दै चितै नह तैं मन मांछि निहाल मई है ।^६
 ठोढ़ी उठाइ चितै मुसकाइ मिलाइ के नैन लगाइ लई है ।^७
 फागुन लाग्यो वसो जव तैं ब्रज मंडल धूम मच्च्यो है ।^८
 नारि नवेली बचै नहिं एक विशेष यहै सबै प्रेम अंच्यो है ।^९
 तांफि सकारै वही रखानि सुरंगगुलाल उ खेल रच्च्यो है ।^{१०}
 को सज्जी निलजी न मई जरु कौन मट्ट जिहि मान वच्च्यो है ।^{११}
 हियौ छुलाइ रखानि तान गाइ बांकी,^{१२}
 बांचि रचाइ एक धूमहिं मचाइ गी ।^{१३}
 गाल गुलाल लगाइ लगाइ के अंक रिफाइ बिदा करि दीनी ।^{१४}
 बार बार कहनी कहि के तबहीं नट नागर नंद कुमार सी ।^{१५}
 वा रखानि गुनो गुनि के हियरा सत टूक ह्वै फाटि गयो है ।^{१६}
 लोग लगाइ सबै ब्रज मांछि कहैं हरि चैरी को चैरी मयो है ।^{१७}

१. पु० १०, १८१
 २. पु० १०, १८२
 ३. पु० १०, १८७
 ७. पु० १०, १८८
 ८. पु० १०, १८९
 ११. पु० १०, १९२
 १३. पु० १०, १९४
 १५. पु० १०, २०२
 १७. पु० १०, २०५

२. पु० १०, १८२
 ४. पु० १०, १८५
 ६. पु० १०, १८८
 ९. पु० १०, १९२
 १०. पु० १०, १९२
 १२. पु० १०, १९४
 १४. पु० १०, १९७
 १६. पु० १०, २०४

जार्न कहा हम मुह तबै समुझी न तबै जब हीं बनि वारै ।^१
 चौचति हैं मन ही मन री जब कीजै कहा बतियां जु गंवारै ।^२
 बेरी को चेटक देखहु री हरि बेरी कियो धौं कहा पढ़ि मारै ।^३
 ठेती निकारि हिय को तबै , नक देदी के कौड़ी पिरार के देही ।^४
 देती नचाइ के नाच वा रांड कौं, लाउ रिभावन को फल बेती ।^५
 बेती उदां रसखानि लिये कुबरी के कोजनि सुल जो भेती ।^६
 नैम कहा जब प्रेम कियो तब नाचिये सोइ जो नाच नचावै ।^७
 गज लाल कपाल की भाल विशाल सो गाल बजावत आवत है ।^८
 नै तक वै रास भीजन देही दिना दस के अलबैले लला हो ।^९
 नाहक नारीतु रारि बढ़ावति गारि दिये फिरि आपहिं देही ।^{१०}
 नौन की न गोन लीहै वादी हूं न लादी हो ।^{११}

इस प्रकार रसखान के काव्य में मुहावरों के अफल प्रयोग के दर्शन होते हैं । कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कवि ने उपर्यास उनको अपने काव्य में लुप्त करने का प्रयत्न किया है । मुहावरों द्वारा रसखान ने अपनी बात की पुष्टि बड़े सुन्दर ढंग से की है । कहीं कहीं एक ही पंक्ति में एक से अधिक मुहावरे प्रयुक्त किये हैं जिससे उनकी भाषा में मार्मिक प्रभावशालिता आगयी है । मुहावरे रूपी नगीनों को रसखान ने इतने सुन्दर ढंग से जड़ा है कि एक भी नगीना निकालने पर पद रूपी आभूषण की कलकलान्ति में कमी आ जाती है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि रसखान की भाषा में मुहावरे सहज रीति से प्रयुक्त हुए हैं जिससे वर्ध व्यंजना के साथ-साथ भाषा-सौंदर्य की स्वाभाविक अभिवृद्धि हुई है । रसखान ने मुहावरों के रूप बिगाड़ने का प्रयत्न नहीं किया। इसका उपरिणाम यह हुआ है कि उनकी भाषा की सुबोधता और स्वच्छता सर्वत्र ही बनी हुई है ।

-
- | | | |
|----------------|----------------|-----------------------|
| १. सु० २०, २०६ | २. सु० २०, २०६ | ३. सु० २०, २०६ |
| ४. सु० २०, २०७ | ५. सु० २०, २०७ | ६. सु० २०, २०७ |
| ७. सु० २०, २०८ | ८. सु० २०, २०८ | ९. सु०-२०, दानलीला, १ |
| १०. दानलीला, ४ | ११. दानलीला, ८ | |

उक्ति-वैचित्र्य और वक्रोक्ति-विधान

वास्तव में उक्ति-वैचित्र्य और वक्रोक्ति का सम्बन्ध कवि की चमत्कारिक अभिव्यक्ति से है। आचार्य कुंतक ने इसी से वक्रोक्ति को तब कुछ मान कर उसे काव्य के प्राण के रूप में स्वीकार किया। अन्य आचार्यों ने वक्रोक्ति को जो जलंकार की संज्ञा के अन्तर्गत रखा है।^१

रसखान के कथन में वक्रता कम मिलती है, क्योंकि उनकी काव्य शक्ति कथन प्रणाली के चमत्कार उत्पादन में व्यय न होकर भावाभिव्यंजना में लगी है। स्वभावतः कुछ वक्रोक्तियों की निबन्धना हो गई है -

गौरव के मिस्र जो रस चाहत तो रस कान्हू नैकु न पैहीं।^२
यहां गोपी के कथन की वक्रता दर्शनीय है।

कृष्ण के दधि मांगने के बहाने गोपियों से छेड़ छड़ करने पर गोपी कहती है -

जैहें जो भूषन काहु तिया को तो मौल ला के ला न बिकै हौ।^३
प्रमरगीत-प्रसंग के अन्तर्गत गोपियां वक्रोक्ति के द्वारा उद्धव से कहती हैं -
कारे बिसारे को चाहैं उतारयो बरे बिष बावरो राख लगार के।^४

वक्रोक्ति द्वारा गोपियों के शब्दों से यह ध्वनित हो रहा है कि तुम कितने भी उपाय कर लो किन्तु कृष्ण के प्रभाव एवं प्रेम को हम से बलग नहीं कर सकते।

सूरदास की गोपियां वाम्बैदग्ध्य के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी उक्तियां उद्धव को नत मस्तक कर देती हैं। वे पूछ बैठती हैं, उद्धव तुम कौन देश के वासी तथा मधुवन तुम कित रहत हो।

१. साहित्यदर्पण, पृ० ६७४

२. सु० २०, ४२

३. सु० २०, ४४

४. सु० २०, २०४

रसखान की गौपियां भी उक्ति वैचित्र्य में किसी से कम नहीं हैं। संभवतः रसखान के काव्य में उक्ति वैचित्र्य की मार्मिकता को देख कर ही डा० सावित्री सिन्हा जी ने कहा है - 'रसखानि के वैदग्ध्य में ध्वनि की अपेक्षा उक्ति वैचित्र्य अधिक है।' गौपियां कृष्ण के उल्टे रूप और बांकी जदा फस् से प्रभावित हैं। कृष्ण का सौन्दर्य न देखते बनता है न कहते। लोक लाज की चिन्ता न करके कृष्ण को समर्पित होना चाहती हैं किन्तु लज्जा के जा जाने से काम खराब हो जाता है। यहाँ उक्ति का पश्चात्ताप हो रहा है -

बाबु री नंदलाल निकल्यो तुलसीबन तें बनकें मुसकातो ।
देखें बने न बने कहते जब वो तुल जो मुख में न समातो ।
हाँ रसखानि विलोकिबै की कुलकानि के काज कियो हिय हातो ।
बाई गई अलबेली अचानक र भट्ट लाज की काज कहा तो ॥^१

फिशोरावस्था की और बढ़ती हुई बालिका की भावनाओं में वयःसंधि स्थिति की बल्लहता और चंचलता की ध्वनि इस पद में मिलती है -

बैरनि हूं बरजी न रहे अबहीं घर बाहिर बैस बड़ेगी ।
टोना तु नंद टुटोना पड़े सजनी तुहि देखि विशेष पड़ेगी ।
हसि है तसि गोकुल गांव तबै रसखानि तबै यह लोक रड़ेगी ।
बैत चढ़े घरहीं रहि बैठि अटा न चढ़े बदनाम चढ़ेगी ॥^२

सपत्नी-ज्वाला से अपने आप में ही जलती हुई जबला की विवश भावनाओं की उक्ति वैचित्र्य के द्वारा सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है -

सौतिन-भाग बढ़यो ब्रज में जिनि लूटत हैं निजि रंग घनेरी ।
मो रसखानि लिखी बिधना मन मारि के आपु बनी हों अहेरी ॥^३
यहाँ उक्ति की वक्रता देखने योग्य है। इसमें गुरु व्यंग्य छिपा हुआ है।

१. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यञ्जावाद, पृ० १८५

२. पु० २०, १४४

३. पु० २०, ८५

४. पु० २०, १०६

रसखान के काव्य में हमें सुन्दर उक्तियों के दर्शन होते हैं। निम्नांकित पंक्तियों में सखी की वक्रोक्ति मुहावरे के प्रयोग से और प्रभावोत्पादक हो गई है -

बरी बनीखी वाम तू बार्ह गौने नई ।

बाहर धरति न पाय है झलिया तुव ताक में ॥^१

स्वाभाविकता एवं चित्रात्मकता

रसखान की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। उन्होंने शब्दों को तोड़-मरोड़ कर दुर्लभ बनाने का प्रयास नहीं किया। उनकी भाषा सुकुमार तथा सरल है। साथ ही भावाभिव्यक्ति में सहायक है। पाठक की दूर की कौड़ी नहीं लानी पड़ती -

‘वा लकुटी बरु कामरिया पर राज तिहुं पुर की तजि डारों ।

जाठहुं सिद्धि नवीं निधि की सुख नंद की गार चराच विहारों ।

ऐ रसखानि जब्बे इन नैनन ते ब्रज के बनबाग निहारों ।

कौटिक ये कलधौत के धाम करीठ कीकुंज ऊपर वारों ॥^२

स्वाभाविक शब्दावली के प्रयोग से रसखान की भाषा गतिमयी हो गई है। गोपियों की समस्त उक्तियाँ स्वाभाविक भाषा में मिलती हैं। प्रेम के गम्भीर तत्वों के निरूपण में भी रसखान स्वाभाविकता का दामन नहीं छोड़ते। कहीं ऐसा प्रतीत नहीं होता कि रसखान उपयास रचना कर रहे हैं। उनका एक एक पद्य उनके अन्तःस्थ की अनुभूति प्रतीत होता है। निम्न पद्य में कृष्ण की रसीली मुत्तकान, कटीली चितवन, बंक विलोकन, अमीनिधि बैन, बांतरी की मधुर ध्वनि द्वारा प्रभावित गोपी की दशा की मार्मिक अभिव्यक्ति स्वाभाविक भाषा में हुई है।

बांकी विलोकनि रंग भरी रसखानि खरी मुत्तकानि गुहारें ।

बोलत बोल अमीनिधि बैन महारत -रेन बुनें सुखदारें ।

१. पु० २०, ६८

२. पु० २०, ३

सज्जी पुर-बीथिन में पिय-गोहन लागी फिरँ जित ही तित थाई ।

बांझुरी टेरि तुनाइ जली अपनाइ लई ब्रज राज कन्हारै ।^१

अन्तिम पंक्ति की स्वाभाविकता दर्शनीय है । रसखान के काव्य में कठोर शब्दों का अभाव है । कोमल एवं सरल शब्दों के प्रयोग ने उसकी भाषा को और भी स्वाभाविक बना दिया है । कहीं कहीं 'टवर्ग' का भी प्रयोग मिलता है किन्तु वह भी भावाभिव्यक्ति में सहायक हुआ है । वहाँ स्वाभाविकता की मनोरम कृता दिसाई पड़ती है -

*वह घेरनि धेनु जबैर सबैरनि फेरनि लाल लकुटनि की।

वह तीक्ष्ण चञ्चु^{मध्यम} की हवि मोरनि माँह मुकुटनि की ।

वह लाल की चाल बुभी चित में रसखानि संगीत उधुटनि की ।

वह पीत पटक्कनि की बटकानि लटक्कनि मोर मुकुटनि की ॥^२

संक्षेप में कहा जा सकता है कि रसखान की भाषा भावानुरूप सरल , स्वाभाविक एवं सरल है । वर्ध को समझाने को दूर की कौड़ी नहीं लानी पड़ती न ही मस्तिष्क एवं बुद्धि को व्यायाम की आवश्यकता प्रतीत होती है । कवि बड़े सहज ढंग से मन में उठे विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति सरल एवं स्वाभाविक भाषा के माध्यम से करता है । रसखान ने अपनी भाषा में कर्कश शब्दों का प्रयोग न करके उसे दुरुह होने से बचा लिया । उसमें ब्रजभाषा की साहित्यिक शब्दावली के साथ साथ लोक भाषा कन्न या ब्रज बोली की स्वाभाविक शब्दावली के भी दर्शन होते हैं ।

रसखान की भाषा की बड़ी विशेषता उसकी चित्रात्मकता है । शब्दों को इस प्रकार संजोया है कि वे हमारे सामने एक दृश्य उपस्थित कर देते हैं । रसखान ने जालम्बन की चैष्टाओं का निरूपण करते हुए स्वतन्त्र शब्द चित्रों का निर्माण अधिक किया है । जालंकारिक चित्र उनके काव्य में कम मिलते हैं । कृष्ण के वन से गाय चरा कर वापिस आते समय का चित्रण देखिये -

१. सु० २०, ६६

२. सु० २०, २६२

गौरज बिराजे भाल लल्लही बनमाल,

बागे गैयां पाछे ग्वाल गावै मृदु बानि री ।

तैसी धुनि बांजुरी की मधुर मधुर नैसी

बंक चित्तवनि मंद मंद मुत्तकानि री ।

कदम चिटप के निकट तटनी के तट

बटा चढ़ि बाहि पीत पट फहरानि री ।

रस बरसावै तन-तपनि बुझावै नैन

प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री ॥^६

प्राकृतिक उपादानों की उदायता से राधा के रूप का वर्णन रसखान ने चित्रात्मक ढंग से किया है -

‘बलि लाल गुलाब दुकूल ते फूल, बली, बलि कुंतल राजत है ।

मङ्गल समान के गुंज हरानि में किंसुक की हवि क्षाजत है ।

मुक्ता के कदंब ते खंब के मौर , पुनै पुर कोकिल लाजत है ।

यह आवनि प्यारी जु की रसखानि बसंत-सी बाज बिराजत है ॥^७

रसखान ने रास लीला का वर्णन भी बड़ी चित्रात्मक भाषा में किया है इन चित्रों में भावों की प्रधानता है । उजीवता और प्राणवत्ता की दृष्टि से उसकी तुलना अन्य कवियों के रास-चित्रण से नहीं की जा सकती , परन्तु उमें निहित सरल स्निग्धता में एक आकर्षण है । जो -

बाज मट्ट मुरलीवट के तट नंद के पांवरे रास रच्यौ री ।

नैननि नैननि नैननि तौ नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री ।

जयपि राखन की कुलकानि सबै बुझालन प्रान पच्यौ री ।

तथपि वा रसखानि के हाथ बिकानि कीं अंत लच्यौ पै लच्यौ री ॥^८

६. सु० १०, १८३

७. सु० १०, ४६

८. सु० १०, ३५

इस प्रकार रसखान की भाषा में चित्रात्मक शब्दावली का प्रयोग मिलता है जो भावों की सफल अभिव्यक्ति में सहायक है ।

धारावाहिकता

रसखान की भाषा की सबसे बड़ा विशेषता उसकी धारावाहिकता है । अर्थ पर ध्यान दिये बिना भी इनके तर्कों को पढ़ने से एक प्रकार का आनन्द मिलता है । इस आनन्द का कारण प्रसन्न पदावली भाषा है । उन्होंने शब्दों की कुशलता से संजोया है कि उनमें अनवरुद्ध स्पंदन एवं गति है । 'लाउ लैं पग पांवरिया' 'देगयो भाक्तो भांवरिया' में 'पॉरी', 'भॉरी' के स्थान पर 'पांवरिया', 'भांवरिया' होने से भाषा में स्वाभाविक प्रवाह आ गया है ।

'गुंज गरीं चिर मोर पसा जरु चाल गयंद की मो मन भावै ।

सांवरो नंद कुमार सबै ब्रज मंडली में ब्रजराज कहावै ।

राज समाज सबै चिरताज औ राज की बात नहीं कहि जावै ।

ताहि जहीर की झोहरियां झझिया मरि झझ पै नाच नचावै ॥^४

रसखान प्रवाहमयी भाषा के प्रयोग में सफल हुए हैं । उनकी भाषा का प्रवाह और गतिमयता देखने योग्य है । शब्द एक के बाद दूसरा शब्द धारावाहिकता के साथ संजोया हुआ प्रतीत होता है । निम्नलिखित पद में रसखान की भाषा की प्रवाहमयी गति देखने योग्य है -

'नव रंग अनंग मरी झबि तौं वह मूरति जांति गड़ी ही रहै ।

बतिया मन की मन ही में रहै, बतिया उर बीच बड़ी ही रहै ।

तबहुं रसखानि गुजान बली नलिनी दल बूंद पड़ी ही रहै ।

जिय की नहिं जानत हौं रजनी रजनी बसुवान लड़ी ही रहै ॥^५

उपयुक्त पंक्तियों में मधुर प्रवाह का लालित्य है । साथ ही शब्द-योजना भी सर्वथा उपयुक्त और अनुठी है ।

४. जु० २०, १५

५. जु० २०, १२७

अनुप्रास भी भाषा-प्रवाह में सहायक हुआ है। किन्तु ऐसा कहीं प्रतीत नहीं होता कि रसखान अनुप्रास के बागुह से लिख रहे हैं। मनोनुकूल स्थलों और प्रसंगों के चित्रण में रसखान ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह प्रवाहमयी है -

बाली पगे रंगे जो रंग सांवरे मो पे न आवत लालची नैना ।

धावत है उतही जित मोहन रोके उर्कें नहिं धुंधट रेना ।

काननि की कल नाहिं परे उखी प्रेम तों भीजे तुने बिन बैना ।

रसखानि मई मधु की मखियां अब नैह को बंधन क्यों हूं छुटै ना ॥^१

रसखान की भाषा का सबसे महत्वपूर्ण गुण उसका सहज स्वाभाविक प्रवाह है। रसखान की भाषा में यह प्रवाह किसी उदाम पर्वतीय नदी के समान दिखाई पड़ता है। कहीं भी बटकाव नहीं, अवरोध या बाधा नहीं।

नादात्मकता

श्रुतियों की गैयता प्रभावोत्पादन में निस्सन्देह वृद्धि करती है। उच्च श्रुति वही माना जाता है जिसमें उपयुक्त शब्द योजना और संगीत तत्त्व हो। रसखान की भाषा में नादात्मकता के दर्शन होते हैं। संगीत तत्त्व ने भावानुभूति के लिए एक सजीव और मनोरम वातावरण उत्पन्न कर दिया है। रसखान के काव्य में एक मधुर वाकार की अनुभूति होती है। रसखान के सुन्दर शब्दों एवं वर्णों के ब्यन से उनके कविर्ची और तवैर्यों में बरबस संगीतात्मकता आ जाती है। उनके समाप्त हो जाने के बाद भी संगीतात्मकता की संकृति कर्ण-कुहरों में प्रतिध्वनित होती रहती है।^२ अनुप्रास के विभिन्न रूपों के संयुक्त प्रयोग द्वारा निर्मित इस तवैये का संगीत सुनने योग्य है -

बिहर् पिय प्यारी सनेह सने छहरें चुनरी के फावा फहरें ।

सिहरे नव जीवन रंग अनंग सुभंग अपांगनि की गहरे ।

१. सु० १०, १२६

२. देखिये - रसखान (जीवन और कृतित्व), पृष्ठ १८५

बहरें रसखानि नदी रस की घहरें बनिता कुलहू महरें ।
 कहरें विरही जन बातप तों लहरें लली लाल लियें महरें ॥^४

इस पद्य की नादात्मकता दर्शनीय है । एक मंकार की सी प्रतिध्वनि हो रही है ।

रसखान की भाषा प्रवाह्य और संगीतपूर्ण है । कवि की लैसनी से निकला हुआ एक-एक शब्द लय वृज में योग दे रहा है । रसखान की भाषा का सबसे बड़ा गुण यह है कि प्रत्येक शब्द शब्द के उतार-चढ़ाव के अनुरूप लय के अनुसार बोलता है । वर्ण-संगीत के द्वारा निर्मित आन्तरिक संगीत रसखान के काव्य-माधु का सबसे प्रधान तत्व है । होली के प्रसंगों में संगीत की ध्वनि सुनाई पड़ती है -

‘खेलत माग तहाग मरी अनुरागहिं लालन कीं धरि कै ।

मारत कुंक्रम कैतरि कै , पिचकारिन में रंग कीं भरि कै ।

गैरत लाल गुलाल लली मन मोहिनि मौज मिटा करि कै ।

जात बली रसखानि बली मदमच मनौ मन कीं हरि कै ॥^२

शिव-स्तुति-प्रसंग में भी उनकी शब्दावली इसी संगीतमयी गति से चलती

है -

यह देखि घतूरे के पात चबहत बी गत तों धूलि लगावत हैं ।

बहुं और जटा अंटकै लटकै फनि तों मनी फहरावत हैं ।

रसखानि जैई चितवै चित दै तिकै दुख मजावत हैं ।

गजखाल कपाल की माल बिताली गी जावत जावत हैं ॥^३

रसखान ने इस प्रकार शब्दों को गा है कि वे नाद निकलता है -

पाँले परी में जकैली लली लला जलियो जो मन धायो ॥^४

वास्तविकता यह है कि रसखान द्वारा संयोजित संगीत के उदाहरण

में उनका पूरा काव्य रखा जा सकता है ।

१. सु० १०, १८८

२. सु० १०, १८९

३. सु० १०, २४४

४. सु० १०, ४३

*गर्व गुनी गनिका गंधर्ब बौ वारद वेष सबै गुन गावत ।
 नाम अनंत गनंत गनैत ज्यौ ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ।
 जौगी जती तपसी वरु विद्व निरन्तर जाहि समाधि लगावत ।
 ताहि बहीर की बौहरिया ब्रह्मिया भरि बाह पै नाच नचावत ।^१
 अन्तिम पंक्ति की ध्वन्यर्थव्यंजना विशेष ध्यान देने योग्य है ।
 वर्ण और शब्द की योजना द्वारा आन्तरिक संगीत के दर्शन कराना
 रसखान की भाषा की विशेषता है । प्रायः पथ में शब्द ध्वनित होते दिखाई
 पड़ते हैं :-

*या मुरली मुरलीधर की बघरान धरी बघरा न धरौंगी ।^२
 *त्यौ रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानि ।^३
 रसखान ने समान वर्ण वाले शब्दों की आवृत्ति द्वारा भाषा में प्रवाह
 और लय का निर्माण किया है -

*तैं न लख्यौ जम कुंजम तैं बनि के निकल्यौ भटक्यौ भटक्यौ री ।
 गीह्त कैसी हरा टटक्यौ हटक्यौ ब्रज लोग फिरैं भटक्यौ री ।
 को रसखानि फिरैं भटक्यौ हटक्यौ ब्रज लोग फिरैं भटक्यौ री ।
 रूप सबै हरि वा नट को हियेँ बटक्यौ बटक्यौ बटक्यौ री ॥^४
 रसखान की भाषा में नादात्मकता भावव्यंजना के अनुकूल है । उन्होंने
 केशव आदि रीतिकालीन कवियों की भांति शब्दों से सिलवाड़ नहीं किया ।
 उनकी भाषा में शब्दाग्रह नहीं । भाषा की नादात्मकता श्रुतिपेशल तथा प्रतिपाद्य
 के अनुकूल है । उसमें स्वाभाविक सौन्दर्य एवं संगीत फलकता है ।

१. सु० १०, १२

२. सु० १०, ८६

३. सु० १०, ४

४. सु० १०, १६७

गुणोचित शब्द-योजना (गुण, वृत्ति)

गुण

कहा जा चुका है कि काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित रस अनुभूति-स्वरूप है, वह आत्मा ही है। चित्त की जिस अवस्था में भावक को स्वानुभूति होती है उसे 'गुण' कहते हैं। गुण वस्तुतः रस के धर्म हैं। रस के साथ उनका अविभाभाव सम्बन्ध है। अर्थात् रस के अस्तित्व के साथ गुण का अस्तित्व अनिवार्य है और गुण के साथ रस का अस्तित्व। जिस प्रकार शरीर आदि शरीर के धर्म न होकर आत्मा के धर्म हैं, उसी प्रकार माधुर्य आदि गुण भी शब्दार्थ के धर्म न होकर रस के ही धर्म हैं। जिस प्रकार आत्मा के धर्म शरीर आदि को लोक-व्यवहार में शरीर का धर्म कह दिया जाता है, उसी प्रकार इनके धर्म माधुर्य आदि को भी काव्य के शब्दार्थ रूप शरीर का धर्म समझ लिया जाता है।

संस्कृत के काव्यशास्त्र में विभिन्न आचार्यों द्वारा गुणों की विभिन्न संस्थाएं बतलाई गई हैं। आगे चल कर आचार्य मम्मट ने तीन गुणों की प्रतिष्ठा की। परवर्ती काव्य शास्त्र में इन्हीं को आप्त मान लिया गया। वे तीन गुण हैं - माधुर्य, ओज और प्रसाद।

वृत्ति

वर्णविन्यास के क्रम को 'वृत्ति' कहते हैं। आचार्य वामन ने 'विशिष्टा पद रचना' को 'रीति' कहा है। उनका रीति-सिद्धान्त बहुत ही व्यापक है। उसके अन्तर्गत अलंकारों की योजना, दोषों का परिहार, गुण आदि बहुत कुछ है। मम्मट ने पद रचना या वर्णविन्यास के लिए 'वृत्ति' शब्द का समीचीन व्यवहार किया। ध्वनिवादियों और रसवादियों ने काव्य के प्रत्येक अंग (रस, अलंकार, वृत्ति आदि) का आपेक्षा महत्व निर्धारित कर दिया। उनका यह अभिमत संस्कृत काव्य शास्त्र का मानदंड बन गया। वैदर्भी आदि रीतियों का जो प्रतिपादन संस्कृत के काव्य शास्त्र में किया गया है उसे हिन्दी कविता पर लागू करना न्याय-संगत नहीं है। अतस्व रसज्ञान के काव्य विवेचन में विभिन्न रीतियों के बदले त्रिविध वृत्तियों की विचार-वर्चा ही संगत है, जो इस प्रकार हैं - मधुरा वृत्ति, कोमला

वृत्ति और परम्परा वृत्ति ।

माधुर्य गुण, मधुरा वृत्ति

माधुर्य गुण वृत्ति की वह दशा है जिसमें रस या भाव की अनुभूति होती है । लक्षणा के द्वारा हम उस प्रकार की रसानुभूति कराने वाले काव्य में माधुर्य गुण की चर्चा करते हैं । कन्देयालाल पौदार के शब्दों में - 'जिस काव्य रचना से अन्तःकरण आनन्द से द्रवीभूत हो जाता है, उस रचना में माधुर्य गुण होता है ।'^१ माधुर्य गुण शृंगार रस के साथ साथ शान्त रस में भी मिलता है ।

अतः, मार्मिक और मनोहर प्रसंगों के लिए मधुरा वृत्ति के अनुरूप ही शब्दों का विशेष ध्यान रखा जाता है । रसखान प्रेमोपग के गायक थे । शृंगार उनका प्रिय रस था । अतः उनकी भाषा में स्वभावतः ही माधुर्य गुण विशेष रूप से पाया जाता है । श्रीकृष्ण की किशोरावस्था की प्रेम लीलाओं के वर्णन में कौमलवृत्ति से भरी हुई भाषा के दर्शन होते हैं । कृष्ण के रूप-आन्दर्य निरूपण में माधुर्य भरा हुआ है । यथा -

मैन मनोहर बैन बजे तु सजे तन तोहत पीत पटा है ।

यौं दमकै चमकै कमकै दुति दामिनि की मनो त्याग घटा है ।

ए सज्जी ब्रज राजकुमार बटा चढ़ि फेरत लाल पटा है ।

रसखानि महा मधुरी मुख की मुतकानि करै कुल कानि कटा है ।^२

ट, ठ, ड, ढ को छोड़ कर 'क' से 'म' तक के वर्ण ड, , ण, न, म से युक्त ह्रस्व र और ण समास का अभाव या अल्प समास के पद और कौमल, मधुर रचना जो माधुर्य गुण के मूल हैं, रसखान के काव्य में पाए जाते हैं । कौमलकान्त-पदावली-युक्त माधुर्य गुण का अन्य स्वरूप देखिये -

'कैसी मनोहर बानक मोहन सुन्दर काम ते बाली ।

जाहि विलोक्त लाज तजी कुल छूटे है नैननि की चल बाली ।

१. काव्यकल्पद्रुम, भाग १, पृष्ठ ३३६

२. गु० २०, १७२

बधरा मुसकान तरंग लखै रसखानि सुधार् महा कवि खाली ।

कुंजली मधि मोहन मोहन देख्यो सखी वह रूप रसाली ।^१

कविता से दूर मधुरा वृत्ति-संयुक्त माधुर्य गुण युक्तवह ललित पद-योजना दर्शनीय है ।

बीज गुण, परम्परा वृत्ति

बीज गुण बिच की वह दीप्त दशा है जिसमें रस या भाव की अनुभूति होती है । लक्षणा के द्वारा हम इस प्रकार की रसानुभूति कराने वाले काव्य में बीज गुण की चर्चा करते हैं । कन्हैयालाल पौदार के शृङ्खल शब्दों में - 'जिस काव्य रचना के श्रवण से मन में तेज उत्पन्न होता है, उस रचना में बीज गुण होता है।^२ बीजगुण वीर रस, वीमत्स और रौद्र रस में प्रधानतः स्थित रहता है ।

रसखान के कृष्ण महाभारत के योद्धा नहीं, गोकुल के किशोर थे । रसखान ने उनके सौन्दर्य और प्रेम लीलाओं की ही चर्चा की है । कुवल्यावध में उन्होंने कृष्ण की वीरता को दिखाया है किन्तु वहाँ वीर रस का पूर्ण परिपाक न होने से बीज गुण के दर्शन नहीं होते ।

‘कंस के श्रौष की फैलि रही विगरे ब्रज मंडल मांफ पुकार ली ।

बाध गए कश्मिनी कलि के तबहीं नट-नागर नंदकुमार ली ।

दरद को रद सँचि लियौ रसखानि स्थिये महि लाइ विचार ली ।

लीनी कुठौर लगी लखि तौरि कलंक तमाल तैं कीरति-हार ली ॥^३

यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि कौंस बालक युं ही छेड़ खेल में अपने शौर्य का प्रदर्शन कर रहा है । जहाँ द्वित्व वर्णों, संयुक्त वर्णों र के संयोग और ट, ठ, ड की अधिकता हो समासाधिक्य हो और कठोर वर्णों की रचना हो वहाँ परम्परावृत्ति तथा बीजगुण होता है । रसखान के काव्य में कहीं परम्परावृत्ति

१. गु० र०, १५७

२. काव्य कल्पद्रुम, पृ० ३४०

३. गु० र०, २०२

पूर्ण शब्दावली फलकनै से बीज गुण ध्वनित होता है -

वैई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत हैं रैन दिन,

तदा तिव तदा ही धरत ध्यान गाढ़े हैं ।

वैई विष्णु जाके काज मानी मूढ़ राजा रंक,

जोगी जती हूँ के जीत लह्यौ बंग डाढ़े हैं ।

वैई ब्रजचन्द रसखानि प्रान प्रानन के,

जाके बमिलाष लाल लाल भांति बाढ़े हैं ।

जुधा के जागे बुधा के मान-मोचन ये,

तामरस-लोचन खरीचन कीं ठाढ़े हैं ।^१

रसखान के काव्य में बीजगुण प्रधान ट-वर्ग की माधुर्य गुण का सहायक बन कर आया है -

*तैं न लह्यौ जग कुंज तैं बनि के निकल्यौ मटक्यौ मटक्यौ री ।

लोहत कैसी हरा टटक्यौ बरु कैसी किरिट लै लटक्यौरी ।

को रसखानि फिर मटक्यौ हटक्यौ ब्रज लोग फिर मटक्यौ री ।

रूप तबै हरि वा नट को हियरैं बटक्यौ बटक्यौ बटक्यौ री ।^२

प्रसाद गुण, कौमला वृत्ति

प्रसाद गुण चित्त की वह प्रसन्न दशा है जिसमें रस या भाव की अनुभूति होती है । हम इस प्रकार की रसानुभूति कराने वाले काव्य में प्रसाद-गुण की चर्चा करते हैं । माधुर्य चित्त की द्रुति दशा है और बीज दीप्ति दशा । अतस्व दोनों एक साथ अवम्भव हैं । प्रसाद गुण माधुर्य के साथ भी हो सकता है और बीज के साथ भी । उक्त वैशिष्ट्य केवल इस बात से है कि यदि काव्य की भावना से तत्काल ही उसके मर्म का साक्षात्कार हो जाय और भावक को रसानुभूति होने लगे तो हम वहाँ प्रसाद गुण मानेंगे । जिस रचना में व्यक्त विचार बाग्जाल से

अथ-----

१. गु० १०, १०

२. गु० १०, १६७

रक्षित होने के कारण पूर्णतः स्पष्ट होते हैं वहां कौमलावृत्ति होती है । रसखान के काव्य में इस वृत्ति से युक्त भाषा की प्रधानता है । उनके भक्ति सम्बन्धी पद और कृष्ण लीलारं प्रसाद गुण युक्त हैं -

‘मानुष हों तो वही रसखानि बरौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन ।

जौ पशु हों तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मंजारन ।

पाहन हों तो वही गिरि की जौ धरयां कर क्वत्र पुरंदर धारन ।

जौ लग हों तो बोरो करौं मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन ॥^१

निम्नलिखित पद में सरस और कौमल शब्दों के प्रयोग के कारण अभिव्यक्ति में सौन्दर्य और कौमलता के दर्शन होते हैं -

‘धूर भरे अति शोभित स्याम जू तैसी बनी चिर गुंदर चौटी ।

खेलत खात फिरौं अंगना पग पैजनी बाजति पीरी कछौटी ।

वा क्वि को रसखानि विलोक्त बारत काम कला निधि कौटी ।

काग के भाग बड़े सज्जी हरि हाथ तौं लै गयां माखन रौटी ॥^२

कौमलावृत्ति के प्रयोग के कारण रसखान की भाषा प्रवाहमयी है । बर्ध के लिए मस्तिष्क को व्यायाम की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

तारांश यह है कि रसखान का काव्य माधुर्य और प्रसाद गुण प्रधान है । उसमें स्वाभाविक मधुरता और कौमलकान्त पदावली के साथ-साथ दर्शन होते हैं ।

रसखान की भाषा पर साहित्यिक दृष्टि से विचार करने पर हम स्व निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रसखान की भाषा शुद्ध ब्रज है । उन्होंने शब्दों को अधिक तोड़ने मरोड़ने का या अधिक व्याकरणानुमोदित करने का प्रयास न करके उसके सहज रूप को स्वीकार किया । मार्मिक उद्गारों की स्वाभाविकता एवं स्पष्टता के साथ अभिव्यक्ति करने में रसखान की भाषा जितनी समर्थ है, उतनी ही प्राणवान और श्रेष्ठ भी है ।

१. सु० १०, १

२. सु० १०, २१

भाषा वैज्ञानिक विवेचन

(स) भाषा वैज्ञानिक पक्ष के अन्तर्गत जिन प्रमुख बातों पर विचार करना आवश्यक है उनमें रसज्ञान द्वारा प्रयुक्त ध्वनि समूह - वायुनासिक स्वर, संयुक्त स्वर और व्यंजनों तथा उनके परिवर्तित रूप का विवेचन, उनकी रचनाओं में प्रयुक्त वनेक भाषाओं एवं बोलियों के प्रयोग तथा उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली विशेष उल्लेखनीय है ।

वायुनासिक स्वर

अं -	गंकारन ^१	तंवारन ^२	गंधरब ^३	अंगना ^४	रंगीली ^५
बंसिया ^६	हंसी ^७	कंपै ^८	तंवारति ^९	तंग ^{१०}	पंवारी ^{११}
बंसरी ^{१२}	नाव ^{१३}	अंटकी ^{१४}	अंगुरी ^{१५}	अंदित ^{१६}	अंसुवानी ^{१७}
ढंग ^{१८}	तंग ^{१९}	अंग ^{२०}	रंग ^{२१}	फंदै ^{२२}	रंगी ^{२३}
मंगाया ^{२४}	अंभा ^{२५}	अंसवान ^{२६}	अंटक ^{२७}	अंगीत ^{२८}	चंद वा ^{२९}
अंच्यी ^{३०}	गंबाई ^{३१}	कंह ^{३२}	फंति ^{३३}	विहंति ^{३४}	जंह ^{३५}
बधे ^{३६}	तंह ^{३७}				

पुं० १० -

१. पद १ पंक्ति २, २. पद २ पं० ३, ३. पद १२ पं० १, ४. पद २१ पं० २,
 ५. पद ३२ पं० ७, ६. पद ३४ पं० ४, ७. पद ३८ पं० १, ८. पद ३९, पं० ३
 ९. पद ५० पं० १, १०. पद ५२ पं० १, ११. पद ५५ पं० २, १२. पद ५६ पं० ४
 १३. पद ५८ पं० २, १४. पद ५९ पं० ४, १५. पद ६१ पं० १, १६. पद ६२ पं० ३
 १७. पद ७४ पं० ४, १८. पद ७९ पं० १, १९. पद ७९ पं० २, २०. पद ७९ पं० ३
 २१. पद ७९ पं० ४, २२. पद ८१ पं० १, २३. पद ८३ पं० ४, २४. पद १०४ पं० ४
 २५. पद ११६ पं० ४, २६. पद १४७ पं० ४, २७. पद १४७ पं० ३, २८. पद १६५ पं० ३
 २९. पद १७९ पं० १, ३०. पद १९२ पं० २, ३१. पद २०६ पं० २, ३२. पद २०८ पं० १
 ३३. प्रेमवाटिका - ३३. पद २६ ३४. पद ३२ ३५. पद ३३ ३६. पद ३५
 ३७. पद ५३ ।

बां -	गांव ^६	वांवे ^२	गांठि ^३	बांजुरीवारी ^६	मांति ^४
कहां ^६	रांग ^७	बांग ^८	फांकि ^९	तहां ^{१०}	वांकी ^{११}
वांफ ^{१२}	मांगत ^{१३}	बांसि ^{१४}	हांवी ^{१५}	हांडि ^{१६}	मांफ ^{१७}
बांकी ^{१८}	टांकि ^{१९}	लांकि ^{२०}	पांति ^{२१}	वांजु ^{२२}	वांजु ^{२३}
कुलहांजु ^{२४}	बांकी ^{२५}	हांकरिबी ^{२६}	पांय ^{२७}	बांयि ^{२८}	मांह ^{२९}
फांकिन ^{३०}	बतियां ^{३१}	त्वांस ^{३२}	बांकी ^{३३}	पांविरिया ^{३४}	मांविरिया ^{३५}
हांवरिया ^{३६}	मांह ^{३७}	गांठन ^{३८}	वांवी ^{३९}	मांहि ^{४०}	बतियां ^{४१}
सदां ^{४२}	मांगिहर् ^{४३}				
इं -	गुबिंदहिं ^{४४}	नाहिं ^{४५}	मीनहिं ^{४६}	छिठीनहिं ^{४७}	कीनहिं ^{४८}

सु० १० -

१. पद १ पंक्ति १	२. पद ६ पं० ४	३. पद ७ पं० २
४. पद ७ पं० ३	५. पद १० पं० ६	६. पद ११ पं० ३
७. पद २२ पं० ३	८. पद २२ पं० ३	९. पद २६ पं० ३
१०. पद २८ पं० १	११. पद २८ पं० १	१२. पद ४१ पं० २
१३. पद ४२ पं० २	१४. पद ४५ पं० २	१५. पद ४५ पं० ३
१६. पद ४६ पं० ३	१७. पद ४६ पं० ७	१८. पद ५१ पं० १
१९. पद ५१ पं० २	२०. पद ५१ पं० २	२१. पद ५३ पं० २
२२. पद ५४ पं० २	२३. पद ५४ पं० ४	२४. पद ५४ पं० ६
२५. पद ५६ पं० ४	२६. पद ८७ पं० ४	२७. पद ८६ पं० ३
२८. पद ६२ पं० १	२९. पद ६६ पं० २	३०. पद ६६ पं० २
३१. पद १११ पं० १	३२. पद ११७ पं० २	३३. पद १३३ पं० १
३४. पद १४१ पं० १	३५. पद १४१ पं० २	३६. पद १६१ पं० ३
३७. पद १५६ पं० ४	३८. पद १५७ पं० २	३९. पद २०५ पं० ३
४०. पद २०५ पं० ४	४१. पद २०६ पं० २	४२. पद २०७ पं० ४
४३. दान लीला पद ७ पं० ५	४४. सु० १० पद ८ पं० ४, ४५. पद ११ पं० १	
४६. पद २० पं० १	४७. पद २० पं० २ । ४८. पद २० पं० ४	

बारतिं ९	होतिं ९	रिवाहिं ३	उतराहिं ४	मोहिं ५	तोहिं ६
जिंगार ७	हहिं ८	लिवे ८	वनुरागहिं १०	जिहिं ११	धुमहिं १२
भिंजाइ १३	बापहिं १४	जाहि १५ -	इं के वानुनासिक रूप बहुत कम हैं ।		
ई -	नहीं १६	घसीं १७	निकलीं १८	तबहीं १९	लागीं २०
वाई २१	ठिठकीं २२	सिसकीं २३	रोकतहीं २४	लगीं २५	मई २६
गई २७	जबहीं २८	दुरेहीं २९	घरहाई ३०	तरकीं ३१	तराहाहीं ३२
गलबाहीं ३३	जाहीं ३४	मोजे ३५	गाही ३६	बसाहीं ३७	हंती ३८
हंती ३९	बिनहीं ४०				
उं -	बहुं ४०	कहुं ४१	धुंवा ४२	तिहुं ४३	चौमुंह ४४

सु० १०

१. पद २४ पं० २	२. पद २४ पं० २	३. पद ७८ पं० २
४. पद ७८ पं० २	५. पद ६५ पं० २	६. पद ११४ पं० ४
७. पद १३७ पं० ३	८. पद १४५ पं० २	९. पद १५४ पं० १
१०. पद १६१ पं० १	११. पद १६२ पं० ४	१२. पद १६४ पं० २
१३. पद १६४ पं० ५	दान लीला - १४. पद ४ पं० ४	१५. प्रेमवाटिका पद ३५
१६. सु० १० - १६. पद ६ पं० ७		१७. पद २७ पं० ४
१८. पद २७ पं० ३	१९. पद ३० पं० २	२०. पद ३२ पं० ६
२१. पद ३७ पं० १	२२. पद ३७ पं० १	२३. पद ३७ पं० ३
२४. पद ४४ पं० २	२५. पद ५१ पं० १	२६. पद ५४ पं० ३
२७. पद ५४ पं० ३	२८. पद ६१ पं० १	२९. पद ७५ पं० १
३०. पद ७६ पं० ४	३१. पद ११७ पं० ३	३२. पद १२१ पं० १
३३. पद १२१ पं० २	३४. पद १२१ पं० ३	३५. पद १२६ पं० ३
३६. पद १३१ पं० १	३७. पद १३१ पं० २	३८. पद १४० पं० ३
३९. पद १४० पं० ४		
४०. पद २७ पं० ३	४१. पद ६६ पं० १	४२. पद १२८ पं० ४
४३. पद १८६ पं० ३	४४. पद १६४ पं० १ ।	

कबहुं १	तनहुं २	कहुं ४	उंवे ५	कबहुं ६	कितुं ७
उं -	तिहुं ३	महुं १०	दुहुं ११	गुंदि १२	किनहुं १३
धुंघट ८	तुं ९	किनहुं १६	हमहुं १७	धुंघर १८	चहुं १९
बजहुं २४	धुंघरि २५				
तीहुं २०	तबहुं २१	हियं २३	गं २४	कैं २५	नियं २६
एं -	तातें २२	लं २८	तीहें ३०	पहें ३१	गहें ३२
तांकरें २७	लैं २९	टूटें ३५	न्यातें ३६	लियें ३७	नीकें ३८
गरं ३३	बेंचरी ३४	हैं ४१	लैं ४२	पारें ४३	धरें ४४
परें ३८	चौहटें ४०	भार्गं ४७	बारजें ४८		
भेंटिय ४५	पूधें ४६				

१. प्रेम्माटिका पद ८ २. प्रेम्माटिका पद ३३

पु० १० - ३. पद ३ पं० १ ४. पद ५ पं० ३

६. पद १७ पं० २

७. पद १७ पं० २

५. पद ६ पं० १

८. पद ३६ पं० २

९. पद ४१ पं० १

१०. पद ४३ पं० १

११. पद ५६ पं० ४

१२. पद ८७ पं० २

१३. पद ११४ पं० १

१४. पद १२५ पं० ३

१५. पद १२८ पं० ३

१६. पद १७० पं० ३

१७. पद १८२ पं० ५

१८. पद १६८ पं० ३

१९. पद १६८ पं० ४

२०. दानलीला पद ६

२१. प्रेम्माटिका पद ३३

२२. पु० १० - पद ७ पं० २ २३. पद १४ पं० २

२४. पद १५ पं० १

२५. पद १८ पं० २

२६. पद २४ पं० १

२७. पद २८ पं० १

२८. पद २६ पं० ३

२९. पद ३० पं० ३

३०. पद ३४ पं० ३

३१. पद ३६ पं० १

३२. पद ४० पं० २

३३. पद ४८ पं० ३

३४. पद ४१ पं० १

३५. पद ४४ पं० ३

३६. पद ५० पं० ३

३७. पद ५२ पं० १

३८. पद ५३ पं० ४

३९. पद ६७ पं० ४

४०. पद ७१ पं० १

४१. पद ७२ पं० ३

४२. पद ७८ पं० ४

४३. पद ८७ पं० ४

४४. पद ९६ पं० १

४५. पद ९६ पं० ३

४६. पद १०२ पं० २

४७. पद १०३ पं० ४

४८. पद १०४ पं० ३

उलटें ९	कियें ९	बलें ३	हलें ४	जुमें ५	जातें ६
दगर् ७	भेट ८	बिलीकें ६	रीकें १०	मोवें ११	तोवें १२
पौवें १३	भरीवें १४	दियें १५	मउ १६		
रें -	करें १७	तिन्हें १८	म १९	ह २०	गावें २१
बतावें २२	पावें २३	नचावें २४	बढ़ावें २५	कहावें २६	फिरें २७
लौ २८	धूम २९	गोह ३०	भरें ३१	घरें ३२	पीहें ३३
रहें ३४	जुमें ३५	जार्ग ३६	निमेष ३७	उर्ग ३८	हियें ३९
रीकहें ४०	पाहें ४१	आहें ४२	कटाहें ४३	काहें ४४	दमकें ४५
परें ४६	इन्हें ४७	बूफें ४८	पाहें ४९	जाहें ५०	चमकें ५१

१०. १० - १. पद १०५ पं० ४ २. पद १०७ पं० ३ ३. पद १०८ पं० १
 ४. पद ११७ पं० ३ ५. पद १३५ पं० ३ ६. पद १३६ पं० १
 ७. पद १७३ पं० ३ ८. पद १८४ पं० १ ९. पद १९० पं० ४
 १०. पद १९३ पं० १ ११. पद २१२ पं० १ १२. पद २१२ पं० २
 १३. पद २१२ पं० ३ १४. पद २१२ पं० ४ १५. दानलीला पद ४ पं० ४
 १६. प्रेमवाटिका पद ६
 १७. पद २ पं० २ १८. पद ७ पं० २ १९. पद ८ पं० १
 २०. पद १० पं० २ २१. पद १२ पं० १ २२. पद १३ पं० २
 २३. पद १३ पं० ३ २४. पद १३ पं० ४ २५. पद १४ पं० १
 २६. पद १४ पं० २ २६. पद २१ पं० २ २७. पद २६ पं० १
 २८. पद ३७ पं० ४ ३०. पद ५१ पं० ३ ३१. पद ५४ पं० १
 ३२. पद ५४ पं० २ ३३. पद ६८ पं० ४ ३४. पद ७४ पं० १
 ३५. पद ७४ पं० २ ३६. पद ७८ पं० १ ३७. पद ७८ पं० ४
 ३८. पद ७८ पं० ४ ३९. पद ८० पं० १ ४०. पद ८४ पं० ३
 ४१. पद ८५ पं० १ ४२. पद ८५ पं० २ ४३. पद ८५ पं० ३
 ४४. पद ८५ पं० ४ ४५. पद ८४ पं० १ ४६. पद १०७ पं० ७
 ४७. पद १०० पं० ८ ४८. पद १०४ पं० ४ ४९. पद १०५ पं० १
 ५०. पद १०५ पं० ३ ५१. पद १०८ पं० १

करिहँ १	लपटँ २	कहरँ ३	बहरँ ०	फहरँ ५	रुक् ६
पलकँ ७	पुकारँ ८	हहँ ९	कहँ १०	हारँ ११	हमारँ १२ धारँ १३
वारँ १४	बनकँ १५	पहँ १६	मालकँ १७	तलकँ १८	बिहरँ १९
कहरँ २०	फहरँ २१	तिहरँ २२	गहरँ २३	रमकँ २४	फमकँ २५
चमकँ २६	लँचि २७	जियँ २८	बाहँ २९	तहावँ ३०	जावँगे ३१
वाँ -	हाँ ३२	गौँ ३३	कौँ ३४	तौवाँ ३५	ठौँकि ३६
रुखौहाँ ३७	मरीहाँ ३८	लजौहाँ ३९	बुभौहाँ ४०	फुकीहाँ ४१	हरीहाँ ४२
पियरीहाँ ४३	गांवरीहाँ ४४				

बु० १० - १. पद ११५ पं० ४	२. पद ११७ पं० २	
३. पद ११९ पं० २	४. पद ११९ पं० २	५. पद ११९ पं० २
६. पद १२६ पं० २	७. पद १२६ पं० ३	८. पद १२६ पं० २
९. पद १३७ पं० ४	१०. पद १३९ पं० २	११. पद १४० पं० १
१२. पद १४० पं० २	१३. पद १४० पं० ३	१४. पद १४० पं० ४
१५. पद १४४ पं० १	१६. पद १६८ पं० ४	१७. पद १७६ पं० ३
१८. पद १८१ पं० २	१९. पद १८६ पं० ४	२०. पद १८६ पं० ४
२१. पद १८९ पं० २	२२. पद १८९ पं० २	२३. पद १८९ पं० २
२४. पद १९८ पं० १	२५. पद १९८ पं० २	२६. पद १९८ पं० ४
२७. पद २०२ पं० ३	२८. पद २०३ पं० ३	२९. पद २०४ पं० ४
३०. पद २०६ पं० १	३१. दानलीला पद १ पं० ३	
३२. बु० १० - पद १ पं० ३	३३. पद ४ पं० १	
३४. पद १८ पं० २	३५. पद ४५ पं० २	३६. पद ५१ पं० ४
३७. पद १८२ पं० २	३८. पद १८२ पं० २	३९. पद १८२ पं० ३
४०. पद १८२ पं० ६	४१. पद १८२ पं० ७	४२. पद १८२ पं० ७
४३. पद १८२ पं० ८	४४. पद १८२ पं० ८	

वर्ग -	हर्ग १	वर्ग २	वर्ग ३	कर्ग ४	लर्ग ५
डार्ग ६	विषार्ग ७	निहारग ८	वारग ९	त्यर्ग १०	जर्ग ११
बलानर्ग १२	ज्यर्ग १३	क्यर्ग १४	भतराडि १५	मर्ग १६	वाडि १७
कनीडि १८	डौडि १९	वर्ग २०	कौ २१	मौह २२	कहर्ग २३
उर्ग २४	भर्ग २५	लर्ग २६	मर्ग २७	राखिहर्ग २८	पहिरांगी २९
फिरांगी ३०	करांगी ३१	घरांगी ३२	परांगी ३३	करांगी ३४	त्यर्ग ३५
क्यर्ग ३६	यर्ग ३७	वर्ग ३८	प्रेम-वर्तारा ३९	गर्ग ४०	गुर्ग ४१
वर्ग ४२	पहचानर्ग ४३	जानर्ग ४४	मानर्ग ४५	तैहर्ग ४६	तौरिहर्ग ४७

सु० १० - १, पद १ पं० १

२, पद १ पं० १

३, पद १ पं० २

४, पद १ पं० ३

५, पद २ पं० ३

६, पद ३ पं० १

७, पद ३ पं० २

८, पद ३ पं० ३

९, पद ३ पं० ४

१०, पद ४ पं० ४

११, पद ११ पं० ३

१२, पद ११ पं० ३

१३, पद १२ पं० २

१४, पद ४० पं० ३

१५, पद ४१ पं० २

१६, पद ४१ पं० १

१७, पद ४१ पं० २

१८, पद ४१ पं० ३

१९, पद ४१ पं० ४

२०, पद ४६ पं० ५

२१, पद ४७ पं० २

२२, पद ५३ पं० १

२३, पद ५५ पं० ४

२४, पद ७७ पं० २

२५, पद ७८ पं० १

२६, पद ७८ पं० ३

२७, पद ७८ पं० ४

२८, पद ८६ पं० १

२९, पद ८६ पं० १

३०, पद ८६ पं० २

३१, पद ८६ पं० ३

३२, पद ८६ पं० ४

३३, पद ८६ पं० ३

३४, पद ८६ पं० ४

३५, पद १०५ पं० ३

३६, पद १०६ पं० २

३७, पद १०८ पं० ३

३८, पद ११८ पं० २

३९, पद १२२ पं० ३

४०, पद २०४ पं० २

४१, पद २०५ पं० १

४२, पद २०६ पं० ४

४३, दानलीला पद ६ पं० १

४४, दानलीला पद ६ पं० १

४५, दानलीला पद ६ पं० २

४६, दानलीला पद ६ पं० ३

४७, दानलीला पद ६ पं० ३

फोरिहॉ ^१ मांगिहॉ ^२ लैहॉ ^३ राखॉ ^४ चरॉंगो ^५ डरॉंगो ^६
 टरॉंगो ^७

स्वरों के संयुक्त प्रयोग

हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह ब्रजभाषा में भी कई स्वरों के संयुक्त रूपों का व्यवहार किया जाता है। रसखानि में भी साथ-साथ जाने वाले स्वरों के अनेक प्रयोग मिलते हैं -

वई - लई ^८	गई ^९	रई ^{१०}	मैनमई ^{११}	दई ^{१२}	मई ^{१३}
बाइ- गाइ ^{१४}	चराइ ^{१५}	गाइन ^{१६}	गुताइ ^{१७}	जमाइ ^{१८}	
	रिफाइ ^{१९}	लगाइ ^{२०}	बनाइ ^{२१}	समाइ ^{२२}	प्याइ ^{२३}
	झाइ ^{२४}	पुनाइ ^{२५}			
बाई - दुहाई ^{२६}	माई ^{२७}	सुखदाई ^{२८}	चलाई ^{२९}	बढ़ाई ^{३०}	सुहाई ^{३१}

दानलीला ६. पद ६ पं० ५

३. पद ८ पं० १

६. पद ८ पं० ६

८. सु० र०, १६

११. सु० र०, ३६

१४. सु० र०, रु० ३

१७. सु० र०, २३

२०. सु० र०, २०

२३. सु० र०, ४६

२६. सु० र०, २२

२९. सु० र०, ३०

४. पद ८ पं० ३

७. पद ८ पं० ८

९. सु० र०, २०

१२. सु० र०, ५१

१५. सु० र०, ३

१८. सु० र०, २४

२१. सु० र०, २०

२४. सु० र०, ३६

२७. सु० र०, २८

३०. सु० र०, ३०

६. २. पद ७ पं० ५

५. पद ८ पं० ४

१०. सु० र०, २०

१३. सु० र०, ५१

१६. सु० र०, २२

१९. सु० र०, २४

२२. सु० र०, २५

२५. सु० र०, ३३

२८. सु० र०, ३०

३१. सु० र०, ६६

बार	-	बार ^१							
बाबो	-	बाबो ^२							
बर	-	भर ^३							
बीऊ	-	कीऊ ^४	दोऊ ^५						
बीर	-	सीर ^६							
बीई	-	बसिबीई ^७	येरीई ^८	सीई ^९					
बीउ	-	दाउन ^{१०}	कीउ ^{११}						
बीई	-	चत्थीई ^{१२}	धरयीई ^{१३}						
बाउ	-	साउ ^{१४}	दिहाउ ^{१५}	सिराउ ^{१६}	गाउ ^{१७}	जाउ ^{१८}			
रई	-	वैई ^{१९}							
रेइ	-	फैलि ^{२०}							
रऊ	-	जेऊ ^{२१}							
व्यंजन	-								

जिन व्यंजनों को यथा - क ख ग घ च छ ज फ ट ठ ड
ढ त थ द ध न प फ ब म य र ह - ब्रजभाषा-वर्ण
माला में देवनागरी के समान ही स्थान मिला हुआ है, उनकी चर्चा यहां न करके
केवल उन्हीं के उम्बन्ध में विचार करना है जिनमें कुछ अन्तर है या जिनका
प्रयोग विशेष रूप से किया गया है।

१. सु० र०, ५०	२. सु० र०, ६४	३. सु० र०, ५०
४. सु० र०, ५	५. सु० र०, ३७	६. सु० र०, ६
७. सु० र०, ५६	८. सु० र०, ५८	९. सु० र०, ८३
१०. सु० र०, १००	११. सु० र०, १०३	१२. सु० र०, ४८
१३. सु० र०, ६३	१४. सु० र०, ४२	१५. सु० र०, ७६
१६. सु० र०, ७६	१७. सु० र०, ७३	१८. सु० र०, ७३
१९. सु० र०, १०	२०. सु० र०, १००	२१. सु० र०, २००

ज - य ब्रज भाषा वर्णमाला में 'जे' को सही बोली से अधिक बादर का स्थान प्राप्त है और य को उही अनुपात में कम । संस्कृत और हिन्दी शब्दों के ज का निश्चित स्थान तो ब्रजभाषा में वक्षुष्ण है ही, अधिकांश तत्सम प्रयोगों में, शब्दों के मध्य में तो कम, परन्तु बादि में लगभग सर्वत्र य के स्थान पर ज का प्रयोग किया जाता है । रसखान ने भी शब्दों के बादि में जाने वाले य को प्रायः सर्वत्र ज से बदल दिया है । जैसे - यद्यपि - जद्यपि^१, योगी - जोगी^२, यती - जती^३, युग - जुग^४, यदुरीया - जदुरीया^५, यमुना - जमुना^६, पुवती गन - जुवती गन^७, यौवन - जौवन ।

शब्द के बीच में जाने वाला य भी कभी कभी ज में बदल गया है । जैसे - संयोग - संजोग^८, वियोग - विजौग^९ ।

ण - यह वानुनासिक व्यंजन यद्यपि इ. और की तरह अपने वर्गीय वक्षारों के पूर्व उच्चरित होता है, किन्तु इन वानुनासिकों से इसका प्रयोग इस कारण अपेक्षाकृत अधिक है कि वनेक तत्सम-शब्दों के बादि में तो नहीं, बीच और अन्त में पूर्ण व्यंजन के रूप में यह जाता है । ब्रज भाषा कवियों ने इस स्थान पर प्रायः न का प्रयोग किया है । रसखान ने भी ण के स्थान पर न का अधिक प्रयोग किया है । जैसे -

विष्णु-विष्णु^{१०}, गणिका - गनिका^{११}, गणीस - गनैस^{१२}, प्राणन - प्रानन^{१३}, पुराणन - पुरानन^{१४}, विरोमणि - विरोमनि ।^{१५}

बु० २० - १. पद ६ पं० ३ २. पद ६ पं० २ ३. पद १२ पं० ३
 ४. पद २० पं० २ ५. पद २४ पं० ३ ६. पद २७ पं० १
 ७. पद ३३ पं० ३ ८. पद ५१ पं० ४ ९. १०- पद १२ पं० ३
 शंकर याज्ञिक की हस्तलिखित प्रति से, ना० प्र० तमा काशी, बस्ता नं० २२
 बु० २० - ११. पद १० पं० ३ १२. पद १२ पं० १
 १३. पद १३ पं० १ १४. पद १४ पं० ३
 १५. पद १७ पं० १ १६. पद १७१ पं० १

ब और व - देवनागरी वर्णमाला में व यद्यपि प्राचीन ध्वनि के रूप में स्वीकृत है, तथापि व की ध्वनि के अपेक्षाकृत सरल होने के कारण ब्रजभाषा कवियों ने शब्दों के आदि के व को प्रायः सर्वत्र और मध्य या अन्त में जाने वाले को विशेष अवसरों पर ब लिखा है। रसखान के काव्य में भी 'व' के स्थान पर 'ब' मिलता है - वन - बन,^१ विधि - बिधि,^२ विद्वत् - बिद्वत्,^३ विष्णु - बिष्णु,^४ गंधर्ब - गंभर्ब,^५ वैद - बैद,^६ रविनन्द - रबिनन्द,^७ विचारो - बिचारो,^८ विलोकित - बिलोकित,^९ विष - बिष,^{१०} विराजति - बिराजति,^{११} रवि - रबि,^{१२} मयंक वधू - मयंक बधू,^{१३} वरणा - बरणा,^{१४} वीर - बीर,^{१५} वियोग - बियोग।^{१६}

र और ल

यद्यपि इन दोनों व्यंजनों का उच्चारण स्थान एक ही है और ल का उच्चारण र से सरल भी होता है, तथापि ब्रजभाषा में शब्दान्त के ल को कभी कभी र में बदल दिया जाता है। रसखान काव्य में भी इसके कुछ उदाहरण मिलते हैं।

ढाली- डारि,^{१७} गली - गरी,^{१८} निकलै - निकरै,^{१९} ढालिये - डारिये^{२०}

सु० र० -

१. पद ३ पं० ३	२. पद ५ पं० २	३. पद ७ पं० १
४. पद १० पं० ३	५. पद १२ पं० १	६. पद १७ पं० १
७. पद १८ पं० ३	८. पद १८ पं० ४	९. पद २२ पं० ३
१०. पद ३३ पं० १	११. पद ४७ पं० ३	१२. पद ६४ पं० १
१३. पद ६४ पं० ३	१४. पद ६४ पं० ४	१५. पद ६७ पं० १
१६. पद १११ पं० ४		

सु० र० -

१७. पद २ पं० १	१८. पद २२ पं० १	१९. पद ४८ पं० १
२०. पद ५४ पं० ७		

सम्हाली - सम्हारी,^१ गले - गरी,^२ बावली - बावरी,^३ ढलकायी - ढरकायी,^४
बुतली - पुतरी^५

श, ष और स

ब्रजभाषा की श और ष से स की मधुर ध्वनि अधिक प्रिय है। रसखान के काव्य में श और ष के स्थान पर सर्वत्र स ही मिलता है -

देश - दैव,^६ पशु - पशु,^७ सुरेश - सुरैव,^८ दिवैश - दिनेव,^९ प्रजेश - प्रजैव,^{१०} धनैश - धनैव,^{११} महेश - महैव,^{१२} विदेश - विदैव,^{१३} शुभार - सुमार,^{१४} शिव - सिव,^{१५} शंकर - संकर,^{१६} शित - सिव,^{१७} विदेश - विदैव,^{१८} किशोर - किवोर,^{१९} निशंक - निवंक,^{२०} शीश - सीव,^{२१} शरीर - वरीर,^{२२} कैश - कैव,^{२३} विशाल - विवाल,^{२४} शिरोमनि - विरोमनि,^{२५} शुभ - सुभ ।^{२६}

कुछ स्थलों पर ष प्रयोग भी मिलता है - मानुष,^{२७} तेष,^{२८} वरषा,^{२९} विशेष,^{३०} निमेष,^{३१} विष्णु,^{३२} अभिलाष ।^{३३}

सु० १० - १. पद ६१ पं० ४	२. पद १५ पं० १	३. पद ८१ पं० ४
४. पद ६० पं० ३	५. पद १४२ पं० २	६. पद ७ पं० १
७. पद १ पं० २	८. पद ५ पं० १	९. पद ५ पं० १
१०. पद ५ पं० १	११. पद ५ पं० १	१२. पद ५ पं० १
१३. पद ७ पं० १	१४. पद ६ पं० १	१५. पद १० पं० २
१६. पद १४ पं० १	१७. पद ३६ पं० ३	१८. पद ६२ पं० ३
१९. पद ७३ पं० ७	२०. पद ८४ पं० ४	२१. पद ६ पं० २
२२. पद ६७ पं० ३	२३. पद ११६ पं० २	२४. पद १६२ पं० २
२५. पद १७१ पं० १	२६. पद १७७ पं० ३	२७. पद १ पं० १
२८. पद ५ पं० १	२९. पद ६४ पं० ४	३०. पद ८२ पं० २
३१. पद ७८ पं० ४	३२. पद १० पं० ३	३३. पद १० पं० ६

इ

देवनागरी वर्णमाला की यह एक नयी ध्वनि है जिसकी ब्रजभाषा ने कुछ शब्दों में तो अपना लिया परन्तु कुछ में इसके स्थान पर र लिखना प्रिय है। रचखान ने कुछ शब्दों में तो इस प्रयत्न को स्वीकार किया है।

इ का प्रयोग -

बढ़ी^१ बुढ़ि^२ बढ़ाई^३ बड़ैन^४

इ के स्थान पर र का प्रयोग

परंगी - पड़ैंगी^५ करौर - कड़ौड़^६ पर्यौ - पड़्यौ^७ विगारो -
विगाड़ो^८ बिगराई - बिगड़ाई^९ घरी घरी - घड़ी घड़ी^{१०} नगारो - नगाड़ो

सु० १० -		
१. पद ७ पं० ३	२. पद २८ पं० २	३. पद ३० पं० ४
४. पद ५६, पं० २	५. पद ७ पं० ३	६. पद २० पं० २
७. पद ५५ पं० ३	८. पद ५६ पं० १	९. पद ६३ पं० ८
१०. पद ६६ पं० ३	११. पद ५५ पं० ४	

शब्द समूह

किसी बोली में जब साहित्य रचना होने लगती है, तब स्वभावतः उसे प्राचीन एवं तत्कालीन बोलियों एवं भाषाओं के शब्दों को अपना कर अपने शब्द भंडार में वृद्धि करनी पड़ती है। ऐसा करने से कवि की अभिव्यंजना शक्ति का विकास होता है। रसखान के पूर्ववर्ती कवि भी ब्रजभाषा का शब्द-कोष बढ़ाने में प्रयत्नशील रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि पन्द्रहवीं शताब्दी तक शक्ति संवय करके अपने सीमित क्षेत्र से ऊपर उठ कर उसने साहित्यिक भाषा के प्रतिष्ठित पद को ग्रहण किया। उनमें से अधिकांश कवि सामान्य कोटि के थे। फलस्वरूप चौदहवीं शताब्दी से पूर्व किसी भी ब्रज भाषा कवि की रचनाएं लोक-प्रिय न हो सकीं। ब्रज भाषा की शक्ति सम्पन्न बनाने वाले प्रथम विख्यात कवि सुरदास ही हैं जिनके उत्प्रेरक से ब्रज भाषा स्पष्ट चित्रण में उभरी ही सकी। उनके बाद एक मुसलमान कवि मियां रसखान ने अपनी भाषा से हट कर ब्रज भाषा में कविता करने का साहस किया। उन्होंने दूसरी भाषा के शब्दों को अपनाया।

तत्सम शब्द

वंक १	वंग २	वनंग ३	वमेद ४	वदैव ५
वसंत ६	वभिलाष ७	वनन्त ८	वज्र ९	वभीत १०
वधर ११	वमृत १२	वचैत १३	वमानी १४	वली १५
वम्ब १६	वनुराग १७	वबला १८	वरविन्द १९	वपथय २०

गु० १० पद संख्या १. गु० १०, २	२. गु० १०, ६
३. गु० १०, १६	४. गु० १०, १३
६. गु० १०, १३	७. गु० १०, १०
८. गु० १०, २०	१०. गु० १०, २६
१२. गु० १०, ३१	१३. गु० १०, ३२
१५. गु० १०, ४६	१६. गु० १०, ४६
१८. गु० १०, ६७	१९. गु० १०, १३०
	२०. गु० १०, २१२

वगम १	वनपम २	वमित ३	वनकुल ४	वकथ ५
वलीकिक ६	वनिवार्य ७	वनन्य ८	वपार ९	वानन १०
वागम ११	कर १२	कालिन्दी १३	कूल १४	कदंब १५
कुंज १६	कलधीत १७	कौटि १८	कंचन १९	कुमार २०
काम २१	कला २२	काग २३	कुंछ २४	कुटीर २५
कपील २६	कल २७	कुंतल २८	कौकिल २९	कौमल ३०
कानन ३१	कटि ३२	कुटुम्ब ३३	कलंक ३४	काल ३५
कैल ३६	कुंभ ३७	कुच ३८	कौतुक ३९	कौल ४०
कुंकुम ४१	कंज ४२	काकली ४३	कमल ४४	काम ४५

१. प्रे० वा०, ३
 ४. प्रे० वा०, १२
 ७. प्रे० वा०, ६
 १०. पु० र०, १५४
 १३. पु० र०, १
 १६. पु० र०, २
 १९. पु० र०, ६
 २२. पु० र०, २१
 २५. पु० र०, १७
 २८. पु० र०, ४६
 ३१. पु० र०, ५१
 ३४. पु० र०, ८४
 ३७. पु० र० १२१
 ४० पु० र०, १८५
 ४३. पु० र०, १६६

२. प्रे० वा०, ३
 ५. प्रे० वा०, २०
 ८. प्रे० वा०, ३७
 ११. प्रे० वा०, १०
 १४. पु० र०, १
 १७. पु० र०, ३
 २०. पु० र०, ६
 २३. पु० र०, २१
 २६. पु० र०, २६
 २९. पु० र०, ३०
 ३२. पु० र०, ४६
 ३५. पु० र०, ५३
 ३८. पु० र०, १०७
 ४१. पु० र०, १२१
 ४४. प्रे० वा०, ६
 ३. प्रे० वा०, ३
 ६. प्रे० वा०, २८
 ९. पु० र०, १५१
 १२. पु० र०, १
 १५. पु० र०, १
 १८. पु० र०, ३
 २१. पु० र०, २१
 २४. पु० र०, २६
 २७. पु० र०, ३०
 ३०. पु० र०, ५२
 ३३. पु० र०, ५६
 ३६. पु० र०, ११६
 ३९. पु० र०, १५४
 ४२. पु० र०, १६८
 ४५. प्रे० वा० १४

क्रोध १	कीर १	गीकुल ३	गिरि ४	गात ५
गणिका ६	गन्धर्व ७	गर्गद ८	गौधन ९	गोपकुमार १०
घट ११	घन १२	विच १३	चतुरानन १४	
चत १५	चकौर १६	चंदन १७	चित्र १८	चल १९
चपला २०	क्षपाकर २१	क्षत्र २२	जल २३	जप २४
जन २५	पुरन्दर २६	प्रजा २७	प्रभुता २८	प्रातः २९
पंवानल ३०	प्रह्लाद ३१	पग ३२	परिधान ३३	पतंग ३४
पंक ३५	पुर ३६	पान ३७	पंकज ३८	पावक ३९
पल ४०	पथ्य ४१	पूजा ४२	प्रस्तार ४३	पदम पररण ४४
तुला ४५	तन ४६	तप ४७	तामरत्त ४८	तीर ४९

१. प्र० वा०, १४	२. प्र० वा०, ५३	३. तु० र० १
४. तु० र०, १	५. तु० र०, ४	६. तु० र०, १२
७. तु० र०, १२	८. तु० र०, १५	९. तु० र०, २३
१०. तु० र०, ३४	११. तु० र०, ५४	१२. तु० र०, १५६
१३. तु० र०, ८	१४. तु० र०, १४	१५. तु० र०, ३६
१६. तु० र०, ३७	१७. तु० र०, ४७	१८. तु० र०, ८१
१९. तु० र०, १५८	२०. तु० र०, १५८	२१. तु० र०, ८८ ४८
२२. तु० र०, ८८ १	२३. तु० र०, ८८ ६	२४. तु० र०, ६
२५. तु० र०, ३२	२६. तु० र०, १	२७. तु० र०, ६
२८. तु० र०, ६	२९. तु० र०, ६	३०. तु० र०, ६
३१. तु० र०, १८	३२. तु० र०, २१	३३. तु० र०, ३२
३४. तु० र०, ५०	३५. तु० र०, ५७	३६. तु० र०, ६६
३७. तु० र०, ६१	३८. तु० र०, ११७	३९. तु० र०, १२८
४०. तु० र०, १२६	४१. तु० र०, २१२	४२. तु०-र०, प्र० वा०, १६
४३. प्र० वा० ४१	४४. प्र० वा० ५२	४५. तु० र०, ६
४६. तु० र०, ६	४७. तु० र०, ६	४८. तु० र०, १०
		४९. तु० र०, २२

ताप ^१	तट ^२	तिल ^३	तरंग ^४	तडाग ^५
तुलसीदल ^६	तनुजा ^७	तमाल ^८	दीन ^९	दीपमाल ^{१०}
द्रौपदी ^{११}	दामिनी ^{१२}	दुकूल ^{१३}	दाह ^{१४}	दम्पति ^{१५}
द्विरद ^{१६}	दधि ^{१७}	दान ^{१८}	द्वि ^{१९}	दृग ^{२०}
दर्पण ^{२१}	दुभवि ^{२२}	धर्म ^{२३}	धीर निवास ^{२४}	निधि ^{२५}
नगरी ^{२६}	नग ^{२७}	नौश ^{२८}	नागरी ^{२९}	निरन्तर ^{३०}
नंद ^{३१}	नाम ^{३२}	नखल ^{३३}	नख ^{३४}	नील ^{३५}
नर नारी ^{३६}	नीर ^{३७}	नलनीदल ^{३८}	नाद ^{३९}	नव ^{४०}
निश्चय ^{४१}	निष्ठा ^{४२}	ब्रज ^{४३}	ब्रह्म ब्रह्म ^{४४}	ब्रह्मा ^{४५} विव ^{४६}

१. तु० र०, २६	२. तु० र०, ३५	३. तु० र०, ५०
४. तु० र०, ५१	५. तु० र०, ८८	६. तु० र०, १४०
७. तु० र०, २००	८. तु० र०, २००	९. तु० र०, ६
१०. तु० र०, ११	११. तु० र०, १८	१२. तु० र०, ३६
१३. तु० र०, ४६	१४. तु० र०, ५७	१५. तु० र०, १३०
१६. तु० र०, २०२	१७. तु० र०, २, १८, तु० र०, २, १८, तु० र०, २, १८	१८. तु० र०, ८
१९. तु० र०, १	२०. तु० र०, ५	२१. तु० र०, ८
२२. तु० र०, १४	२३. तु० र०, २	२४. तु० र०, २
२५. तु० र०, ६	२६. तु० र०, ६	२७. तु० र०, ७
२८. तु० र०, ८	२९. तु० र०, १२	३०. तु० र०, २५
३१. तु० र०, १८	३२. तु० र०, ३२	३३. तु० र०, ३६
३४. तु० र०, ३६	३५. तु० र०, ६३	३६. तु० र०, ८०
३७. तु० र०, १२७	३८. तु० र०, २१०	३९. तु० र०, २१३
४०. तु० र०, १८	४१. तु० र०, १६	४२. तु० र०, १
४३. तु० र०, १०	४४. तु० र०, १०	४५. तु० र०, १०

बौध २	बंधु २	भ्रम ३	भूषण ४	भूमि ५
भवानी ६	भूप ७	भूखंगना ८	भोग ९	भाव १०
भुजा ११	मान १२	महा १३	मन्त्रांक्षित १४	मंदिर १५
मधुखा १६	मान १७	मूढ १८	मुक्ताक्ष १९	मज्जन २०
मीन २१	मृग २२	मद २३	मार २४	मनीहर २५
मनमोहन २६	मग २७	मति २८	मोद २९	मयंक ३०
मुख ३१	मत्त ३२	मकराकृत ३३	मौन ३४	मनोज ३५
मंद ३६	मानस ३७	मारुत ३८	महि ३९	मन्त्र ४०
मलिन ४१	मौह ४२	मुनि ४३	मात्स्य ४४	मुनि ४५
मित्र ४६	मधुकर ४७	माधव ४८	रत्न ४९	रमा ५०
१. सु० र०, ११६	२. प्रे० वा० २०	३. प्रे० वा०, ८		
४. सु० र०, ४४	५. सु० र०, ८५	६. सु० र०, ५		
७. सु० र०, ११	८. सु० र०, १४	९. सु० र०, १६		
१०. सु० र०, ३५	११. सु० र०, ६६	१२. सु० र०, ४		
१३. सु० र०, ५	१४. सु० र०, ५	१५. सु० र०, ६		
१६. सु० र०, ६	१७. सु० र०, १०	१८. सु० र०, १०		
१९. सु० र०, ११	२०. सु० र०, २७	२१. सु० र०, ३१		
२२. सु० र०, ३१	२३. सु० र०, ३१	२४. सु० र०, ३४		
२५. सु० र०, ३५	२६. सु० र०, ३६	२७. सु० र०, ३६		
२८. सु० र०, ३७	२९. सु० र०, ३६	३०. सु० र०, ६४		
३१. सु० र०, १२६	३२. सु० र०, १३४	३३. सु० र०, १४१		
३४. सु० र०, १४८	३५. सु० र०, १४९	३६. सु० र०, १८२		
३७. सु० र०, १६६	३८. सु० र०, १६६	३९. सु० र०, २०२		
४०. सु० र०, २०५	४१. सु० र०, २०६	४२. प्रे० वा०, १४		
४३. प्रे० वा०, १४	४४. प्रे० वा०, १४	४५. प्रे० वा०, १४		
४६. प्रे० वा० ५२ २०	४७. प्रे० वा०, ५२	४८. सु०-र०-२ प्रे० वा० ५३		
४९. सु० र०, २	५०. सु० र०, ५			

रंक ६	रविनंद २	रौष ३	राह ४	रत्न ५
रजनी ६	रखाल ७	रद ८	रुचिर ९	लोल १०
विधि ११	विष्णु १२	विलास १३	विष १४	विषयानन्द १५
विधु १६	श्री वृषभानु-युता १७	विदि १८	समृद्धि १९	साधन २०
सदा २१	सत्संग २२	सिंधु २३	समाधि २४	सुर २५
समाज २६	सुधि २७	सरोज २८	सरष २९	सुधा ३०
सुर ३१	समान ३२	सरोज ३३	सर ३४	सुख ३५
सिन्धु ३६	सधन ३७	सुरभी ३८	सुगंध ३९	संकट ४०
संकीर्ण ४१	सागर ४२	सरिता ४३	संगम ४४	सरल ४५
सार ४६	सागर ४७	ह्लाहल ४८	हास ४९	

१. सु० र०, १५२. सु० र०, १८ ३. सु० र०, २७

४. सु० र०, ५०

५. सु० र०, ६१

६. सु० र०, १२१

७. सु० र०, १६२

८. सु० र०, २०२

९. सु० वा० ५१

१०. सु० र०, २६

११. सु० र०, ५

१२. सु० र०, १०

१३. सु० र०, ३२

१४. सु० र०, ३३

१५. सु० वा०, ११

१६. सु० वा०, ५३

१७. सु० र०, १६०

१८. सु० र०, २

१९. सु० र०, २

२०. सु० र०, ५

२१. सु० र०, ६

२२. सु० र०, ८

२३. सु० र०, ६

२४. सु० र०, १२

२५. सु० र०, १४

२६. सु० र०, १४

२७. सु० र०, २६

२८. सु० र०, ३१

२९. सु० र०, ३२

३०. सु० र०, ४७

३१. सु० र०, ४६

३२. सु० र०, ५२

३३. सु० र०, ५३

३४. सु० र०, ७२

३५. सु० र०, ७४

३६. सु० र०, ७४

३७. सु० र०, ६१

३८. सु० र०, ११२

३९. सु० र०, ११२

४०. सु० र०, १७५

४१. सु० र०, १७८

४२. सु० र०, १७८

४३. सु० र०, २१०

४४. सु० र०, २१३

४५. सु० र०, २१३

४६. सु० वा०, १०

४७. सु० वा०, ५१

४८. सु० र०, ६८

४९. सु० र०, ११२

तदुभय शब्द

बहीर १	बकाव १	बंगूठा ३	बन व्याही ४	बंक्वार ५
बाक ६	बाधी ७	बाज ८	बायल ९	बानत १०
बांगन ११	बांगु १२	बाँध १३	बाँषद १४	उजागर १५
करनी १६	कामरिया १७	करील १८	करीर १९	कारन २०
किंजुक २१	कटाक्षन २२	कैज २३	व्याज २४	किरीट २५
कीरत २६	कीरतन २७	कारज २८	कौल २९	खारन ३०
गांव ३१	गुन ३२	खारन ३३	गौबिन्दु ३४	गागर ३५
गनिका ३६	गंधश्व ३७	गनैज ३८	गंग ३९	गैहनी ४०

-
- | | | |
|-------------------|-------------------------|------------------------------------|
| १. पु० र०, ६ | २. पु० र०, ४८ | ३. पु० र०, १०१ |
| ४. पु० र०, १४७ | ५. पु०-र०, प्रे० वा० १० | ६. पु० र०, २१२ |
| ७. पु० र०, ११५ | ८. पु० र०, ५ | ९. पु० र०, १७ |
| १०. पु० र०, १४ | ११. पु० र०, ४८ | १२. पु० र०, ५४ |
| १३. पु० र०, ११५ | १४. पु० र०, २०४ | १५. पु० र०, ८ |
| १६. पु० र०, ३ | १७. पु० र०, २ | १८. पु० र०, ३ |
| १९. पु० र०, १८ | २०. पु० र०, ३६ | २१. पु० र०, ४८ |
| २२. पु० र०, ८५ | २३. पु० र०, ११६ | २४. पु० र०, १४० |
| २५. पु० र०, १६७ | २६. पु० र०, २०१ | २७. पु०-र०-र०, कीरतन प्रे० वा० ०४० |
| २८. प्रे० वा०, ४७ | २९. प्रे० वा०, ५३ | ३०. पु० र०, १ |
| ३१. पु० र०, १ | ३२. पु० र०, ४ | ३३. पु० र०, ६ |
| ३४. पु० र०, ८ | ३५. पु० र०, ८ | ३६. पु० र०, १२ |
| ३७. पु० र०, १२ | ३८. पु० र०, १६ | ३९. पु० र०, १६ |
| ४०. पु० र०, १८ | | |

गाय १	गन २	गांभ ३	जळदीत ४	जुग ५
ज ६	जयपि ७	जसुथा ८	जागी ९	जती १०
जाहे ११	जमुना १२	जतन १३	जुगति १४	जीवन १५
जीति १६	जम १७	चन्द १८	चूमि १९	चच्छु २०
काही २१	चांगुने २२	चायन २३	तीरध २४	तपसी २५
तरुन २६	तुनीर २७	तरुनी २८	तीक्ष्ण २९	डार ३०
दाडे ३१	ढीठि ३२	दही ३३	पीत ३४	दीरघ ३५
दुंद ३६	दरसन ३७	धुवां ३८	नैम ३९	नाग ४०
नंद ४१ = ननद	नाह ४२	निगि ४३	निःस्वात ४४	पशु ४५

१. जु० र०, २२

४. प्रे० वा० ४

७. जु० र०, ६

१०. जु० र०, १२

१३. जु० र०, ३२

१६. जु० र०, ५१

१९. जु० र०, १५४

२२. जु० र०, १७

२५. जु० र०, १२

२८. जु० र०, ११४

३१. जु० र०, १०

३४. जु० र०, २३

३७. प्रे० वा० ४०

४०. जु० र०, २१

४३. जु० र०, ४८

२. जु० र०, ११६

५. जु० र०, ५२

८. जु० र०, १०

११. जु० र०, १३

१४. जु० र०, ३२

१७. जु० र०, ५६

२०. जु० र०, १६५

२३. जु० र०, १७

२६. जु० र०, ६३

२९. जु० र०, ६५

३२. जु० र०, ११

३५. जु० र०, ३१

३८. जु० र०, १२८

४१. जु० र०, ५८

४४. जु० र०, ४८

३. दान लीला ६

६. जु० र०, २०५

९. जु० र०, १२

१२. जु० र०, २७

१५. जु० र०, ४३

१८. जु० र०, ५६

२१. जु० र०, १८५

२४. जु० र०, ६

२७. जु० र०, ६७

३०. जु० र०, १

३३. जु० र०, २३

३६. जु० र०, २११

३९. जु० र०, ८

४२. जु० र०, ११७

४५. जु० र०, १

पाक्ष १	पुरावी २	पीर ३	प्रभुता ४	पितम्बर ५
पांति ६	पक्षा ७	पिय ८	परजं ९	प्रवीन १०
पदुम ११	प्रह्लाद १२	फनि १३	बनिता १४	वट १५
वसंत १६	बधिक १७	वारुणी १८	बिटप १९	बिम्ब २०
वैनु २१	बागर २२	बयार २३	बाढ़े २४	बखानी २५
बिधि २६	बाकै २७	बधम्बर २८	बारुमी २९	बावन ३०
बोरो ३१	भीर ३२	भान ३३	भीर ३४	भाग ३५
भूषन ३६	भृकुट्टन ३७	भेष ३८	मानुष ३९	भंकारन ४०
मानिक ४१	भीर पक्षा ४२	मई ४३	मौल ४४	माल ४५

-
- | | | |
|-----------------|-----------------|-----------------|
| १. सु० १०, १ | २. सु० १०, ५ | ३. सु० १०, ७ |
| ४. सु० १०, ११ | ५. सु० १०, ३४ | ६. सु० १०, ५२ |
| ७. सु० १०, ८६ | ८. सु० १०, ११२ | ९. सु० १०, ११८ |
| १०. सु० १०, ११६ | ११. सु० १०, ५२ | १२. सु० १०, १८ |
| १३. सु० १०, २११ | १४. सु० १०, २४ | १५. सु० १०, ३५ |
| १६. सु० १०, ४६ | १७. सु० १०, ५४ | १८. सु० १०, १७६ |
| १९. सु० १०, १८३ | २०. सु० १०, २१३ | २१. सु० १०, ४ |
| २२. सु० १०, ८ | २३. सु० १०, ८ | २४. सु० १०, १० |
| २५. सु० १०, ११ | २६. सु० १०, ३३ | २७. सु० १०, १६६ |
| २८. सु० १०, २०८ | २९. सु० १०, २०४ | ३०. प्रकीर्णक |
| ३१. सु० १०, १ | ३२. सु० १०, ११ | ३३. सु० १०, २० |
| ३४. सु० १०, २० | ३५. सु० १०, २१ | ३६. सु० १०, ४४ |
| ३७. सु० १०, १६५ | ३८. सु० १०, २१० | ३९. सु० १०, १ |
| ४०. सु० १०, १ | ४१. सु० १०, ६ | ४२. सु० १०, १५ |
| ४३. सु० १०, ३६ | ४४. सु० १०, ४५ | ४५. सु० १०, ८६ |

मेह १	मखियां २	मारग ३	माही ४	मुहटन ५
मरजाद ६	मैन ७	रेनुका ८	राज ९	रसलानि १०
रैन ११	लकुटी १२	लाइली १३	लाज १४	लांक १५
लीनी १६	लास १७	वारत १८	विमाल १९	विमाल २०
विष २१	विदेस २२	संजम २३	सदासिव २४	शुक्र २५
संकर २६	सरूप २७	सीत २८	सकुचाय २९	समै ३०
सांस ३१	सीध ३२	सनेह ३३	सासन ३४	ग्रीन ३५
सुसमा ३६	स्वारथ ३७	सविरोह ३८	सुरन ३९	सावन ४०
द्वि ४१				

-
- | | | |
|-----------------------|-------------------|-------------------|
| १. सु० र०, ६३ | २. सु० र०, १२६ | ३. सु० र०, १०५ |
| ४. सु० र०, १४७ | ५. सु० र०, १६५ | ६. प्रे० वा०, ७ |
| ७. सु० र०, ३७ | ८. सु० र०, २ | ९. सु० र०, २ |
| १०. सु० र०, ४ | ११. सु० र०, १० | १२. सु० र०, २ |
| १३. सु० र०, ७ | १४. सु० र०, २६ | १५. सु० र०, १९ |
| १६. सु० र०, १५९ | १७. सु० र०, १६६ | १८. सु० र०, १४ |
| १९. सु० र०, २६ | २०. सु० र०, २१४ | २१. सु० र०, १४९ |
| २२. सु० र०, ७ | २३. सु० र०, ७ | २४. सु० र०, १० |
| २५. सु० र०, १३ | २६. सु० र०, १३ | २७. सु० र०, १७ |
| २८. सु० र०, १० | २९. सु० र०, १६ | ३०. सु० र०, २७ |
| ३१. सु० र०, ५४ | ३२. सु० र०, ६ | ३३. सु० र०, १०० |
| ३४. सु० र०, १३४ | ३५. सु० र०, १३५ | ३६. सु० र०, १८६ |
| ३७. प्रे० वा०, १५ | ३८. प्रे० वा०, २० | ३९. प्रे० वा०, २४ |
| ४०. सु० र०, प्रकीर्णक | ४१. सु० र०, ७ | |

कृष्ण के लिए प्रयुक्त शब्द

कान्हू जू १	कारे पितंबरवारे २	गुपालहिं ३
गोपकुमार ४	गुबिंदहि ५	गांवरे की जायौ ६
जदुरैया ७	नंद के कुमार ८	नंद की शीहरा ९
नंदकिशोर १०	नंद के तांवरे ११	नंद के लाहिली १२
नंद लला १३	नंद के नंदन १४	नटनागर १५
नंदकुमार १६	नंद गांव के किशोर १७	पीतपटवारे १८
बांतरी वारे १९	बजराज २०	ब्रज चंद २१
बनवारी २२	बाकै बिहारी २३	बनमाली २४
माखन बाखन हार २५	मनमोहन २६	मोहन २७
लाहिली हेल वहीर की २८	लला २९	लाउ ३०
लाउ गुपाल ३१	रसखानि ३२	तांवरे ग्वार ३३
ल्याम ३४	हरि ३५	हलिया ३६

१. सु० र०, ४२
 ४. सु० र०, १४०
 ७. सु० र०, २४
 १०. सु० र०, ७७
 १३. सु० र०, १४४
 १६. सु० र०, २०२
 १९. सु० र०, ७
 २२. सु० र०, ७३
 २५. सु० र०, १६
 २८. सु० र०, ७
 ३१. सु० र०, २०१
 ३४. सु० र०, ७

२. सु० र०, ५४
 ५. सु० र०, ८
 ८. सु० र०, ६
 ११. सु० र०, ६५
 १४. सु० र०, १६०
 १७. दानलीला, ७
 २०. सु० र०, १५
 २३. सु० र०, १६६
 २६. सु० र०, ३३
 २९. सु० र०, २७
 ३२. सु० र०, ४
 ३५. सु० र०, २१

३. सु० र०, १०७
 ६. सु० र०, ४६
 ९. सु० र०, २५
 १२. सु० र०, ११०
 १५. सु० र०, २००
 १८. सु० र०, ११
 २१. सु० र०, १०
 २४. सु० र०, २००
 २७. सु० र०, ४३
 ३०. सु० र०, १४१
 ३३. सु० र०, ६
 ३६. सु० र०, ६८

देशी शब्द

कंस ४	कौज २	करीगो ३	कहावै ४	क्वार ५
सात ६	सौर ७	सरयाँ ८	सैलत ९	गिरकी १०
गाढे ११	गावै १२	गावत १३	गौरी १४	म्बारो १५
गहगही १६	घेरत १७	घनैरो १८	चाहो १९	चायन २०
चराफायो २१	चितै २२	क्वाव २३	चम्कै २४	चुरायरही २५
चाराँ २६	चुमी २७	चाँतरा २८	चउकै २९	हौनेहि ३०
होहरा ३१	हूटगयी ३२	हाल्लै ३३	हैलहि ३४	ढाढ़े ३५
होल्लो ३६	हार ३७	हैडही ३८	ढीगो ३९	ढूँढयो ४०
ढिटौनहिं ४१	ढोटा ४२	ढरकायो ४३	टोना ४४	टेर ४५
टूटयो ४६	ठहराति ४७	ठाढ़े ४८	ठैयां ४९	छौंका ५०

१. सु० र०, १	२. सु० र०, ५	३. सु० र०, ७
४. सु० र०, १४	५. सु० र०, १८७	६. सु० र०, १६१
७. सु० र०, ४७	८. सु० र०, २१	९. सु० र०, २१
१०. सु० र०, ७	११. सु० र०, १०	१२. सु० र०, १३
१३. सु० र०, १२	१४. सु० र०, २७	१५. सु० र०, ६६
१६. सु० र०, १६६	१७. सु० र०, २६	१८. सु० र०, २८
१९. सु० र०, ६	२०. सु० र०, १७	२१. सु० र०, २५
२२. सु० र०, २७	२३. सु० र०, ६६	२४. सु० र०, १०८
२५. सु० र०, १५४	२६. सु० र०, १६६	२७. सु० र०, १७३
२८. सु० र०, १८२	२९. दानलीला, १	३०. सु० र०, २०
३१. सु० र०, २५	३२. सु० र०, २६	३३. सु० र०, ३६
३४. सु० र०, ४५	३५. सु० र०, १०	३६. सु० र०, २३
३७. सु० र०, २३	३८. सु० र०, १६६	३९. सु० र०, ७
४०. सु० र०, १७	४१. सु० र०, २०	४२. सु० र०, २८
४३. सु० र०, २५	४४. सु० र०, २६	४५. सु० र०, १७८
४६. सु० र०, १०	४७. सु० र०, ६४	४८. सु० र०, ११
		४९. सु० र०, ६

तरियै १	तातो १	तरसाय रही ३	तौरत ४	दारे ५
दैस्यो ६	दुस्यो ७	दैन दिना ८	दिवावत ९	धूर १०
धरे ११	निहारौ १२	नसायो १३	नैसुक १४	नबावै १५
निकरयो १६	न्हाय १७	निकली १८	नैना १९	नवैया २०
निकरे २१	नैक २२	निरतो २३	पुरावै २४	पावौ २५
परंगो २६	पावत २७	पैजनी २८	पूयो २९	पायन ३०
प्यारी ३१	पूतरी ३२	पास ३३	फिरै ३४	बतावै ३५
बढ़ावै ३६	बाजति ३७	बजाव्यो ३८	वाती ३९	बगवौ ४०
बभराय ४१	बैरिन ४२	बतियां ४३	भजियै ४४	भनायो ४५

१. सु० र०, ८	२. सु० र०, ६३	३. सु० र०, १५४
४. सु० र०, १७५	५. सु० र०, १८	६. सु० र०, १७
७. सु० र०, ६३	८. सु० र०, १००	९. सु० र०, १८३
१०. सु० र०, २०	११. सु० र०, ४८	१२. सु० र०, ३
१३. सु० र०, ५	१४. सु० र०, ७	१५. सु० र०, १३
१६. सु० र०, २२	१७. सु० र०, २७	१८. सु० र०, २७
१९. सु० र०, ३६	२०. सु० र०, ४६	२१. सु० र०, ४८
२२. सु० र०, ६६	२३. सु० र०, १७८	२४. सु० र०, ५
२५. सु० र०, ५	२६. सु० र०, ७	२७. सु० र०, १२
२८. सु० र०, २१	२९. सु० र०, २२	३०. सु० र०, १७
३१. सु० र०, ६६	३२. सु० र०, १०८	३३. सु० र०, १६६
३४. सु० र०, २१	३५. सु० र०, १३	३६. सु० र०, १४
३७. सु० र०, २१	३८. सु० र०, २३	३९. सु० र०, ५५
४०. सु० र०, ५६	४१. सु० र०, ६३	४२. सु० र०, ६६
४३. सु० र०, १११	४४. सु० र०, ६	४५. सु० र०, ५

मुलकायी १	मैया १	मायी ३	मूठ ४	मारोनि ५
मारोबी ६	मौरत ७	मारत ८	महमदी ९	यी १०
रिफायागयी ११	रौकलियाँ १२	रपटाय १३	रित १४	लचैयत १५
लैयत १६	लसी १७	लचकाय १८	लहराय रही १९	लटकी २०
लूटयी २१	ललही २२	विलवै २३	वित्तारौ २४	वारौ २५
वच्ची २६	बगराय २७	अंवारन २८	वीयी २९	ववारी ३०
वांवो ३१	बुमायन ३२	समायागयी ३३	वीरी परी ३४	वीन ३५
हंयौ ३६	हुती ३७	हिय ३८	हांती ३९	

विदेशी शब्दावली

जवानक ४०

जादी ४१

जजूबी ४२

ल्लाज ४३

लूब ४४

१. बु० र०, ४३

४. बु० र०, ८८ ६८

७. बु० र०, १७१

१०. बु० र०, ८

१३. बु० र०, ६०

१६. बु० र०, ६

१९. बु० र०, १५४

२२. बु० र०, १६६

२५. बु० र०, ३

२८. बु० र०, २

३१. बु० र०, १५

३४. बु० र०, ६३

३७. बु० र०, २४

४०. बु० र०, १८४

४३. बु० र०, ८०

२. बु० र०, ४६

५. बु० र०, १३५

८. बु० र०, १६१

११. बु० र०, २५

१४. बु० र०, ११३

१७. बु० र०, ३८

२०. बु० र०, १६४

२३. बु० र०, २

२६. बु० र०, ३४

२९. बु० र०, ६

३२. बु० र०, १७

३५. बु० र०, ६५

३८. बु० र०, २७

४१. दानलीला ६

४४. प्रेम वाटिका, ३३

३. बु० र०, ५८

६. बु० र०, १३५

९. बु० र०, १८८

१२. बु० र०, ४३

१५. बु० र०, ६

१८. बु० र०, ८१

२१. बु० र०, १७८

२४. बु० र०, ३

२७. बु० र०, ६३

३०. बु० र०, १४

३३. बु० र०, २५

३६. बु० र०, १४५

३९. बु० र०, ७

४२. प्रेमवाटिका ५

गुलाब १	गदर २	कलगी ३	जरबु ४	जरतारी ५
जांबाजी ६	बाजी ७	तरसाइ ८	तलफें ९	ताख १०
तलवार ११	दिल १२	दिवानी १३	नाहक १४	नैजा १५
निहाल १६	फसादी १७	बदनाम १८	विहाल १९	बादसा २०
मजूरी २०	मीर खान २१	मौलवी २२	महबूब २३	लैली २४
सुमार २५	सिरसाज २६			

विभिन्न बोलियों के या देशी भाषाओं के शब्द

रसखान की भाषा में वनैक देशी बोलियों के शब्द भी मिलते हैं । अपभ्रंश शब्दावली को भी कहीं कहीं रसखान ने अपनाया है । गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाय २७ में मुक्ताहल शब्द अपभ्रंश का है । बाज महं दधि बैचत जात ही २८ में 'ही' शब्द अपभ्रंश का है जिसका अर्थ है धी । बैनु बजावत गोपन गावत ग्वालन के संग गोमधि आयी । २९ अपभ्रंश में तप्तमी का चिह्न इ है, वह इ यहां घ में लग गई जिसका अर्थ हुआ गायी के मध्य में ।

राजस्थानी के भी एक दो शब्द रसखान की भाषा में मिल जाते हैं - तू गरबाइ कहा भगरे रसखानि तेरे बस बावरी होवे ३० यहां होवे शब्द

१. सु० र०, ८०	२. सु०-र०, प्रे० वा० ४८	३. सु० र०, ६७
४. सु० र०, १३७	५. सु० र०, १६६	६. प्रे० वा०, ३१
७. प्रे० वा०, ३१	८. सु० र०, १५४	९. सु० र०, १८१
१०. सु० र०, १६१	११. प्रे० वा०, २६	१२. प्रे० वा०, ३१
१३. सु० र०, ७४	१४. दानलीला, ४	१५. प्रे० वा०, २६
१६. दानलीला, ६	१७. सु० र०, ८२	१८. सु० र०, १४२
१९. प्रे० वा०, ४८	२०. सु० र०, १११	२१. दानलीला, ५
२२. प्रे० वा०, १३	२३. प्रे० वा०, १०	२४. प्रे० वा०, ३३
२५. सु० र०, ६	२६. सु० र०, १५	२७. सु० र०, ११
२८. सु० र०, ४३	२९. सु० र०, ५८, देखिये पद ५७ हस्तलिखित प्रति १०५७, रत्नाकर संग्रह, ना० प्र० समा काशी, ३०. सु० र०, १०७ ।	

राजस्थानी शब्द 'हौसी' का रूप है जिसका अर्थ है होगा ।

रसखान की भाषा में कुछ अवधी भाषा के भी शब्द पाये जाते हैं । ता दिन तैं नहिं धीर रह्यौ जा जानि लयौ बति कीनी पंवारी ।^१ पंवारी अवधी भाषा का शब्द है । ता क्षि तै परि बैरी बितासिनी फाँकन दैति नहीं है दुवारी^२, 'दुवारी' अवधी का प्रयोग है । उसी प्रकार होत बनाव बचावौं तु क्यौं कीँ क्यौं बलि भेटियै प्रान पियारी^३ । पियारी अवधी का रूप है । ब्रज भाषा में दारी और प्यारी होंगे ।^४

भाषा विज्ञान के विद्वान्तों के क्षेत्र में रसखान की भाषा पर सामूहिक दृष्टि से विचार करने पर एक मूल्यवान् देन की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है, वह है रसखान की भाषा में प्रचलित शब्द-निर्माण-प्रणाली, जो मूल शब्दों की तत्त्वमता से तद्भवता से की ओर बढ़ती है । इस प्रवृत्ति को बल प्रदान करने के पलए अनेक सजीव एवं प्रभावोत्पादक शब्दों तथा मुहावरों के गढ़ने में जो ब्रज भाषा के अनुरूप दिखाने दिये, रसखान ने उदारता से काम लिया है । साथ ही उन्होंने मूल रूपों का भी पूर्ण आदर किया है । सारांश यह है कि इस क्षेत्र में उनकी यह देन अपनी समुचित विशेषता के लिए सम्माननीय है ।

१. सु० २०, ५२

२,३. सु० २०, ६६ - देखिये पद २० हस्तलिखित प्रति १०५७ रत्नाकर संग्रह,
ना० ५० तथा काशी ।

४. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रसखानि (ग्रन्थावली) में दोनों को ब्रज भाषा का रूप दे कर प्रयुक्त किया है । देखिये सु० २०, पद ६६

सप्तम अध्याय

रसज्ञान की भक्ति-भावना और दर्शन

(संक्षेप क) भक्ति-भावना

प्रस्तावना

पहले बतलाया जा चुका है कि रसज्ञान का समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी है। हिन्दी-साहित्य का भक्ति-युग (संवत् १३७५ से १७०० वि० तक) हिन्दी का स्वर्णयुग माना जाता है। कारण यह है कि इस युग में हिन्दी के अनेक महाकवियों - विद्यापति, कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, नन्ददास, तुलसीदास, केशवदास, रसज्ञान आदि ने अपनी अनूठी काव्य-रचनाओं से साहित्य के मण्डार को सम्पन्न किया। इस युग में सत्रहवीं शताब्दी का स्थान महत्वपूर्ण है - विशेषकर सगुण भक्ति-काव्य की दृष्टि से। सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, रसज्ञान आदि की रचनाओं ने इस शताब्दी के गौरव को बढ़ा दिया है।

भक्ति का जो बान्दोलन दक्षिण से चला था वह हिन्दी-साहित्य के भक्तिकाल तक सारे भारत में व्याप्त हो चुका था। उसकी विभिन्न धाराएं उच्च भारत में फैल चुकी थीं। दर्शन, धर्म तथा साहित्य के सभी क्षेत्रों में उसका भरपूर प्रभाव था। एक ओर साम्प्रदायिक भक्ति का बोलबाला था। अनेक तीर्थ-स्थान, मंदिर, मठ और ब्रह्मड़े उसके केन्द्र थे। दूसरी ओर ऐसे भी भक्त थे जो किसी भी तरह की साम्प्रदायिक छलचल से दूर रह कर भगवान् के भजन में लीन रहना ही पसन्द करते थे। तुलसीदास, रसज्ञान आदि इसी प्रकार के भक्त थे। वे स्वच्छन्द भक्ति के गायक थे।

भक्तिकाल के व्यापक अध्ययन से पता चलता है कि उसकी बहुत सी ऐसी विशेषताएं हैं जो सभी भक्त कवियों में समान रूप से पाई जाती हैं। रसज्ञान की कविता में भी वे देखी जा सकती हैं। सभी भक्तों ने भगवान् का निरूपण किया है। यह दूसरी बात है कि अपनी-अपनी रुचि और प्रवृत्ति के

बनुसार किसी ने भगवान् के किसी रूप पर अधिक बल दिया है और किसी ने उसके अन्य रूपों पर । लेकिन यह निश्चित है कि सभी की दृष्टि में भगवान् एक हैं, अद्वितीय हैं । वह निर्गुण भी है और सगुण भी । वही संसार की रचना करता है और संसार करता है । वह इस जगत् का शासक है । घट-घट व्यापी है । सर्व शक्तिमान् है । वह सच्चिदानन्द है । भक्त का एकमात्र लक्ष्य है उस भगवान् और उसके प्रेम को प्राप्त करना । भगवान् के प्रति प्रेम ही 'भक्ति' है । उसके पा लेने पर जीव को और किसी वस्तु की कामना नहीं रह जाती ।

भगवान् और उसकी भक्ति को पा लेने के लिए बहुत से साधन बतलार गए हैं । सभी भक्तों ने भक्त और भगवान् के बीच रागात्मक-उन्मत्त की स्थापना पर बड़ा जोर दिया है । इसके बिना दूसरे साधन व्यर्थ हो जाते हैं । साधन के रूप में गुरु और उत्तम की महिमा सभी ने बतलाई है । जीव को सांसारिक विषयों से हटाकर भगवान् की ओर लगाने के लिए , उसके मन में वैराग्य और ईश्वर-प्रेम की भावना जगाने के लिए , सभी ने रीति-वाक्यों , अनेक प्रकार के उपदेशों और चेतावनी की योजना की है । सभी ने चित्त को शुद्ध रखने पर जोर दिया है । बाहरी आचार्यों, बाढम्बर आदि की कटु निन्दा की है । भगवान् के प्रति शरणागति या आत्मनिवेदन को सबसे अधिक कल्याणकारी बतलाया है ।

रसखान के समय हिन्दी-साहित्य में भक्ति की दो मुख्य धारारें थीं - निर्गुण भक्तिधारा और सगुण भक्तिधारा । निर्गुण भक्तिधारा के कवियों ने भगवान् के निर्गुण-निराकार रूप की उपासना पर बल दिया । उन्होंने भक्त-पूज्य आदि के विधि-विधान की आवश्यकता नहीं स्वीकार की । भगवान् के अवतारों, लीलाओं आदि को माया मानकर उसे अपनी भक्ति का विषय नहीं बनाया । उनका सामान्य सिद्धान्त था - ईश्वर को अपने भीतर देखो , तारे संसार में उसकी विभूति का दर्शन करो ।

निर्गुण भक्ति-धारा की भी दो शाखारें थीं । पहली शाखा में 'निर्गुण काव्यधारा' या 'निर्गुण-सम्प्रदाय' नाम दिया गया है । इस शाखा की विशेषता यह थी कि इसने अधिकतर प्रेरणा भारतीय ज़ीतों से ग्रहण की । इसमें ज्ञानमार्ग की प्रधानता थी । इसीलिए पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'ज्ञानाश्रयी शाखा' कहा

है ।^१ इस शाखा के कवियों ने भक्ति-साधना के रूप में योग-साधना पर बहुत बल दिया है । इस शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर हुए ।

दूसरी शाखा सूफ़ी काव्य-धारा के नाम से विख्यात है । इस शाखा के कवियों ने हठयोग आदि की साधना की अपेक्षा भावना पर जोर दिया । इसका मुख्य आधार प्रेम था । प्रेम पर आक्रांत होने के कारण ही आचार्य शुक्ल ने इसे 'प्रेममार्गी शाखा' कहा है^२ । इस शाखा के भक्त कवियों की भक्ति-भावना पर विदेशी प्रभाव अधिक है । इस प्रसंग में यह बात ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रहती कि इस शाखा के मलिक मुहम्मद जायसी आदि कवि मुसलमान थे । इसलिए उन्होंने अपने उत्कारों के अनुसार भक्ति का निरूपण किया । वे भारतीय थे । इसलिए उन्होंने अपने प्रेमास्थानों के लिए भारतीय विषय जैसे, भारतीय विचार-धारा को भी अपनाया , परन्तु उस पर विदेशी रंग भी बढ़ा दिया । रसखान भी मुसलमान थे । अतएव उन पर इस्लाम का प्रभाव अनिवार्य था । वे कृष्णभक्त ही कर वृन्दावन में निवास करते थे । उन्होंने अन्य कृष्ण भक्तों की भांति ही कृष्ण की लीलाओं का गान किया । परन्तु साथ ही उन पर सूफ़ी प्रेम-मदति का प्रभाव भी पड़े बिना नहीं रह सका । वे किसी मतवाद में बंधे नहीं । उनका प्रेम स्वच्छंद था । जो उन्हें अच्छा लगा, उन्होंने बिना किसी संकोच के उसे अपना लिया । अतएव उनकी कविता में भारतीय भक्ति-मदति और सूफ़ी शक-हकीक़ी का सम्मिश्रण मिलता है ।

तृतीय भक्ति-धारा की सबसे बड़ी विशेषता उसमें भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम की महिमा का गान है । इस गान के लिए भक्तों ने भगवान् के अवतारों में राम और कृष्ण को अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया है । इसीलिए भक्तिकाल की (और दूरे कालों की भी) रचनाओं में इनकी ही महिमा मुख्य रूप से गाई गई है । इन दोनों अवतारों के आधार पर ही तृतीय भक्तिधारा हिन्दी-साहित्य में दो उपधाराओं के रूप में विभाजित मिलती है - रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा ।

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ८६

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ८६

राम की उपासना को निर्गुण सन्तों ने भी वादर दिया और सगुण भक्तों ने भी । अन्तर यह था कि निर्गुण-सम्प्रदाय में निर्गुण-निराकार राम की उपासना का प्रचार हुआ और सगुण-रामभक्तों ने उनकी अवतार-लीला को गौरव दिया । उन्होंने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित किया । राम-भक्ति शास्त्र में मर्यादावाद का पालन किया गया । दास्य भक्ति को प्रधानता दी गई । इसके सबसे बड़े कवि तुलसीदास हुए । कृष्ण भक्त कवियों की माधुर्य भक्ति का प्रभाव रामभक्ति पर भी पड़ा । इस शास्त्र में एक रतिक-सम्प्रदाय चल पड़ा । उसमें राम और सीता की शृंगार-लीलाओं का राधा-कृष्ण की शृंगार लीलाओं की भांति ही विलुप्त चित्रण किया गया । फिर भी कुल मिला कर इस शास्त्र में भगवान् के सौन्दर्य की अपेक्षा उनके शील और शक्ति का ही निरूपण अधिक किया गया है ।

कृष्ण-भक्ति-शास्त्र में भगवान् कृष्ण के सौन्दर्य-पक्ष की ही प्रधानता रही । कृष्ण का चरित्र विलक्षणताओं से भरा हुआ है । गीता का उपदेश करने वाले महाभारत के कृष्ण का व्यक्तित्व निराला है । लेकिन भक्त कवियों ने उनके इस लोककल्याणकारी रूप पर कम (प्रायः नहीं के बराबर) ध्यान दिया । उनका ध्यान कृष्ण के मधुर रूप और उनकी लीला माधुरी पर ही केन्द्रित रहा । भगवान् की महिमा का गान करते हुए कहीं-कहीं प्रसंगवश उनके लोकरक्षक रूप का भी उल्लेख कर दिया गया । मुख्य विषय गोपी-कृष्ण का प्रेम ही रहा ।

कृष्ण-भक्ति का केन्द्र वृन्दावन था । भगवान् कृष्ण की लीला-भूमि होने के कारण उनके भक्तों ने भी ब्रज को अपना निवास-स्थान बनाया । भारत के अनेक प्रान्तों से जाकर बहुत से भक्त वहाँ बस गए थे । कृष्ण भक्त ही जाने पर रसखान भी वृन्दावन में ही जा कर रहने लगे थे ।

रसखान कृष्णभक्ति-शास्त्र के कवि थे । वे कृष्ण भक्त ही क्यों हुए ? रामभक्त क्यों नहीं हो गए ? निर्गुण सन्त या सूपी भक्त क्यों नहीं हुए ? कहने वाले यह कह सकते हैं कि उनके भाग्य में कृष्ण भक्त होना ही लिखा था । दूसरे यह उच्चर कर सकते हैं कि कृष्ण-भक्त सन्तों के सम्पर्क में आए होंगे और उनसे प्रभावित होकर कृष्ण भक्त हो गए होंगे । तीसरे लोग यह भी कह सकते हैं कि

दिल्ली से ब्रज ही निकट था और विरक्त होने पर रसखान को वृन्दावन जाने की प्रेरणा मिली होगी । लेकिन यदि रसखान की जीवनी पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो इसका कारण कुछ और ही प्रतीत होगा । रसखान प्रेमी जीव थे । बनिये के लड़के और मानवती रमणी के साथ प्रेम-सम्बन्ध की चर्चा पहले की जा चुकी है । किसी के द्वारा बाधोप किये जाने पर रसखान के मन में भी यह प्रश्न उठा था कि इस तरह का सच्चा प्रेम भगवान् के साथ क्यों न किया जाय । और उन्होंने अपने प्रेम को भगवान् की ओर मोड़ दिया -

तोरि मानिनी तैं हियो, फोरि मोहिनी-मान ।

प्रेम देव की इबिहि लहि, पर मियां रसखान ॥^६

उसके बाद फिर मुड़कर सांसारिक विषयों की ओर नहीं देखा, ईश्वर-प्रेम में ही मग्न रहे ।

इस प्रसंग में एक विचारणीय प्रश्न उठता है कि क्या रसखान भक्तकवि थे ? इसका स्पष्ट उत्तर है कि वे सूर, तुलसी आदि की भांति भक्त कवि नहीं थे । जीवन में भक्त होने मात्र से कोई भक्त कवि नहीं हो जाता । रसखान की सारी रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वे अधिकतर में भक्ति-परक न होकर शृंगारपरक ही हैं । सत्य तो यह है कि उनके कुछ ही पद्य निर्विवाद-रूप से भक्तिपूर्ण कहे जा सकते हैं । 'प्रेमवाटिका' में कुछ पद्य ऐसे भी हैं जिनमें लौकिकप्रेम और जलौकिक प्रेम दोनों पर घटाया जा सकता है । तो फिर बहुसंख्य शृंगारपरक रचनाओं के मुकाबले में कुछ ही भक्तिपरक रचनाओं के बाधार पर रसखान की शृंगारी कवि न मानकर भक्तकवि कैसे माना जा सकता है ?

इस विषय में बाबाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की स्थापना ध्यान देने योग्य है - 'रसखानि ने स्वयम् प्रेम को साध्य कहा है -

जेहि पारं बैकुंठ बरु हरिहुं की नहिं चाहि ।

सोइ जलौकिक बुद्धि बुम सरस प्रेम कहाहि ॥

श्री बल्लभाचार्य ने हृदय के संस्कार और विकास की दृष्टि से भक्ति को साध्य व

कहा है, पर ईश्वर-भक्ति को ही, यह कमी न भूलना चाहिए । पर 'रसखानि' स्पष्ट कहते हैं -

इक-जंगी बिनु कारनहिं, एक रस सदा समान ।

गने प्रियहिं तबै तब जी, तौई प्रेम प्रमान ॥

श्री बल्लभाचार्य के अनुसार भगवद्भक्ति या जलौकिक प्रेम ही साध्य हो सकता है । उसे ही रसखानि, निर्वैतुक, स्वरस होना चाहिए । पर रसखानि लौकिक प्रेम में भी इसे स्वीकार करते हैं । तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छन्द रखते थे उसी प्रकार भक्ति की साम्प्रदायिक नीति से भी । वतः ये भक्ति-मार्गी कृष्णभक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कविर्बों सबसे पृथक् स्वच्छन्दमार्गी प्रेमीन्मत्त गायक थे । कोई इन्हें इनकी भक्तिविषयक रचना के कारण भक्त कहता हो तो कहे, पर इतने 'व्यतिरेक' के साथ कहे कि ये स्वच्छन्द प्रेममार्गी भक्त थे, तो कोई बाधा नहीं है ।^{१६}

अपनी उपर्युक्त स्थापना के समर्थन में मित्र जी ने एक दूसरा ठोस तर्क भी दिया है । रसखान की काव्यशैली कृष्णभक्त कवियों की परम्परागत शैली से विन्न है । कृष्णभक्तों की अधिकतर रचनाएं गीत में ही मिलती हैं । काव्य की कवित्त-सवैया वाली शैली में इन्होंने पूरी वात्स्या नहीं दिखाई । मध्यकाल के शृंगारी कवियों ने (विशेषकर के परवर्ती रीतिकाल के शृंगारी कवियों में) कवित्त-सवैया वाली शैली को ही प्रमुक्ता दी है ।^{१७} उनकी रचना सुन्दर समझी जाने वाली रचनाएं इसी शैली में लिखी गई हैं । उनकी स्थाति और लोकप्रियता उनके कवित्त सवैया पर ही जाति है । इस सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिए कि 'सुबान रसखानि' के आरम्भिक कवित्त-सवैया में भक्ति-भाव की ही प्रधानता है ।

वस्तुतः रसखान स्वच्छन्द प्रेम के कवि हैं । उन्होंने अधिकतर शृंगारकाव्य ही लिखा है । किन्तु उन्होंने भक्ति काव्य की भी रचना की है । शृंगारपरक रचनाओं में भी कहीं-कहीं भक्ति-भावना का स्पष्ट संकेत है । इस प्रकार उनके का

१. 'रसखानि', प्रस्तावना, पृ० २१-२२

२. देखिए - 'रसखानि', प्रस्तावना, पृ० २२

में भक्ति के तत्त्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। इसी वाधार पर इस अध्याय में रसज्ञान की भक्ति-भावना का विवेक किया जा रहा है।

भक्ति का स्वरूप

भक्तिशास्त्र के वाचार्यों ने भक्ति को प्रेमस्वरूप बतलाया है। शांडिल्य ने अपने भक्तिसूत्र में भक्ति की परिभाषा करते हुए कहा है कि ईश्वर में की गई परानुरक्ति भक्ति है।^१ नारद ने भी भगवान के प्रति किए गए परम प्रेम को भक्ति कहा है।^२ मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति का लक्षण करते हुए बतलाया है कि भगवद्धर्म के कारण हुत चित्त की परमेश्वर के प्रति धारावाहिक वृत्ति को भक्ति कहते हैं।^३ पुराणों वादि में भी इसी प्रकार की भक्ति का निरूपण किया गया है। विष्णु-पुराण में भक्त ने भगवान् से प्रार्थना की है - हे भगवान् । जिस प्रकार युवतियों का मन युवकों में और युवकों का मन युवतियों में रमण करता है, उसी प्रकार मेरा मन तुममें रमण करे।^४ इसी तरह की प्रार्थना तुलसीदास ने भी भगवान् राम से की है - हे रघुनाथ राम । जैसे कामियों को कामिनी प्रिय होती है, जैसे लौभियों को धन प्रिय होता है, वैसे ही तुम मुझे प्रिय लगौ।^५ कहने की आवश्यकता नहीं कि भक्तों ने लौकिक जीवन से इस प्रकार की उपमारं भगवान् के प्रति प्रेम की वृत्ति वासक्ति सूचित करने के लिए दी है।

रसज्ञान भी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति परमप्रेम को भक्ति मानते हैं।

-
१. वा परा नुरक्तिरीश्वरे । - शांडिल्य-भक्तिसूत्र, १।१।२
 २. सात्वत्स्मिन् परमप्रेमरूपा । - नारद-भक्तिसूत्र, २
 ३. हुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकतांगता ।
तवैशे मनोवृत्तिर्निरित्यंभिधीयते ॥ - भक्ति रसायन, १।३
 ४. भक्ति के विस्तृत विवेक के लिए देखिए - तुलसी-दर्शन-मीमांसा, अष्टम अध्याय
कामिहि नारि पिआरि जिमि लौभिहि प्रिय जिमि दाम ।
 ५. तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लगहु मोहि राम ॥
रामचरितमानस, ७।१३०

प्रेम की अतिशयता और अनन्यता का प्रतिपादन करने के लिए भक्तों ने
चातक का वादशी उपस्थित किया है। रसखान ने भी इस वादशी में अपनी वात्सा
प्रकट की है -

बिम्बल सरस रसखानि मिलि भई सकल रसखानि ।

सौं नवरसखानि कीं , बित चातक रसखानि ॥^१

संगार के अन्य लोग अपनी अपनी रूचि के अनुसार इन्द्र, सूर्य, गणेश
वादि देवताओं की उपासना करते हैं। उनकी भक्ति करके अपने अभीष्ट फलों की
प्राप्ति करते हैं। परन्तु रसखान की अनुरक्ति एकमात्र श्रीकृष्ण में ही है। उनका
दृष्टिकोण उदार है। उनके मन में विभिन्न प्रकार के देवों और देवियों की भक्ति
के विषय में कोई विरोधभाव नहीं है। वे दूसरों की निन्दा नहीं करते। दूसरे
लोग उन्हें भजना चाहते हैं तो भजें। रसखान की दृष्टि में भगवान् श्रीकृष्ण ही भजनी
हैं। वे अपने कृष्ण को चाहते हैं। उन्हें त्रिलोक की चिन्ता नहीं -

तेषु सुरेस दिनेस गनेस ब्रजेस घनेस महेस मनावी ।

कौज भवानी भजौ मन की सब बात सब बिधि जाइ पुरावी ।

कौज रमा भजि लैहु महाधन कौज कहुं मवांझि पावी ।

ये रसखानि वही मेरी साधन, और त्रिलोक रही कि मसावी ॥^२

भगवान् के प्रति परम प्रेम का उदय होने पर भक्त की सारी कर्मेन्द्रियां,
ज्ञानेन्द्रियां, मन और प्राण सब ईश्वर-निष्ठ हो जाते हैं। उसे इन सबकी सार्थकता
केवल इस बात में दिखाई देती है कि ये सब अपना उपकार केवल भगवान् की
महिमा के कीर्तन, श्रवण आदि में करें। रसखान का यह है कि रस-खानि वही
है जो रस-खानि श्रीकृष्ण में परम अनुराग रहे -

बैन वही उनके गुन गाइ वी कान वही बैन वीं जानी ।

हाथ वही उन गात वी वरु पाइ वहीवही अनुजानी ।

१. सुजान रसखानि, २१३

२. सुजान रसखानि, ५

जान वही उन जान के तंग औ भान वही स्रु जु करै मनमानी।
 त्यों रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि त्यों है रसखानि ॥^१
 इस ईश्वर-प्रेम की उपलब्धि अपने में इतनी ऊंची है कि इसकी तुलना में संसार
 के सारे ऐश्वर्य तुच्छ दिखाई पड़ते हैं -

कंचन मंदिर ऊंचे बनाइ के मानिक कारं उदा फलकैयत ।
 प्राप्त ही ते उगरी नगरी नग मौतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
 जयपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मधवा ललैयत ।
 ऐसे भर ती कछा रसखानि जो सांवरे ग्वार ती नेह न लैयत ॥^२

उसी प्रकार के प्रेम की (चाहे वह लौकिक ही या अलौकिक) यह विशेषता
 है कि पैसी केवल अपने प्रेमपात्र से ही प्रेम नहीं करता बल्कि उस प्रेमपात्र से सम्बन्ध
 रखने वाली प्रत्येक वस्तु उसे अत्यन्त प्रिय लगने लगती है । रसखान की भी यही दशा
 है । इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण वे कृष्ण की लकुटी और कामरी पर तीनों
 लोकों का राज्य त्यागने को तैयार हैं , नन्द की गायों को चराने में वे बाठों
 सिद्धियों और नवीं निधियों के सुख को भुला सकते हैं , ब्रज के वनों एवं उपवनों
 पर सोने के करौड़ों महल निहावर करने को प्रस्तुत हैं -

वा लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहु पुर की तजि डारैं ।
 बाठहु सिद्धि नवीं निधि की सुख नंद की गाय चराय बिजारैं ।
 र रसखानि जबै इन नैनन तैं ब्रज के बन बाग निहारैं ।
 कोटिक ये कलधौत के धाम करील के कुंज ऊपर वारैं ॥^३

भक्ति की महिमा

रसखान तुलसीदास की भांति भक्तकवि नहीं थे । यह भी निश्चय के साथ
 कहा जा सकता है कि उन्होंने वेदों, पुराणों या आगमशास्त्रों का अध्ययन नहीं

१. सुजान रसखानि, ४

२. सुजान रसखानि, ६

३. सुजान रसखानि, ३

किया था । लेकिन उन्होंने वेदों उत्संग किया था और उसके द्वारा ज्ञान की बहुत सी बातों की जानकारी हासिल की थी । अपने इसी ज्ञान के बाधार पर उन्होंने जोर देकर कहा है कि सभी वेदों, पुराणों, आगमों और स्मृतियों का निचोड़ प्रेम (अर्थात् ईश्वर-विषयक प्रेम) ही है -

श्रुति पुराण आगम स्मृतिहि, प्रेम सबहि को चार ।

प्रेम बिना नहि उपज द्विय, प्रेम-बीज- बंखार ॥^१

मोक्ष के अनेक साधन बतलाए गए हैं जिनमें तीन मुख्य हैं - कर्म, ज्ञान और उपासन । रसखान के अनुसार भक्ति या प्रेम इन सबसे श्रेष्ठ है । इसका कारण मनोवैज्ञानिक है । कर्म आदि में अहंकार बना रह सकता है या उसका फिर से उदय हो सकता है । परन्तु भक्ति-दशा में चित्त के द्रुत हो जाने पर अहंकार के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती । भक्ति रागात्मक वृत्ति है । संकल्प-विकल्पात्मक मन स्वभावतः रागात्मक है । वह शब्दियों के माध्यम से विषयों की ओर प्रवृत्त रहता है । इस प्रकार जीवों की वासना के बन्धन में बाधे रहता है । ईश्वर-विषयक प्रेम का उदय होने पर काम, क्रोध आदि अपने आप तिरोहित हो जाते हैं । इसी अभिप्राय से रसखान ने इस परमप्रेम को काम आदि से परे कहा है -

काम क्रोध मद मोह मय लोभ डोह मात्सर्य ।

इन सब ही तैं प्रेम है परे, कहत मुनिवर्य ॥^२

सभी भक्तों ने इस बात पर जोर दिया है कि भक्ति-भाव के अभाव में पुस्तकी विद्या बिल्कुल बेकार है । तुलसीदास ने भी इसे वाक्यज्ञान कहा है और बतलाया है कि वाक्यज्ञान मात्र से भव-सागर को पार करना असम्भव है ।^३ रसखान के पूर्ववर्ती कवि कबीरदास ने तो बड़े कड़े शब्दों में कारे शास्त्रज्ञान की सिल्ली उड़ाकर ईश्वर-प्रेम की महिमा का बखान किया है -

१. प्रेमाटिका, ९०

२. प्रेमाटिका, ९४

३. विनयपत्रिका, १२३।२

पोथी पढ़ि पढ़ि जा मुसा, पंडित भया न कोइ ।

एकै बासर पीव का , पढ़ै तु पंडित होइ ॥^१

रसखान ने भी मानों कबीर के स्वर में स्वर मिला कर घोषणा की है कि प्रेम को जाने बिना शास्त्र पढ़कर पंडित होना या कुरान पढ़कर मौलवी होना व्यर्थ है -

शास्त्र पढ़ि पंडित भर, के मौलवी कुरान ।

तु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान ॥^२

उनकी मान्यता है कि जिसने प्रेम को नहीं जाना, उसने कुछ भी नहीं जाना और जिसने प्रेम को जान लिया ,उसके लिए कुछ भी जानने योग्य बात शेष नहीं रही -

जैहि बिनु जानै कहुहि नहिं जान्यो जात विशेष ।

और प्रेम जैहि जानि कै, रहि न जात कहु शेष ॥^३

संसार में जितने भी सुख हैं (चाहे वे विषयों से प्राप्त हों या पूजा, निष्ठा और ध्यान से) भक्ति का सुख उन सबसे बढ़कर है -

दंपति सुख करु-विषय-रस पूजा निष्ठा ध्यान ।

ज्ञ तें परे बखानियै, सुख प्रेम रसखानि ॥^४

दुःख के नाश और आनन्द की प्राप्ति के ज्ञान, ध्यान आदि जितने भी साधन बतलाए गए हैं, वे सब प्रेम-भक्ति के बिना निष्फल हैं -

ज्ञान ध्यान विद्यामती, मत बित्वास बिबेक ।

प्रेम बिना सब धुरि हैं, जगजा एक जमेक ॥^५

१. कबीर, पृ० ३५

२. प्रेमसाटिका, १३

३. प्रेमसाटिका, १८

४. प्रेमसाटिका, १६

५. प्रेमसाटिका, २५

प्रेम-भक्ति की महिमा इतनी बड़ी है कि उसे प्राप्त कर लैने पर भक्त भगवान् के बैकुण्ठ-लोक और स्वयं भगवान् की भी कामना नहीं करता , वह शुद्ध प्रेम-मय हो जाता है -

जैहि पारं बैकुण्ठ अरु हरिहु की नहिं चाहि ।

सोई जलौकि सुद सुम सरस सुप्रेम कहाहि ॥^६

सामान्य रूप से जीव के चार पुरुषार्थ बतलाए गए हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इन चारों में मोक्ष सबसे महान् है । परन्तु प्रेम-भक्ति की तुलना में मोक्ष भी तुच्छ है । इसीलिए सच्चा भक्त मोक्ष प्राप्त करने की कामना नहीं करता । स्वयं भगवान् भी भक्तों की इस विशेषता को जानते हैं । अतएव वे उन्हें मुक्ति न देकर भक्ति का ही वरदान देते हैं । गौस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है -

उगुनौपायक मोक्ष न लेहीं ।

तिन्ह कहुं भेद भगति प्रभु देहीं ॥^७

रसखान का भी ऐसा ही विश्वास है । इसका कारण है । ज्ञान-मार्ग के तहारे प्राप्त किए गए मोक्ष पद के खो जाने की सम्भावना बनी रहती है । लेकिन, प्रेम-भक्ति की विशेषता यह है कि उसका उदय होने पर संसार के जितने भी बन्धन हैं वे सब एकबार ही उदा के लिए नष्ट हो जाते हैं -

याही तैं सब मुक्ति तैं, उही बढ़ाई प्रेम ।

प्रेम मर नहि जाहिं सब, बधे जातु के नैम ॥^८

प्रेम-भक्ति की श्रेष्ठता का एक कारण और भी है । इस संसार में जितने भी साधन और साध्य हैं, वे सब भगवान् के अधीन हैं और भगवान् स्वयं प्रेम के वश में हैं।^९

६. प्रेमवाटिका, २८

७.

८. प्रेमवाटिका, ३५

९. तुलसीदास ने भी कहा है - भावबन्धु भगवान् सुखनिधान करुणा भवन ।

-दोहावली, १३५, रामचरितमानस, ७।६२

उन्होंने (गीता वादि में) स्वयं ही इसे विशेष गौरव दिया है -

हरि के सब बाधीन मैं हरी प्रेम-बाधीन ।

याही तै प्रभु बापुहीं, याहि बड़प्पन दीन ॥^१

प्रेम-भक्ति की इन्हीं विशेषताओं के कारण रखान उसे परमधर्म मानते हैं । उसे कोई भी शक्ति पराजित नहीं कर सकती -

वेद मूल सब धर्म यह कहैं सबै पुति उार ।

परम धर्म है ताहु तैं, प्रेम एक अनिवार ॥^२

प्रेम-भक्ति की अन्य विशेषताएं

अपनी 'प्रेमवाटिका' में रखान ने प्रेम की जो विशेषताएं बतलाई हैं वे लौकिक प्रेम और पारलौकिक प्रेम पर समान रूप से लागू होती हैं । इसलिए उसे प्रेम-भक्ति की विशेषता मानने में कोई आपत्तिजनक बात नहीं है ।

जीवनदर्शन के धर्म को समझने वालों ने कहा है कि जीव की जीवन-साधना का सबसे बड़ा लक्ष्य संसार के बन्धन से मोक्षा है । कर्म, ज्ञान आदि इसी साध्य के साधन हैं । भक्ति की विलक्षणता इस बात में है कि वह साधन भी है और साध्य भी । इसी बात रखान ने दूसरे ढंग से कही है । उनका कहना है कि प्रेम कारण है भी और कार्य भी । इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेम या भक्ति के लिए ही दूसरे साधन की आवश्यकता नहीं है । वह स्वतन्त्र है, अपने में पूर्ण है -

कारण-कारन रूप यह, प्रेम वहै रखान ।

सर्वा कर्म क्रिया करन, आपहि प्रेम बखान ॥^३

ईश्वर-प्रेम अनुपमार्थ्य और असीम है, वह अन्तिम विश्राम है ॥^४ वरुण और

१. प्रेमवाटिका

२. प्रेमवाटिका

३. प्रेमवाटिका

४. प्रेम-भक्ति, सागर सरित बखान ।

५. यह ढिग बहुरि बात नाहिं रखान ॥ - प्रेमवाटिका, ३

शंकर जैसे देवों की महिमा भी प्रेम के ही कारण है ।^१ पुत्र, कलत्र, मित्र बन्धु
वादि के प्रति व्यथा इनके द्वारा किया गया तब शुद्ध प्रेम नहीं है -

मित्र कलत्र पुत्रपुत्र सुत, इनमें तद्वत् तनेह ।

शुद्ध प्रेम इनमें नहीं व्यक्त कथा उचितैह ॥^२

शुद्ध प्रेम तो केवल भगवान् के प्रति ही हो सकता है । इसीलिए भक्त-बुद्धामणि
गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान् राम के मुख से कहलवाया है -

जननी जनक बंधु सुत बारा । तनु धन भवन सुहृद परिवारा ॥

सब के ममता ताग बहोरी । मम पद माहिं बांध बरि डोरी ॥

समदरसी इच्छा कहु नाहीं । हरष लोक मय नहिं मन माहीं ॥

बस सज्जन मम उर बस कैरौ । लोभी हृदय बसै धनु अरौ ॥^३

रसखान के उपर्युक्त दोहे की भी व्यंजना यही है कि भक्त का यह कर्तव्य है कि वह
अपने सभी लौकिक सम्बन्धों का आरोप भगवान् पर कर दे ।

जीव का उत्कर्ष दो प्रकार का माना गया है - व्युदय और निःश्रेयस ।
इन्हीं को दूसरे शब्दों में मुक्ति और मुक्ति भी कहा गया है । भौतिक मुक्ति
कारणिक है । मुक्ति का स्थायित्व भी भक्त की दृष्टि में उन्मेषास्पद है । अतः
वह इन दोनों से ऊपर उठ कर केवल भक्ति की कामना करता है । रसखान के
निष्णांकि तबैये में इसी भाव की अभिव्यक्ति की गई है -

संपति उँ सकुचाइ कुबेरहि रूप उँ दीनी चिन्ती अनंगहिं ।

भोग के के ललचाइ पुरंदर जोग के गंग लई घरि मंगहि ।

ऐसे मर तो कहा रसखानि रसै रचना जौ जु मुक्ति - तरंगहि ।

दे चित ताके न रंग रच्यौ जु रह्यौ रचि रायिका रानी के रंगहि ॥^४

१. प्रेम-बारुनी ज्ञानि के बरुन मर जल धीव ।

प्रेमहि तैं बिषपानि करि, पूजे जात गिरीव ॥ प्रेमाटिका, ४

२. प्रेमाटिका, ३७

३. रामचरितमानस, ५।४८।२-४

४. बुजान रसखानि, १६

भगवान् केवल प्रेम से ही प्राप्य हैं । वेद-शास्त्र के अध्ययन या अन्य उपायों से उनकी प्राप्ति दुर्लभ है । रत्नखान की अधोलिखित पंक्तियों में इसी भाव की व्यंजना हुई है -

ब्रह्म में दृढ़यी पुरानन गानन वेद-रिचा सुनि वागुनै चायन ।
 देखी सुन्यो कबहुं न कितुं वह कैसै तरुप वी कैसै सुभायन ।
 टेरत हैरत हारि पर्यो रत्नखानि बतायो न लौग लुगायन ।
 देखी दुरी वह कुंज-कुटीर में बैठी फलीटत राधिका-पायन ॥^१

प्रेम और हरि में कोई तात्त्विक भेद नहीं है । प्रेम हरि रूप है और हरि प्रेम-रूप हैं । दोनों में सुरज और धूप की भांति भेदाभेद है । इसका तात्पर्य यह है कि भक्त भगवान् से प्रेम करते करते ईश्वर-रूप हो जाता है , उसी भेद का अनुभव नहीं करता -

प्रेम हरि की रूप है, त्यों हरि प्रेम-तरुप ।
 एक होय हे मौलौ, ज्यों सुरज वी धूप ॥^२

भगवान् की भांति ही प्रेम भी अनिर्वचनीय है -

जग में सब जान्यो परै बरु सब कहै कहाह ।
 पै जगदीश रु प्रेम यह दौऊ बक्य लखाह ॥^३

प्रेमियों या भक्तों के लिए यह प्रेम-भक्ति अत्यन्त सरल और कमल की भांति कौमल है, परन्तु अन्य लोगों के लिए टेढ़ी और सड़ग की धार की भांति कठिन है -

कमल तंतु जौ हीन बरु कठिन सड़ग की धार ।
 जति सुयो टेढ़ी बहुरि, प्रेम पंथ अनिवार ॥^४

भक्ति के प्रकार

भगवान् की महिमा के श्रवण, कीर्तन जादि से उत्पन्न प्रेम के दो प्रकार

१. गुजान रत्नखानि, १७

२. प्रेमवाटिका, २४

३. प्रेमवाटिका, १७

४. प्रेमवाटिका, ६

हैं - शुद्ध और अशुद्ध । अशुद्ध प्रेम या भक्ति वह है जिसका कारण स्वार्थ (कामना) हो । शुद्ध प्रेम स्वाभाविक प्रेम है । वह निःस्वार्थ होता है । भक्त के मन में किसी प्रकार की कोई कामना नहीं होती । वह केवल भक्ति के लिए भक्ति करता है ।
ऐसा प्रेम सदैव एकरस और रसमय रहता है -

सुवन कीरतन दाखनहिं जो उपजत सोइ प्रेम ।
बुदाबुद्ध बिमेष तैं, द्वेषिध ताके नैम ॥^१
स्वार्थमूल अशुद्ध त्यों शुद्ध स्वभाव' नुबूल ।
नारदादि प्रस्ताव करि, किया जाहि को तूल ॥^२
रसमय स्वाभाविक बिना स्वार्थ अकल महान ।
सदा एक रसबुद्ध सोइ, प्रेमकै रसखान ॥^३
बिन गुन जीवन रूप धन, बिन स्वार्थ हित हानि ।
बुद्ध कामना तैं रहित, प्रेम उकल रसखानि ॥^४
इक बंगी बिनु कारनहि, इक रस सदा समान ।
गनहि प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥^५

ग्यारह वाचकियां

नारद ने अपने भक्तिसूत्र में परम प्रेम की ग्यारह वाचकियां बतलाई हैं । वे इस प्रकार हैं - गुणमाहात्म्यावक्ति, रूपावक्ति, पूजावक्ति, स्मरणावक्ति, दास्यावक्ति, सत्स्यावक्ति, कान्तावक्ति, वात्सल्यावक्ति, आत्मनिवेदनावक्ति, तन्मयतावक्ति और परमविरहावक्ति ।^६ जहाँ पर भक्त भगवान् के गुणों और

१. प्रेम्भाटिका, ४०

२. प्रेम्भाटिका, ४१

३. प्रेम्भाटिका, ४२

४. प्रेम्भाटिका, १५

५. प्रेम्भाटिका, २१

६. नारद-भक्तिसूत्र, ८२

महिमा को विशेष रूप से दृष्टि में रख कर उनके प्रति परमानुरक्ति का निवेदन करता है, वहाँ पर गुणमाहात्म्यावृत्ति होती है। उदाहरणार्थ -

गार्वे गुनी गनिका गंधर्व्व वी चारद वेष सबै गुन गावत ।

नाम अनंत गर्नत गनैव ज्यौ ब्रह्मा त्रिलोक पार न पावत ।

जोगी जती तपसी जरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत ।

ताहि बहीर की झोहरिया झझिया भरि झाड़ पै नाच नचावत ॥^१

जहाँ वाचक मक्त की दृष्टि भगवान् के रमणीय रूप पर विशेष रूप से केन्द्रित रहती है, वहाँ स्थावृत्ति होती है। निम्नांकित पद्य में रसखान की स्त्री भावन का चित्रण हुआ है -

गुंज गरें सिर मोरपखा जरु बाल गयंद की मो मन भावै ।

चांवरो नन्दकुमार सबै ब्रजमंडली में ब्रजराज कहावै ।

राज समाज सबै सिरताज वी राज की बात नहीं कहि जावै ।

ताहि बहीर की झोहरिया झझिया भरि झाड़ पै नाच नचावै ॥^२

स्मरणावृत्ति की किंचित् अभिव्यक्ति निम्नांकित पंक्तियों में देखी जा सकती है -

उंकर से सुर जाहि जौ चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावै ।^३

जोगी जती तपसी जरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत ॥^४

प्रेम के स्वच्छन्द गायक होने के कारण रसखान ने दास्याभक्ति और हस्याभक्ति को गौरव नहीं दिया है। अधोलिखित पंक्ति में दास्य की फलक मात्र दृष्टिगोचर होती है -

मौकर नौकी करै करमी जु पै कुंज-कुटीरन देहु बुहारन ॥^५

१. सु० १०, १२

२. सु० १०, १५

३. सु० १०, १४

४. सु० १०, १२

५. सु० १०, २

रसखान ने कृष्ण और गौपियों के प्रेमवर्णन में गौपियों की कान्ताभक्ति की अभिव्यंजना की है। गौपियों के वियोग-वर्णन में उनकी परमविरहाभक्ति भी अभिव्यक्त हुई है। लेकिन उन पद्यों की भक्तिकाव्य की अपेक्षा शृंगार-काव्य-मानना ही समीचीन है। मुसलमान होने एवं भक्ति के विधि-विधान में वात्स्या न रखने के कारण पूजा-वर्चा से बिल्कुल दूर थे। वतस्व उनके काव्य में पूजाभक्ति का सर्वथा अभाव है।

बालक-रूप भगवान् की भक्ति रामभक्ति-शाखा और कृष्ण-भक्ति-शाखा दोनों ही काव्य-धाराओं में प्रतिष्ठित हुई है। बल्लभाचार्य के प्रभाव से कृष्ण-भक्ति-शाखा में इसका विशेष आदर हुआ। रसखान ने भी कृष्ण की बाल-लीला का भक्तिपूर्ण चित्रण किया है।^१ इसकी विवेचना आगे की जाएगी। भगवान् के प्रति आत्मनिवेदन, शरणागति या प्रपत्ति की भक्तों ने भक्ति का आवश्यक तत्त्व माना है। निम्नांकित उक्तियों में रसखान ने दीनबन्धु भगवान् की महिमा का स्मरण करते हुए अपने शोकाकुल मन को उनकी शरण में जा कर निश्चित हो जाने का आश्वासन दिया है -

ड्रौपदी जी गनिका गज गीघ अजामिल जों कियो तौ न निहारौ ।

गौतम-गौहिनी कैसी तरी, प्रह्लाद कों कैले हयौ दुख भारौ ।

काहे कों सोच करै रसखानि कहा करिहै रबिनन्द बिचारौ ।

ताखन जाखन राखिये माखन-बाखन हारौ तौ राखन हारौ ॥^२

कृष्ण में गौपियों की तन्मयता तो प्रसिद्ध ही है। यह विशेषता रसखान की गौपियों में भी पाई जाती है। अन्यत्र भी कवि ने कहा है -

--- ऐसे ही भर तौ नर कहा रसखानि जो पै

चिच है न कीनी प्रीति पीत पटवारै जों ।^३

१. सु० १०, २०, २१ आदि

२. सु० १०, १८

३. सु० १०, ११

उपर्युक्त पंक्ति में चित् देकर प्रीति करने का तात्पर्य तन्मयावृत्ति ही है ।

पंचधा भक्ति

रूपगीस्वामी ने 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' में भक्तिरस के दो भेद बतलाए हैं - मुख्य भक्तिरस और गौण भक्तिरस ।^१ इस विभाजन का आधार रतिभाव की मुख्यता या गौणता है । मुख्य भक्तिरस के पांच प्रकार हैं - शान्त, प्रीत, प्रेयान्, वत्सल और मधुर ।^२ शान्त भक्तिरस का स्थायी भाव शमी (तत्त्वज्ञानी) भक्तों की शान्तिरति है ।^३ प्रीत भक्तिरस का स्थायी भाव सम्भ्रम प्रीति या गौरवप्रीति है ।^४ स्त्री को सामान्यतः दास्य भक्ति कहा जाता है । प्रेयान् भक्तिरस का स्थायी भाव तस्य है ।^५ वत्सल भक्तिरस का स्थायी भाव वात्सल्य है ।^६ मधुर भक्तिरस का स्थायी भाव मधुरा रति है ।^७ इस प्रकार रस-दृष्टि से भक्ति के पांच भेद हुए - शान्त, दास्य, तस्य, वात्सल्य और मधुर ।

रसखान के काव्य में शान्ति रति की व्यंजना नहीं हुई है । इसका कारण यह है कि रसखान स्वयं प्रेममार्गी थे , ज्ञानमार्गी नहीं । उन्होंने अपने लौकिक प्रेम को भगवान् की ओर उन्मुख कर दिया था । वे शास्त्रज्ञ ज्ञानी नहीं थे । और अपनी कविता उन्होंने ज्ञानियों के लिए लिखी भी नहीं थी । प्रेमी कवि की प्रेम-प्रधान रचना में तत्त्वज्ञान-प्रधान भक्ति का निरूपण संभव नहीं था । दास्य और तस्य के प्रति भी उन्होंने कोई रुचि नहीं दिखाई । दास्य में प्रेमी भक्त और प्रेमपात्र भगवान् के बीच दूरी बनी रहती है । तस्य में भी उतनी तन्मयता नहीं आ पाती

१. हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, दक्षिण विभाग, ५।६४-६५

२.	॥	॥	५।६६
३.	॥	पश्चिम विभाग	२।४
४.	॥	॥	२।३-४
५.	॥	॥	३।१
६.	॥	॥	४।२
७.	॥	॥	५।१

जितनी कि माधुर्य में हो सकती है । वात्सल्य-भक्ति का वर्णन भी रसज्ञान ने अधिक नहीं किया है । निम्नलिखित पद्यों में बालरूप कृष्ण के प्रति रसज्ञान के वात्सल्यपूर्ण भक्तिभाव की हृदयहारिणी अभिव्यक्ति हुई है -

बाज गई हुती मोर हो ही रसज्ञानि रई वहि नंद के मानहिं ।
 बाकी जियौ जुग लख करीर ज्ञानमति को सुख जात कहुँ नहिं ।
 तेल लगाइ लगाइ के अंजन माँह बनाइ बनाइ छिठानहिं ।
 डालि खेलनि हार निहारत वारत ज्याँ चुनकारत खीनहिं ॥
 धूरि मरे वति सोमित त्यामजू तैसी बनी चिर सुंदर चोटी ।
 खेलत सात फिरै अंगना पग पैज्जी बाजत पीरी कछोटी
 वा हवि को रसज्ञानि बिलोकत वारत काम कलानिधि कोटी ।
 काग के भाग बड़े पैज्जी हरि-हाथ लों लै गयो मासुन-रोटी ॥^१

अन्तिम पंक्ति में 'हरि' शब्द के प्रयोग ने कृष्ण का ईश्वरत्व और कवि की भक्ति-भावना ध्वनित होती है । इस प्रांग में स्मरण रक्ता चाहिए कि जहाँ कृष्ण का ईश्वर के रूप में चित्रण है, जहाँ कवि के भक्ति-भाव का (अभिधा अध्या व्यंजना के द्वारा) निवेदन हुआ है, वहीं वात्सल्य-भक्ति होगी । परन्तु जहाँ पर केवल वात्सल्य का वर्णन है और कृष्ण भगवान् के रूप में नहीं अंकित किये गये हैं, वहाँ शुद्ध वात्सल्य होगा, वात्सल्य-भक्ति नहीं । उदाहरण के लिए यशोदा के वात्सल्य का निम्नांकित वर्णन लीजिए -

बापनी लो डोटा हम सबही को जानत हैं,
 दोऊ प्रानी सबही के काज नित धावहीं ।
 ते तां रसज्ञानि अब दूर तैं तमासी देखैं,
 तरनि तनूजा के निकट नहिं आवहीं ।
 बान दिन बात अनखितुन लों कहीं कहा,
 हितु जेऊ बाए ते ये लीजन दुरावहीं ।

कहा कहीं वाली खाली देत अब ठाली, पर

मेरे बनमाली को न काली तैं छुड़ावहीं ॥^१

उपर्युक्त पंक्तियों में पुत्र के कल्याण के विषय में चिन्तातुर यशोदा के वात्सल्य की मार्मिक व्यंजना हुई है। इनमें भक्ति का तनिक भी पुट नहीं है। इनकी पढ़ कर पाठक के मन में ईश्वर-विषयक रति का उदय नहीं होता। अतस्व यहाँ पर वात्सल्य-भक्ति नहीं है।

रसज्ञान माधुर्य के कवि हैं। वे अपने विषयी जीवन में भी प्रेमी थे और विषय-विरक्त होने पर भी प्रेमी ही रहे। अन्तर केवल इतना ही हुआ कि प्रेम का बालम्बन बदल गया। सामान्य लड़के और रमणी के प्रति बहने वाली प्रेम-धारा भगवान् के प्रति अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होने लगी। उनकी इस प्रेम-प्रवृत्ति का प्रभाव यह हुआ कि उन्होंने भगवान् कृष्ण के मधुर लीलाओं का ही वर्णन अधिक किया। गौचारण, चीरहरण, कुंजलीला, रासलीला, पनघटलीला, दानलीला, बनलीला, गौरलीला आदि के प्रसंगों में गोपी-कृष्ण की विविध शृंगारिक लीलाओं का हृदय-स्पर्शी चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत प्रसंग में एक प्रश्न विचारणीय है - क्या जिन पद्यों में रसज्ञान ने कृष्ण और गोपियों की मधुर प्रेम-लीलाओं का निरूपण किया है उनमें भक्तिरस है? यह ठीक है कि कृष्ण को स्वयं भगवान् या भगवान् का अवतार माना गया है। यह भी सही है कि भक्तों ने गोपियों को जीवों का प्रतीक माना है। परन्तु उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में इतना कहना ही पर्याप्त नहीं है। अन्यत्र चाहे जो कुछ भी माना गया हो, रस के विषय में उसे प्रमाण नहीं माना जा सकता। कविता-विशेष में पात्रों का जो चित्रण हुआ है, वही प्रमाण है। रस-निर्णय की कसौटी भावक है। प्रश्न यह है कि रसज्ञान द्वारा किए गए इन लीला-वर्णनों को पढ़कर भावक के मन में वाचना-रूप से विद्यमान कौनसा स्थायी भाव विकसित होकर उसे रसानुभूति कराता है। इन कविताओं के सामान्य पाठक का अनुभव यह है कि वह स्थायी भाव काम-रति है। भक्तों की बात भिन्न है। वे तो राम, कृष्ण आदि

की किसी भी लीला का वर्णन पढ़कर या सुनकर भक्ति भाव से गद्गद हो जाते हैं । निष्कर्ष यह कि जहाँ अभिषा या व्यंजना के द्वारा कृष्ण के ईश्वरत्व का संकेत नहीं है, वहाँ भक्ति का अस्तित्व मानना अनुचित है । रसज्ञान के प्रमरगीत से उद्धृत निम्नांकित पद्य पर विचार कीजिए -

जोग सिखावत जावत हैवह, कौन कहावत, को है, कहाँ को ।

जानति हैं बर नागर है पर नैकहु भेद लह्यो नहिं ह्याँ को ।

जानति ना हम और कहु मुख देखि जियँ नित नंद लला को ।

जात नहीं रसज्ञानि हमें तजि, राखनहारो है मोरपखा को ॥^१

इन पंक्तियों में गोपियों की कृष्ण-विषयक विरहासक्ति की व्यंजना है । यहाँ पर गोपियों का चित्रण सामान्य वियोगिनी नायिकाओं के रूप में और नन्दलाल का चित्रण सामान्य नायक के रूप में ही किया गया है । भक्त और भगवान् के स्वरूप का कोई संकेत नहीं है । अतएव यहाँ पर विप्लवम शृंगार है ।

‘प्रेमलक्षणा भक्ति की माधुर्य भक्ति और शृंगार रस को उज्ज्वल रस की संज्ञा देकर चैतन्य-सम्प्रदाय के विद्वान् पंडित श्री रूपगोस्वामी ने अपने भक्ति-ग्रंथों^२ में शृंगार और प्रेम के लौकिक विषय-वाचनामय रूप का उन्नयन किया था । शृंगार और प्रेम के सांसारिक चित्रों के माध्यम से उन्होंने हरिभक्ति का उज्ज्वल एवं दिव्य रूप सजा करके शृंगार की भोग-वृत्ति का भली भाँति परिमार्जन भी किया । भक्ति के क्षेत्र में जिस शृंगार को चैतन्य-सम्प्रदाय के आचार्यों ने अवतरित किया था उसका कृष्णभक्ति-परक परिवर्तन सभी वैष्णव सम्प्रदायों पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनमें शृंगारमयी शैली से रसोपासना प्रवर्तित हो गई । रसिकाचार्यों ने प्रेम और शृंगार का वर्णन करके जो शैली ग्रहण की उसमें प्रेम के प्रतिपादन में काम, मनोज, भार, मनसिज, मन्मथ आदि शब्दों का प्रचुर परिमाण में प्रयोग हुआ । साथ ही भाववस्तु के लिए भी स्थूल काम-वैष्टावों का सांगोपांग वर्णन किया गया । उस वर्णन के पीछे भक्तों की चाहे जैसी पावन भावना रही हो किन्तु सामान्य पाठक को उसमें काम-वासना की गंध आना स्वाभाविक है ।’^३

१. पृ० १०, २०३

२. २ ग्रंथ हैं - हरिभक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि ।

३. राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० १६१

रसखान किसी रसोपासक सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुए थे । फिर भी अपनी स्वाभाविक और स्वच्छन्द प्रवृत्ति के अनुसार उन्होंने उपर्युक्त उज्ज्वल रस (जिसे रसिक भक्त माधुर्य-भक्ति कहते हैं) की विशद निबन्धना की है । इस विषय में उनका सिद्धान्त भी स्पष्ट है । पूर्वोक्त पांच प्रकार के भक्तिरसों में वे वत्सल, प्रेमान् और मधुर का उन्होंने बादर के साथ स्मरण किया है । वात्सल्य और सत्य भावों की तुलना में माधुर्य-भाव को उन्होंने सर्वाधिक माना है -

जदपि ज्योदा नंद वरु ग्वाल बाल सब धन्य ।

ये या जग में प्रेम काँ गोपी भई अनन्य ॥^१

तन्मयता की पराकाष्ठा माधुर्य-भावों ही सम्भव है । इसी रसिभाव से कृष्ण के साथ मिल कर एक ही जाने में वास्तविक आनन्द है , जीवन फल की प्राप्ति है -

मोहनी मोहन तौ रसखानि बचानक भेंट भई बन माहीं ।

जैठ की पाम भई सुखाम अनंद ही अंग ही अंग समाहीं ।

जीवन को फल पायो भट्ट रसबातन कैलि तौ तोरत नाहीं ।

कान्ह को हाथ कंधा पर है मुख ऊपर मोर किरिट की छाहीं ॥^२

निम्नलिखित सबैधे में भक्ति-भावना का स्पष्ट संकेत है -

मोर के चंदन मोर बन्नी दिन दुलह है कली नंद की नंदन ।

श्री वृषभानुवृता दुलही दिन जोरी बनी बिधना सुखदंन ।

बावै कहुँ न कहूँ रसखानि री दोऊ फंदे हवि प्रेम के फंदन ।

जाहि बिलौकै सबै सुख पावत वै ब्रज जीवन हैं दुख दंदन ॥^३

नवधा भक्ति

भागवत पुराण में वर्णित नवधा भक्ति का भक्त समाज में बड़ा बादर है और भक्त कवियों ने उसका बहुधा उल्लेख किया है । ये भी विचारें हैं - श्रवण,

१. प्रेमवाटिका, ३८

२. सु० र०, १८५

३. सु० र०, १६०

कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, वर्कन, वन्दन, दास्य, उत्थ वीर वात्मनिवेदन ।^१ प्रथम तीन विधाओं में भगवान् के नाम वीर गुण की प्रधानता है । चौथी , पाँचवीं वीर छठी में उनके रूप का वैशिष्ट्य है । अन्तिम तीन विधाओं में भक्त के भाव पर बल दिया गया है । रसखान ने इन विधाओं का कहीं भी व्यवस्थित निरूपण नहीं किया । वे मर्यादामार्गी भक्त नहीं थे । अतः उनकी रचनाओं में इन सभी विधाओं के बन्वेषण का प्रयास निष्कल होगा । उनकी कविता में कुछ विधाओं की ही सैकितिक अभिव्यक्ति हुई है । श्रवण, कीर्तन वीर स्मरण सभी भक्तों को मान्य हैं वीर रसखान ने भी उनका उल्लेख किया है -

श्रवण कीरतन दरसनहिं जो उपजत जोइ प्रेम ।^२

बैन वही उनको गुन गाइ वी कान वही उन बैन सौं सानी ।

जान वही उन वान के संग वी मान वही जु करे मनमानी ।^३

संकर से पुर जाहि जे चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावै ।

नेकु स्थिये जिहि वानत ही जड़ मूढ़ महा रसखानि कहावै ।^४

‘पादसेवन’ का तात्पर्य है - भगवान् की परिचर्या, मूर्ति का दर्शन, मंदिर गमन, तीर्थयात्रा आदि । रसखान मूर्ति-पूजक नहीं थे । परंतु पूर्वाक्त ‘श्रवण कीरतन दरसनहिं’ में मूर्ति-दर्शन का अभिप्राय हो सकता है । वृन्दावन में निवास करके भी उन्होंने तीर्थयात्रा का उपहास किया है -

तीरथ हजार बरे बूझत लवार को ।^५

मंदिर में फाड़ लाना आदि भी पादसेवन ही है । कुंज-कुटीरों को बुहारने की कामना स्त्री विधा का असाम्प्रदायिक रूप है -

१. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

वर्कनं वन्दनं दास्यं उत्थमात्मनिवेदनम् ॥ - भागवतपुराण, ७।१।२३

२. प्रेमवाटिका, ४०

३. जु० २०, ४

४. जु० २०, ४४

५. जु० २०, ६

मौकर नीकी करें करें करनी जु पै कुंज-कुटीरन देहु बुहारन ।^१
 रत्नखान की बर्तन, वन्दन, दास्य और सस्य भक्तियों में प्रवृत्ति नहीं हुई और
 'आत्मनिवेदन' तो भगवान् के प्रति आत्मसमर्पण, शरणागति या प्रपत्ति है ।
 भक्त भगवान् की सर्वशक्तिमान् और कृपालु मानता है । वह पूरी वास्था के साथ
 अपने को भगवान् की शरण में समर्पित कर देता है । उसका दृढ़ विश्वास है कि
 भगवान् के संरक्षण में रहने पर उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं उकता और भगवान्
 उसके समस्त दुःखों का अवश्य ही वन्त कर देंगे -

कहा करै रत्नखान की कौज जुगुल लवार ।

जो पै राखनहार है माखन जाखन हार ॥^२

देख बिदेस के देखे नरेखन रीफ की कौज न बूझ करेगी ।

तारें तिन्हें तजि जानि गिरायी गुन, वीगुन वीगुन गांठि परेगी ।

बांधुरीवारो बड़ी रिफवार है त्याम जु नैसुक डार डरेगी ।

लाइलो हैल वही तो बहीर को पीर हमारे स्थि की हरेगी ॥^३

मुक्ति और भक्ति के साधन

विचारक वाचार्यों ने भवसागर को पार करने के अनेक साधन बतलाए
 हैं - कर्म, वैराग्य, योग, ज्ञान, उपासना, भक्ति, प्रपत्ति आदि । रत्नखान के
 निम्नलिखित दोहे से निष्कर्ष निकलता है कि उनके अनुसार भव-संतरण के चार
 उपाय हैं - कर्म, ज्ञान, उपासना और प्रेमलक्षणा भक्ति -

ज्ञान कर्मरूप उपासना, सब वहमिति को मूल ।

दृढ़ निश्चय नहिं होत बिन किए प्रेम अनुकूल ॥^४

वैराग्य, जप, तप, संयम, प्राणायाम, तीर्थयात्रा आदि जहाँ चार साधनों के ही

१. सु० १०, २

२. सु० १०, १६

३. सु० १०, ७

४. प्रेम्माटिका, १२

साधन हैं । रसज्ञान का कहना है कि भक्ति को छोड़ कर अन्य सभी साधन अप्रयोज्य नहीं हैं । संसार को पार करने का एकमात्र अप्रयोज्य साधन भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति परम प्रेम ही है -

कहा रसज्ञानि तुलसि संपति तुमार कहा ,
 कहा तन बोगी हूँ लगाए अंग द्वार को ।
 कहा साधे पंचानल, कहा तीर बीच नल,
 कहा जीति लार राज सिंधु-वारपार को ।
 जब बार-बार , तप संजम बयार-वृत,
 तीरथ हजार वी वृकत लवार को ।
 कीन्ही नहीं प्यार, नहीं लेयो दरबार, चित
 बाह्यो न निहारयो जो पै नंद के कुमार को ॥^१

पहले कहा जा चुका है कि भक्ति साधन और साध्य दोनों ही हैं । उसके लिए अन्य साधन अनिवार्य नहीं हैं । वे केवल सहायक ही सकते हैं । भक्ति की श्रवण वादि नौ विधायक वस्तुतः साधन भक्ति के ही नौ वर्ग हैं । रसज्ञान ने श्रवण वादि कतिपय विधायकों को प्रेमलक्षणा भक्ति का साधन माना है । उनकी चर्चा पहले की जा चुकी है । उनके वतिरिक्त , भक्ति के सहायक तत्वों के रूप में उन्होंने कुछ अन्य साधनों का भी उल्लेख किया है । निम्नोद्धृत सूचये में उन्होंने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि मन और बाष्पि के संयम , सच्चाई के साथ किए गए वृत्त-नियम-पालन, सबके प्रति सद्भाव , सात्त्विक उत्सर्ग और अन्य भाव से भगवान् और उनकी भक्ति प्राप्त हो सकती है -

तुनिये सबकी कष्टिये न कष्ट रहिये हमि या मन-बागर में ।
 करिये वृत्त-नैम सचाई लिये, जिते तरिये मन-बागर में ।
 मिलिये सब सों दुरभाव बिना, रहिये उत्सर्ग उजागर में ।
 रसज्ञानि गुबिंदहिं यी भजिये जमि नागरि को चित गागर में ॥^२

१. सु० २०, ६

२. १९, २०, २

मुख्य प्रतिपाद्य : भगवान् कृष्ण और उनकी लीला -

भगवान् की तीन प्रमुख विभूतियाँ मानी गई हैं - शक्ति, शील और औन्दर्य । जिस प्रकार तुलसी ने राम के शील और शक्ति का जमकर विलुत निरूपण किया है वैसा किसी भी कृष्ण भक्त कवि ने कृष्ण की इन विभूतियों का नहीं किया । उन्होंने कृष्ण की औन्दर्य-विभूतियों के विविध रूपों को ही अपने वर्णन का मुख्य विषय बनाया । रसखान का मन भी औन्दर्य की ही परिधि में घूमता रहा । उन्होंने कुछ गिने जुने स्थलों पर ही कृष्ण की शक्ति और शील का चित्रण किया है । कालियदमन और कुवल्या-वध के प्रसंग वही प्रकार के स्थल हैं । कालिय-दमन के प्रसंग में रसखान ने व्याजस्तुति के सहारे कृष्ण के शक्ति-सम्पन्न रूप का बड़ा मनोहर चित्र अंकित किया है -

लौग कहँ ब्रज के रसखानि अनंदित नंद ज्योमति जू पर ।

हौहरा बाजु नयौ जनम्यौ तुम लौ कौऊ भाग मय्यौ नहिँ मू पर ।

वारि के दाम खंवार करी अपने म्रमचाल कुचाल लरू पर ।

नाचत रावरी लाल गुपाल लौ काल लौ ब्याल-कपाल के ऊपर ॥^१

कुवल्या-वध का वीररसपूर्ण वर्णन भी बीजस्वी शब्दों में किया गया है -

कंत के झोथ की फैलि रही सिगरे ब्रजमंछल मांझ पुकार ली ।

बाह गर कक्षी कक्षिकै तबहीं नट-नागर नंदकुमार ली ।

देरद को रद सँचि लियौ रसखानि हिये महि लाइ विचार ली ।

लीनी कुठौर लगी लखि तौरि कलंक तमाल तें कीरति-हार ली ॥^२

कृष्ण के शील की व्यंजना रसखान ने उनके गुण-कथन के संदर्भों में की है -

(क) गौतम-गेहिली कैसी तरी, प्रह्लाद को कैसेँ ह्यूयी दुख मारौ ।^३

(ख) बांसुरीवारौ बड़ौ रिफवार है त्याम जु नेनुक डार डरौगौ ।

१. सु० १०, २०१

२. सु० १०, २०२

३. सु० १०, १८

लाइलो कूल वही तौ वहीर को पीर हमारे हिये की हरीगौ ॥^१

रसखान के काव्य को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि वे कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए बघाते ही नहीं हैं। वस्तुतः, सौन्दर्य बालम्बन की वह विभूति है जो वाक्य की आत्मविस्मृत कर देती है। वह तल्लीन हो जाता है। बालम्बन का सौन्दर्य उसके मन और नेत्रों से जाण भर के लिए भी बौफल नहीं होता। वह सदैव उसके दर्शन की कामना करता है। दर्शन के अभाव में उसका चिन्तन करता है। समर्थ कवि उस चिन्तित सौन्दर्य की अपनी रक्षा में साकार कर देता है। रसखान ने ऐसा ही किया है। वेष-भूषा के आधार पर अंकित कृष्ण का सौन्दर्य देखिए-

दौड कानन कुंछल, मोरपसा चिर, सोई दुखल नयो-भटकी ।

मनि-हार गरी, सुकुमार धरे नट मैस वीरे, पिय को टटकी ।

सुम काङ्क्षी बैक्की, पैक्की यामन वामन में न लगे फटकी ।

वह सुंदर को रसखानि कली जु गलीन में बाइ बबै बंटकी ॥^२

कृष्ण के सौन्दर्य में वह अद्भुत शक्ति है कि जिसने एक बार भी उसका आभासकार कर लिया वह लोक के समस्त बन्धनों को छिन्न कर देता है, उसका मर्यादावादी की सीमा जाण भर में ही टूट जाती है। कृष्ण की जाणिक मुस्कान और चित्तवन ने गोपी को संसार से विमुक्त करके कृष्णमय कर दिया -

रंग भर्यो मुखकात लला निकल्यो कल कुंजन तैं सुखदाई ।

में तबही निकली घर तैं, तक नैन बिसाल की चौट जलाई ।

धूमि गिरी रसखानि तबै हरिनी जिमि बान लयें गिरि जाई ।

टूटि गयी घर को तब बंधन छूटि गो बारज लाज बड़ाई ॥^३

कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों में राधा को भगवान् कृष्ण की अनिर्वचनीय शक्ति और उनसे अभिन्न माना गया है। शक्ति और शक्तिमान् के युग्म की कल्पना अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों में की गई है। वेदान्तियों ने ब्रह्म के साथ माया की

१. सु० १०, ७

२. सु० १०, १७७

३. सु० १०, ३०

उद्भावना की, सांख्यों ने पुरुष के साथ प्रकृति की, वैष्णवों ने विष्णु के साथ लक्ष्मी की, शैवों ने शिव के साथ भवानी की, रामभक्तों ने राम के साथ सीता की और कृष्ण भक्तों ने कृष्ण भक्त के साथ राधा की। रसज्ञान जिस प्रकार कृष्ण की रूप-रूपा पर मुग्ध हैं उसी प्रकार उनकी प्रेमिका और प्रियसी राधा के सौन्दर्य पर भी। राधा के सौन्दर्य में भी अद्भुत वाकर्षण है। उनकी शोभा वसन्त के समान मनोमुग्धकारिणी है -

वति लाल गुलाल दुकूल ते फूल, वलि कुंतल राजत है।

मस्तूल समान के गुंज करानि में किंजुक की बलि क्षाजत है।

मुक्ता के कदंब ते जंब के मौर जुने सुर कोकिल लाजत है।

यह जावनि प्यारी जु की रसज्ञानि बसंत सी बाज बिराजत है ॥^४

भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम का वर्णन सभी सगुण-भक्तों का प्रिय विषय रहा है। रसज्ञान ने भी उनका न्यूनतम वर्णन किया है। यह दूसरी बात है कि अपनी प्रेममार्गी रुचि के कारण उनका मन कृष्ण के रूप और लीला के चित्रण में ही अधिक रमा है। दार्शनिक दृष्टि से उन्होंने कृष्ण के स्वरूप का विशद निरूपण नहीं किया। कुछ पद्यों में उसका आभास मात्र दे दिया है। वेदान्ती लोग जो ब्रह्म कहते हैं, जो ब्रह्मा का सेव्य है, सदाशिव जिसका ध्यान किया करते हैं, वही कृष्ण हैं। जो वैष्णवों का विष्णु है, जो योगियों की साधना का साध्य है, वही ब्रजचन्द कृष्ण है। ब्रह्म, विष्णु और कृष्ण में स्वरूपतः कोई भेद नहीं है, केवल नाम की उपाधि भिन्न है। यशोदा आदि भक्तजनों को अपनी लीला का आनन्द देने के लिए ही भगवान् कृष्ण अवतार धारण करते हैं -

वैई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत हैं रैन-दिन,

सदाशिव सदा ही धरत ध्यान गाढ़े हैं।

वैई विष्णु जाके काज मानी मूढ़ राजा रंक,

जोगी जती ह्वै के सीत सह्याँ बंग हाढ़े हैं।

वैई ब्रजचंद रसखानि प्रान प्रानन के,

जाके अभिलाह लाख लाख मांति बाढ़े हैं ।

जुवा के जागे वसुधा के मान- मोक्ष ये,

तामरस-लीचन खरीचन कीं ठाढ़े हैं ॥^१

भगवान् के नाम और गुण असंख्य हैं । वे अनादि, अनंत, असंख्य और अक्षय हैं । वे भक्त के प्रेम के वशीभूत हैं । उनकी भक्तवत्सलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वे इतने महिमाशाली और शक्तिमान् होकर भी बहीरों की झोहरियाँ को प्रसन्न करने के लिए झुझिया भर झाड़ पर नाच नाचने को प्रस्तुत रहते हैं -

नाम अनंत गनंत गनैत ज्यों ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ।

+

+

+

तेष गनैत महेत दिनेत गुरेसहु जाहि निरंतर गावैं ।

जाहि अनादि अनंत असंख्य अक्षय अपेद सुबैद बतावैं ।

नारद ते तुक ब्यास रहैं पचि हारे तरु पुनि पार न पावैं ।

ताहि बहीर की झोहरियां झुझिया भरि झाड़ पे नाच नचावैं ॥^२

सौन्दर्य-प्रेमी और लीला-गायक रसखान को भगवान् के नाम-जप में कोई विशेष आकर्षण नहीं प्रतीत हुआ । इसलिए उन्होंने एकाध स्थलों पर नाम-कीर्तन का उल्लेख किया है - यथा -

जौ रसना रसना बिलसै तेहि देहु उदा निज नाम उचारन ।^३

रसखान कृष्ण की रूप-माधुरी पर अतिशय मुग्ध हैं । वे रूप के उपासक हैं । इसलिए जहाँ कहीं भी कृष्ण के रूप वर्णन का अवसर आया है वहाँ उन्होंने हृदय की सारी भावुकता के साथ उनका रूप-चित्रण किया है । कृष्ण के रूप और उसके लोक-व्यापी प्रभाव का एक अलंकृत चित्र देखिए -

१. सु० १०, १०

२. सु० १०, १२-१३

३. सु० १०, २

दमकै रवि कुंडल दामिनि ते घुरवा जिमि गौरज राजत है ।

मुक्ताहल-वारन गौपन के सु तो बुंदन की कबि काजत है ।

ब्रजवाल नदी उमही रसखानि मयंकवधू-दुति लाजत है ।

यह जावन श्रीमनभावन की बरबा जिमि बाज बिराजत है ॥^१

भगवान कृष्ण के गुणों का गान भी रसखान ने बारम्बार किया है -

बैन वही उनकी गुन गाः बी कान वही उन बैन तों जानी ।^२

गार्वै गुनी गनिका गंधरब बी तारद तेष तबै गुन गावत ।^३

डौपदी बी गनिका गज गीघ बजामिल तों कियो तौ न निहारौ ।^४

रसखान का मन मुख्य रूप से श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं के गान में ही रमा है ।

कृष्ण भक्त कवियों के द्वारा सामान्यतः वर्णित लीलाओं का उन्होंने भी वर्णन

किया है । उन लीलाओं में बाललीला,^५ गौचारण,^६ वीरहरण,^७ कुंजलीला,^८

रासलीला,^९ पनघटलीला,^{१०} दानलीला,^{११} वनलीला,^{१२} गौरसलीला,^{१३} प्रेमलीला,^{१४}

१. सु० १०, ६४

२. सु० १०, ४

३. सु० १०, १२

४. सु० १०, १८

५. सु० १०, २०-२१

६. सु० १०, २२-२६

७. सु० १०, २७

८. सु० १०, २८-३१

९. सु० १०, ३२-३५

१०. सु० १०, ३६-३७

११. सु० १०, ३८-३९, ४२-४६

१२. सु० १०, ४०

१३. सु० १०, ४१

१४. सु० १०, ४०९

सुरत-लीला,^१ होली^२ आदि प्रमुख हैं। रसखान के द्वारा किए गए कृष्णलीला वर्णन के स्काय पद्य ही ऐसे हैं जिन्हें पढ़कर सामान्य पाठक को भक्तिरस की अनुभूति होती है। यह ठीक है। परन्तु भक्तजनों का अनुभव इससे भिन्न है। उनके लिए श्रीकृष्ण सदैव भगवान् ही हैं - वे चाहें जिस वेष में सामने आएं, चाहें जो लीला करें। जिस प्रकार प्रेमी को अपना प्रेम पात्र प्रत्येक दशा में प्रिय होता है - वह चाहे जो भी वेष-भूषा धारण करे, उसी प्रकार भक्त को भगवान् भगवान् के ही रूप में, आराध्य रूप में ही दिखाई देता है- वह चाहे जो भी रूप धारण करे। उसकी प्रत्येक लीला भक्त को अपने दृष्टदेव की ही लीला दिखाई देती है। वह उसकी एकान्त शृंगार-लीला में भी उसी प्रकार भक्तिरस का आस्वादन करता है जिस प्रकार उसके लोक-रक्षक रूप से सम्बन्ध रखने वाली लीलाओं को पढ़कर या सुनकर। रसखान ने कृष्ण की लीला का गान इसी भक्त-दृष्टि से किया है। कृष्ण की माखनचोरी, फनघटलीला, रासलीला, सुरतलीला आदि के वर्णन करते समय रसखान के हृदय में यह बात कभी तिरोहित नहीं हुई कि वे अपने आराध्य भगवान् कृष्ण की लीला का वर्णन कर रहे हैं। उन्होंने इन लीलाओं की अधिकतर व्यंजना गौपियों के मुख से कराई है। युवती गौपियां विसर्गतः आकर्षक हैं। कृष्ण की प्रेमिकारं और प्रेयसियां हैं। अतस्व उनमें नारी-सहज कोमलता, स्वाभाविक रमणीयता और स्वानुभूत प्रेम की संवेदना है। इनके परिणामस्वरूप कविता में अधिक लालित्य और प्रभावात्मकता आ गई है। एक-दो उदाहरण पर्याप्त हैं। होंगे। कृष्ण ने अपने ऊर्ध्व से गौपियों को तंग कर रखा है। वे यशोदा को उलाहना देने जा रही हैं -

काहूँकी माखन चाखि गयो अरु काहूँ की दूध दही ढरकायो ।

काहूँ की चीर लै स्त्र चढयो अरु काहूँ की गुंजरा बहरायो ।

मानै नहीं बरजै रसखानि तु जानिये राज इन्हें घर बायो ।

बावरी बुझै जसोमति तौ यह होहरा जायो कि भेष भंगायो ॥^३

१. सु० २०, १२०

२. सु० २०, १६१-६३

३. सु० २०, १०४

निम्नांकित सदैव में राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी की विलास-लीला का मनो-मोहक चित्र अंकित किया गया है -

बाज बचानक राधिका रूपनिधान जौं मेट महँ बन माहीं ।

देखत दृष्टि परै रसखानि कौ भरि अंक दिये गलबाहीं ।

प्रेमवारी बलियां दुहुं धां की दुहुं को लगीं अति ही चितचाहीं ।

मोहिनी मंत्र बजीकर जंत्र हहा पिय की तिय की नहिं नाहीं ॥^१

रसखान ने कृष्ण के धाम का भी वर्णन किया है । इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने पौराणिक भक्तों की भांति वैकुण्ठ या क्षीरसागर का कोई वर्णन नहीं किया । उन्होंने कृष्ण की अवतार-लीला के धाम ब्रज का ही वर्णन किया है । ब्रज के प्रति उनके अतिशय प्रेम का सबसे ठोस प्रमाण यही है कि वे दिल्ली छोड़ कर ब्रज में जा कर रहने लगे थे । 'सुजान रसखानि' के आरंभिक तीन पद्यों में किया गया ब्रज-वर्णन हिन्दी साहित्य में बहुत ही लोकप्रिय हुआ है । रसखान की कामना है -

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।

जौं पशु हौं तो कहा बस मेरो घरौं नित नंद की धेनु मंजारन ।

पाहन हौं तो वही गिरि को जौ धरुयाँ कर कृत्र पुरंदर धारन ।

जौं लग हौं तो बेरो करौं मिलि काँदो-कूल कदंब की डारन ॥^२

१. सु० १०, १८४

२. सु० १०, १

(खण्ड छ) रसज्ञान का दर्शन

साहित्य, दर्शन और जीवन तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य जीवन को हृदय द्वारा समझने का प्रयास है, और दर्शन उसे मस्तिष्क के द्वारा समझता है। मस्तिष्क जीवन को जिस रूप में समझता है साहित्य उसी को सरस बना कर जन जन के मन में उतारने का प्रयास करता है। दर्शन जीवन को गहराइयों का ठीक ठीक पता बताता है। साहित्य उसे जन जन के लिए सुलभ करता है। जै ईश्वर-प्राप्ति के लिए ज्ञान और भक्ति दो अलग अलग मार्ग हैं, वैसे ही साहित्य और दर्शन में दोनों की पहुंच एक ही तथ्य तक है। दोनों का प्रतिपाद्य विषय भी एक ही है। आझात ज्ञान के समान दर्शन और भक्ति की भांति साहित्य के कुछ उच्च विचारक दार्शनिक शब्दों में दर्शन को भ्रम और साहित्य को प्रेम तक कहने की उदारता करते हैं। किन्तु आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री अपनी रचना 'साहित्य दर्शन' में इसका तीव्र खंडन करते हुए कहते हैं कि 'साहित्य को प्रेम कहना उसे दूसरे शब्दों में नरक का पथ कहना है। साहित्य स्वर्ग का स्वर्णिम घोषण है।' बात यह है कि साहित्य का भार वहन करने को दुर्बल मानव शीघ्र तत्पर नहीं। इसी मनोवृत्ति को समझ कर मनुष्य के रुझान पर रीझ रीझ कर उसी की बोली में बोल बोल कर उसी की झंझ बन बन कर उसी की बांह पकड़ता है। अन्त में स्पष्ट कर दिया है कि साहित्य और दर्शन को एक ही भ्रम का हृदय और मस्तिष्क भाव और अनुभूति और चिन्ता कहकर समान सम्मान मिलना चाहिये।^१ स्थिति साहित्य और दर्शन दोनों ही एक दूसरे के घनिष्ठ सम्बन्धी हैं होने से प्रत्येक कवि के साहित्य में उसकी खोज करना परम आवश्यक है।

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार रसज्ञान श्रीकृष्ण प्रेम और तन्मयता के लिए प्रसिद्ध है।^२

श्यामसुन्दरदास जी के मतानुसार कृष्णभक्त कवियों में सच्चे प्रेमभग्न कवि

१. साहित्यदर्शन, पृ० ३८

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५६५

रसखान का नाम भगवान कृष्ण की सगुणोपासना में विशेष ऊँचा है।^१ बाबाय रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार यह बड़े भारी कृष्ण भक्त थे। इनका प्रेम अत्यन्त भगवद् भक्ति में परिणत हुआ।^२ बाबाय हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार परमाकर्षक कृष्ण भक्ति के मुस्लिम सङ्घर्षों में रसखान एक प्रमुख कवि हैं।^३ पं० विश्वनाथ प्रसाद अनेक तर्क देते हुए अन्त में कहते हैं कि रसखान भक्तिमार्गी कृष्ण भक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कवियों इन सबही से पृथक् स्वच्छंद-मार्गी प्रेमोन्मत्त गायक थे। यदि उन्हें भक्त कहना हो तो स्वच्छंद प्रेममार्गी भक्त कहा जा सकता है।^४

उपर्युक्त मतों में अधिकांश इस विषय पर एकमत हैं कि ये प्रेम के दीवाने थे। इनकी भक्ति में प्रेम की प्रधानता है। मित्र जी के तर्कों का सार इस प्रकार है। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में तीन प्रकार की काव्य धाराएं थीं। एक शुद्ध भक्ति की, दूसरी काव्य रीति की, तीसरी स्वच्छंद वृत्ति की। प्रथम पक्षा वालों के लिए भक्ति साध्य थी, कविता साधन, क्योंकि वे केवल भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए कविता नहीं करते थे। वे भक्ति के प्रचारक भी थे। पर रसखान की रचना को हम भक्ति की प्रचारक रचना नहीं कह सकते जैसा कबीर, जायसी, सूर और तुलसी की रचना को कहा जाता है। रसखान तो प्रेमोन्मत्त के गायक थे। ये हिन्दी की स्वच्छंद काव्यधारा के सबसे प्राचीन कवि ठहरते हैं। रीतिधारा वालों के लिए काव्य ही साध्य था किन्तु काव्य के साधन रीति के ऊपर ही इन्होंने विशेष ध्यान दिया। वे केवल चमत्कार के लिए कविता करते थे। रसखान में हृदय पक्षा की प्रधानता रहने के कारण उन्हें इस धारा में नहीं माना जा सकता। तीसरी धारा थी स्वच्छंद, इस धारा के कवियों को कलापक्षा का आग्रह नहीं था। प्रेम में लीन होने पर काव्य का प्रवाह आप से आप बाहर जा जाता था।

१. हिन्दी साहित्य, पृ० २३०

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १७६

३. हिन्दी साहित्य, पृ० २०५

४. देखिये रसखानि ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृ० २२

अतः रसखान को स्वच्छन्द काव्य धारा का ही कवि मानना चाहिए । कृष्ण-मक्तों की गीति-परम्परा का त्याग करके कविच सवैया पद्धति का सहारा लेना ही उन्हें सशिक्षक मक्त कवियों की सामान्य भेणी से अलग कर देता है । इसी से रसखान उन्मुख प्रेम उन्मुख कवि ठहरते हैं । मित्र जी जागे चल कर कहते हैं कि निर्गुण में रूप की योजना न होने के कारण उन्होंने सगुण में अपनी स्वच्छन्द वृत्ति लीन की -

‘जानंद-अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जा जान ।

के वह विषयानन्द के ब्रह्मानन्द बखान ॥’^१

सीलिए कृष्ण भक्ति की ओर वाकृष्ट ओर लीन हुए । इसी कारण से उन्हें शुद्ध मक्त न कह मान कर प्रेमोन्मत्त का कवि माना जाता है । वे बिहारी, घनानंद, रहीम, रसखान, बालम, शैल ब्रह्म को भक्ति के पद रचने पर भी उनको शुद्ध मक्त कहने में हिचक प्रकट करते हैं । रसखान ने कृष्ण भक्ति दर्शन में वल्लभाचार्य जी का शुद्धाद्वैतवाद , निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद , मध्वाचार्य का द्वैतवाद और जैतन्य महाप्रभु का दर्शन किसी का भी अनुसरण नहीं किया है ।

वल्लभाचार्य जी ने हृदय के संस्कार और विकास की दृष्टि से ईश्वर भक्ति अर्थात् जलौकिक प्रेम को ही साध्य माना है किन्तु रसखान लौकिक प्रेम को भी साध्य मानते हैं हुए कहते हैं -

अकथ कहानी प्रेम की , जानत लैली लुब ।

दो तनहूं जहं एक मे, मन मिलार महबुब ॥’^२

इस प्रकार यह शुद्धाद्वैतादी पुष्टि-मार्ग से भी अलग हो जाते हैं । मित्र जी के अनुसार रसखान ने मक्तों की गीति और रीति दोनों का ही त्याग कर दिया । इसी से उन्हें स्वच्छन्द मार्गी प्रेमोन्मत्त गायक ही कहा जा सकता है मक्त नहीं । यद्यपि मित्र जी का विवेचन अत्यन्त तर्क पूर्ण है किन्तु फिर भी कुछ विचारणीय विषय रह जाता है । ग्रन्थावली की भूमिका में स्थान स्थान

१. रसखानि ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृ० २६

२. प्रेमवाटिका, ३३

पर यह कहा गया है यदि कोई इन्हें भक्ति विषयक रचना के कारण भक्त कहता है तो कहे, स्वच्छन्द प्रेम मार्गी भक्त कहा जाय तो कोई बाधा नहीं।^१ इसी प्रकार यह भी कहते हैं कि इन्हें भक्तों की भेणी से सारिज करने की कोई आवश्यकता नहीं। इन दोनों बातों से यह स्पष्ट हो गया कि मित्र जी उनकी कविता की को भक्ति का विषय मानते हैं और अगर कोई इन्हें भक्त कवि कहे तो उसमें कोई आपत्ति भी नहीं मानते। यहां तक कि जब उन्हें भक्तों की भेणी से सारिज करने की बात जाती है तो जोरदार शब्दों में यह भी कहते हैं कि इन्हें भक्तों की भेणी से सारिज करने की आवश्यकता नहीं। इसी सिद्ध होता है कि मित्र जी भी इस बात को मानते हैं कि वे भक्त थे। उनकी रचना भक्ति प्रधान है। इन दो तथ्यों को प्रायः सभी ने पूर्ण स्नेह स्वीकार भी किया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब यह भक्त थे और उनकी रचना भक्ति प्रधान है तो उसका कोई दर्शन भी अवश्य होगा। केवल स्वच्छन्द कहने से काम नहीं चल सकता। जहां जालीबक की जानकारी के लिए नियमों की शृंखला में कोई वस्तु नहीं बंधती, वहां उसे स्वच्छन्द कह दिया जाता है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं। प्रत्येक कार्य का भूत कारण अवश्य रहता है। मित्र जी ने एक बात बार-बार कही है कि रसखान में विदेशीपन की फलक अवश्य दिखाई पड़ती है।^२ यह प्रेममार्गी भक्त थे।^३ ठाँकिक पक्ष में उनका विरह निवेदन फारसी काव्य की वेदना से प्रभावित है, जलौकिक पक्ष में सुफियों की प्रेमपीर से। जागे कहते हैं स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम की पीर सुफी कवियों से ही ली है इसमें कोई सन्देह नहीं।^४ जागे कहते हैं कि रसखान जो पिछले काटे के कृष्ण भक्त कवि सुफी सन्तों और फारसी साहित्य की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं, यह असंदिग्ध

१. रसखानि (ग्रन्थावली), प्रस्तावना, पृ० २२

२. रसखानि (ग्रन्थावली), प्रस्तावना, पृ० २४

३. रसखानि (ग्रन्थावली), प्रस्तावना, पृ० २२

४. रसखानि (ग्रन्थावली), प्रस्तावना, पृ० २८

है ।^६

रसखान और सूफी विद्वान्त

यह बातें विद्वत् लोग हैं । सम्प्रदाय कुछ जाणों में ही बदल सकती हैं पर संस्कार जल्दी नहीं बदला करते । किसी कट्टर हिन्दू भक्त को वास्तु मुसलमान बना कर या ईसाई बना कर उसकी वेशभूषा भले ही बदल दीजिये, किन्तु उसकी संस्कृति के मूल रूप को नहीं बदला जा सकता । यह हमें हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि रसखान को मुस्लिम संस्कार विरासत में मिले थे । उनका विषयानन्द बागे बल कर ब्रह्मानन्द में परिणत हो गया था । इसलिए एक मुस्लिम इस्लामीना (गुप्त विधा) जानने वाले फ़कीर (योगी) में जो विशेषतारं होनी चाहियें वे उनकी कविता में ज्यों की त्यों मिलती हैं । केवल इतना ही अन्तर है कि जहाँ सूफी योग मार्ग पर चलने के लिए अपना मार्ग-प्रदर्शक साकार गुरु को मानते हैं वहाँ इन्होंने कृष्ण और उनकी श्रवि को स्थान दिया और उसी में अपने आपको फना (लीन) कर दिया । इस प्रकार ये प्रेममार्गी सूफी कवियों की प्रेणी में जा जाते हैं । सूफी मत की समस्त विशेषतारं उनके काव्य में मिल जाती हैं । इसीलिए इन्हें प्रेममार्गी कवि, मित्र जी ने भी स्थान स्थान पर माना है । स्वच्छंद इसलिए कह दिया कि अन्य हिन्दू दर्शनों में तो सूफी मत की विशेषतारं नहीं मिलती और सूफी मत में कृष्ण का वर्णन नहीं मिलता ।

सूफी सम्प्रदाय के बारह सम्प्रदायों में से कुछ सम्प्रदाय ऐसे हैं , जिनमें किसी भी ऐसे व्यक्ति को अपना मार्गदर्शक गुरु बनाया जा सकता है जिसमें सुन्दरता हो, आकर्षण हो और जिसमें साधक (शिष्य) की वृत्ति रम सके । वास्तव में पीर (गुरु) के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है । जिसने साधक को फ़ैज (अनुकम्पा) और तवज्जह (ध्यान) की प्राप्ति हो उसको गुरु बनाया जा सकता है । हिन्दी साहित्य में कृष्ण का मधुर व्यक्तित्व बेजोड़ है । इसलिए कुछ तो अपने अनुभव के कारण और कुछ हिन्दी साहित्य की परम्परा के कारण रसखान

६. रसखानि (गुंभावली) प्रस्तावना , पृ. १४

को कृष्ण में अपने को फ़ना (लीन) करना ही रुचा । इतनी ही उनमें स्वच्छंदता है ।

साधक की चार अवस्थाएं

सूफियों में साधक की चार अवस्थाएं होती हैं - १. फ़नाफिल्लैह (गुरु में लीन होना) २. फिनाफिलरबूत (रबूत में लीन होना) ३. फनाफिल्लाह (खुदा में लीन होना) ४. बकाबिल्लाह^१ (खुदा को जान लेना) ।

रसखान अपनी साधना से वारम्भ की दोनों साधनाओं को पूर्ण कर फ़नाफिल्लाह तक पहुँच चुके थे । सूफियों में ज़िक्र फ़िक्र^२ (सुरति शब्द) का विशेष स्थान है । कृष्ण ही रसखान का सुरति शब्द है , जबकि साधारण रूप से सूफियों में जल्लाहू माना जाता है । सूफ़ी साधक जिसमें फ़ना होता है उसको सब से ऊँचा और खुदा के रूप में मानता है और उसकी स्मृति में लीन रहना अपना परम कर्तव्य समझता है । उससे सम्पर्क रखने वाली प्रत्येक चीज़ से अपना संबंध रखता है । इसीलिए रसखान मरने के बाद भी यदि उन्हें मनुष्य योनि प्राप्त हो तो वे ब्रज में ही अपना निवास चाहते हैं क्योंकि वह उनके दृष्ट का निवास स्थान है । पशु होने पर वे नन्द की गोधन बनना चाहते हैं , पत्थर बनने पर गौवर्धन पर्वत का, पक्षी बनने पर यमुना - किनारे के कदंब का आश्रय चाहते हैं । यहाँ एक बात ध्यान देने की और है कि सूफ़ी मत में नामिस्थान से ऊपर के दो हिस्से किये जाते हैं । गर्दन तक का हिस्सा बालमे झलक उससे ऊपर का हिस्सा बालमे जमल । बालमेझलक में बाईं ओर का हिस्सा क़त्ब (हृदय) नफ़स माया का स्थान माना गया है जिसे यमुना भी कहा जाता है । दायीं ओर का हिस्सा रुह (आत्मा) गंगा के रूप में माना जाता है । क़त्ब के बीच का हिस्सा सर जिसे एक हजार फन वाला कालीनाग या शेषनाग के रूप में प्रायः सभी भारतीय सूफ़ी सन्त मानते हैं । रुह के बीच के हिस्से को झफ़ी कहते हैं । नामि से लेकर मूकुटी

१. देखिये स्वतलाहातैसूफिया

२. देखिये तज़कराथे गोलिया, पृ० १५३

स्थान तक बाहुफला कहते हैं। ठीक यही पांच लतीफे गर्दन के ऊपरी हिस्से बालमें अमल में हैं। इसीलिए कत्व के तीन हिस्से माने गये हैं - कत्व सनौवरी (हृदय चक्र), कत्व मुदव्वरी (बाजा चक्र) कत्व नीलौफरी (ब्रह्मरंड)। इसी के ऊपर विराट स्वल्प है।^१ गुरति शब्द कत्व अर्थात् यमुना से ही शुरू होता है। जहाँ गुरति के पहले खंड का उच्चारण होता है। दूसरे खंड का उच्चारण ब्रह्मरंड में होता है। तीसरे का उच्चारण फिर वापस यमुना में ही होता है। जब तक वह स्थान शुद्ध न हो तब तक साधक कुछ नहीं कर सकता। इसीलिए रसखान ने कालिन्दी के कूल रूपी बालमें झलक लकुटी और कामरिया रूपी बालमें अमल का प्रयोग किया है। सूफियों में योग-शिक्षा के दो मुख्य अंग हैं जज्ब और सुलूक।^२ जज्ब (लीनता) में बाध्यात्मिक प्रेम, उत्संग और गुरु कृपा से आरंभ में ही पैदा होने लगता है जिसमें गुरत बात्मा की और खिंचने और सिमटने लगती है। यहाँ तक कि खिंचते और सिमटते हुए अन्तर में ध्वनि पर जा कर टिक जाती है और शान्त हो जाती है। उसी मन की सारी उपाधियाँ और बंधन आप ही आप लुप्त हो जाते हैं। बस यही जज्ब अर्थात् फना की अवस्था है। जिसमें तज्जाकियार नफूत (मन की शुद्धता) होती है। तज्जाकियार^३ कत्व (हृदय की शुद्धता) अर्थात् हृदय भी निर्मल हो जाता है। सुलूक में शारीरिक मानसिक मायावी प्रवृत्ति बाध्यात्मिक प्रवृत्ति में बदल जाती है और सबर शुकर तवकल (सन्तोष) रज़ा (अनुमति) और तसलीम आदि पर बटल विश्वास हो जाता है। पर इन सबके लिए आवश्यकता है ऐसे रहबर (मार्गदर्शक) की जिससे साधक की तव्वजुह^४ मिल सके क्योंकि सूफी योग में तीन शर्तें होती हैं। १- इस्तेदाद का दिलवाला साधक २. पीरकामिल मुकम्मल ३. तौफीके इलाही। जहाँ तक साधक और पीर एक न हो जायें तौफीके इलाही हो ही नहीं सकती। इसीलिए

१. देखिये तज़करार गौसिया, पृ० १५२

२. देखिये - अलतकशरुफ अन मुहिम्मातुत तस्वुफ, पृ० २२२

३. देखिये - अलतकशरुफ अन मुहिम्मातुत तस्वुफ, पृ० २३४

४. तज़करार गौसिया, पृ० १५४

सुरति को अन्तर्मुख करके महवियत (लीनता) में डूबना पड़ता है। वह तभी होता है जब सुरति को कृत्व मुदव्वरी पर लाया जाय। नफुस और हुदी की घाटी पार करके बैनुधी (अर्थात् महवियत और फ़ना) की पार्श्वकता है।

सच्चे फ़कीर में चार बातें होती हैं। फ़कीर शब्द फ़े, काफ़, ये, रे से बनता है। फ़े से फ़जले इलाही (ईश्वर कृपा), काफ़ से क्नावत (संतोष), ये से यादे इलाही, रे से रियाज़त अर्थात् तपस्या। रसखान में ये सभी मौजूद हैं। सुफ़ी मत के अनुसार जब तक हृदय में प्रेम की पीर (चोट) नहीं, परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। रसखान ने भी प्रेम के महत्व को स्वीकार किया है -

पै मिठास या मार के, रोम रोम भरपूर।

मरत जिये, फुकती थिरे, बने तु क्नाबूर ॥

पैह स्तौहूं हम तुन्यो, पैम वजूबो लेल।

जांबाजी बाज़ी जहाँ, दिलका दिलो मिल मेल ॥^१

फ़ना फ़िलसैफ

सुफ़ी अन्तों में शैख (गुरु) को बहुत महत्व दिया गया है।^२ गुरु (पीर) की किसी बात की बालोचना नहीं की जा सकती। प्रसिद्ध फ़ारसी कवि हाफ़िज़ के अनुसार -

बमै सज्जादह इंगीं कुन गरत पीरे मुग़ां गौयद।

कि तालिक बै ख़बर न बुवद ज़े राही रत्मे मंज़िलेह ॥^३

इसका भावार्थ यह है कि पीर के विषय में उचित अनुचित का विचार करने से साधक मार्ग-भ्रष्ट हो जाता है। उसी को परम साधन मान कर उसमें अपने को लीन करना चाहिये क्योंकि कहानी बरकत का मरकज़ (बाह्य कल्याण केन्द्र) वही है। इसी से रसखान ने कहा है -

१. प्रेमवाटिका, ३०, ३६

२. देखिये तज़क़रा गौज़िया, पृ० १५३

३. देखिये - अलतक़शुफ़ वन मुहिम्मातुततव्वुफ़, पृ० १६५

बैन वही उनको गुन गाई औ कान वही उन बैन सौ तानी ।

हाथ वही उन गात तरे अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ।

जान वही उन जान के संग औ मान वही जु करे मनमानी ।

त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि औ है रसखानि ॥^१

सूफियों के अनुसार साधक को गुरु की स्मृति में लीन रह कर ही उनके विषय की मान्यताओं के अनुसार उनकी चर्चा करने में मग्न रहना चाहिये । औ जै उनकी चर्चा होती है वैसे वैसे उनका फ़ैज़ (कृपा) प्राप्त होती रहती है । इसीलिए रसखान श्रीकृष्ण की कुंज लीला, रासलीला, पनघटलीला, दानलीला, बनलीला, गौरसलीला और बाललीला की चर्चा करते हैं । राधा उनकी प्रिय मानी गई हैं । इसलिए यह राधा की भी चर्चा करते हैं । राग-रमद रूपी वंशी का वर्णन और साधक रूपी गोपियों के अज्ञान रूपी चोर की लीला के हरण का भी वर्णन करते हैं ।

सूफियों में पीर हमेशा साकार होता है । उसी को परम साधन मान कर साधक जागे बढ़ता है । उसी से रसखान ने साकार प्रभु कृष्ण को अपना गुरु माना । कृष्ण की दूसरी विशेषता उनका मधुर व्यक्तित्व है । हिन्दी साहित्य के ज्ञाता होने के कारण उसने भी रसखान को अपनी ओर आकर्षित किया । इन्होंने कृष्ण चित्र के दर्शन भी किये थे । मराक़्खे^२ (ध्यान तल्लीनता) द्वारा उनकी फ़ांकी भी प्राप्त की थी । इसलिए कृष्ण को ही पीर मान कर उसमें ईश्वरत्व का आरोप कर उसी के गीत गाते उसी में लीन हो गये ।

सूफी साधना की चार अवस्थाएं

सूफियों में चार मुकाम माने गये हैं - शरीअत, तरीक़त, हकीक़त और मारफ़त । मनुष्य तीन चीज़ों के मेल से बना है - १. स्थूल शरीर जो शारीरिक कर्मों के कानून के अधीन है । उसी को तरीक़त कहते हैं । इस सम्बन्ध में रसखान ने भी कहा है +-

१. सु० २०, ४

२. देखिये - अलतकशुफ़ अन महिम्मातुततवव्युफ़, पृ० ४८३

जो रसना रसना बिलवै तैहि देहु सदा निज नाम उचारन ।

मोकर नीकी करै करानी जु पै कुंज कुटीरन देहु बुहारन ।

सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि उहाँ ब्रज-रेनुका-अंक-अंवारन ।

साध निवास मिलै जु पै तौ वही कालिंदी-कूल कदंब की डारन ।^१

मन या सूक्ष्म शरीर जन्म-मन को राज उंमाल , सुधार के शिकंजे में जकड़ कर धार्मिक ध्यान के काम में लाया जाता है तो उसी को उपासना या शरीयत कहते हैं । रसखान भी स्पष्ट कहते हैं -

ऐसे ही मर तौ कहा रसखानि जो सांवरे ग्वार तौ नैह न लैयत ।^२

कारण-शरीर और उसका मंडल शांति के कानून के अधीन है । करार वानन्द-प्रेम ये जीवात्मा के धर्म हैं । जब इनको परमात्मा की ओर लगाया जाता है, तो वात्तिक वानन्द का अनुभव होता है । समाधि और लय अर्थात् महबियत, बैखदी, इस्तग़राक और फ़ना की गति पैदा होती है । इसी को हकीकत का मार्ग कहते हैं । रसखान के प्रेम और शान्ति वाले हृद इसी के धोतक हैं -

प्राण वही जु रहै रिफ़िक वा पर रूप वही जिहि बाहि रिफ़ायी ।

सीस वही जिन्हे परसै पद अंक वही जि वा परचायी ।

दूध वही जु दुहायी री बाही दही तु तही जु वही ढरकायी ।

और कहाँ लौ कहाँ रसखानि री भाव वही जु वही मन भायी ।।^३

उपर्युक्त तीनों हिस्सों के बीच की कड़ी मन है । हतकी शुद्धि अरमावश्यक है । जो प्रेम मार्ग में डाल कर ही वायक उन्नति कर सकता है । स्वीलिर प्रेम की महत्ता गाई गई ।

प्रेम (इश्क)

मुखबत का हृद से बढ़ जाना इश्क कहलाता है । खुदा सीमा रहित है । बंदा (मानव) खुदा से इश्क कर सकता है । खुदा बन्दे से इश्क नहीं करता, मुखबत

१. सु० २०, २

२. सु० २०, ६

३. सु० २०, ६०

करता है। कुरानशरीफ में भी खुदा ने अपने लिए खुब (मुख्यतः) का प्रयोग किया है, इश्क का नहीं। किन्तु मनुष्य का खुदा से इश्क करना, स्वयं को उसमें लीन कर देना सूफीमत (तसव्वुफ) की सँग बुनियाद (नींव) है।^१ सूफियों ने प्रेम को बहुत महत्त्व दिया है। सूफी कवि ने कहा है -

दिलमन दर ह्वस रवी तवार मोनिस जान ।

झाक राहै उत कि दर पाह्य नहीम उफ़त दा वस्त ॥^२

वर्थात् मैं वायु के धीरों में मार्ग धूलि बना हुआ खालिए पड़ा हूँ कि संभवतः वह मुझे उड़ा कर मेरे महबूब (प्रिय) तक पहुँचा दे। यहां प्रिय मिलन की उत्कंठा के दर्शन हो रहे हैं।

साधक को प्रेम में लफ़्त होने के लिए सूफी मत के अनुसार पीर की संगति उसकी तबज्जह उसमें प्रेम और श्रद्धा तथा साधन में दृढ़ता परभावश्यक है। स्थूल शरीर के द्वारा जैसे विषयानन्द की प्राप्ति होती है सूक्ष्म शरीर के द्वारा वासनानन्द की। कारण शरीर (बात्मा) के द्वारा शुद्ध बानन्द की। इस प्रकार यह तीन दरजे हैं जो क्रमशः प्राप्त होते हैं।

बाधुनिक भारतीय सूफी गुरु ब्रजमोहनलाल जो ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि मन को दबा कर साधना करना मामूली बात नहीं है। उसमें संसारी संस्कार का वासना-रूपी नाग रहता है जिसकी श्रीकृष्ण ही अपनी तबज्जह के बल से नाथ कर आफ़ कर सकते हैं। हमारे श्रीकृष्ण तबमुच हमारे लिए सतगुरु हैं पीर हैं। जिनकी पवित्र बात्मशक्तिक तबज्जह हमारे मार्ग में गुरति शब्द की डोर से वासना की शक्ति को नाथ कर और दाब कर ठीक कर लेते हैं। वासना को धीकर शुद्ध बानन्द से भर देते हैं।^३ रसखान भी शुद्ध बानन्द को ही विशेष महत्त्व देते हैं -

स्वारथ मूल अशुद्ध त्यों शुद्ध स्वभाव अनुकूल ।^४

१. मीर नवम्बर दिल्ली कालिज उर्दू पत्रिका, पृ० २२३

२. अलतकशुफ़ वन मुहिम्मातुततसव्वुफ़, पृ० ४०६

३. बानन्द योग, पृ० ५८

४. प्रेमवाटिका, ४६

यह तो पहले कहा जा चुका है कि रसखान ने कृष्ण को शेष के रूप में स्वीकार किया। इसीलिए उन्हें प्रेमवाटिका का माली घोषित किया। इन्हें कृष्णाधार के कारण पुष्टिमार्गी मानने की भूल की जाती है। नारद^१ आदि तथा वेद पुराण की वर्णा से यह समझा जाता है कि ये भारतीय भक्ति भावना में लीन हो गये थे। किन्तु वास्तविकता यह है कि फ़ारसी के प्रसिद्ध सूफी कवि उनकी प्रेरणा का स्रोत थे। उनका प्रेम (इश्क) पूर्णतया तत्सर्व्व में लीन है। प्रेम के सम्बन्ध में वे कहते हैं -

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत , प्रेम न जानत कोई ।

जो ज्ञान जाने प्रेम तो मरि जात क्यों रोई ॥

यही भाव फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि हाफ़िज़ में भी मिलता है -

हरगिज़ नमीरद बांकि दिलश जिंदाशुद बहरक ।

सिब्त अस्त बर ज़रीदार जालमे कुवाम ता मा ॥^२

अर्थात् जिसका दिल इश्क में ज़िन्दा है वह कभी नहीं मरता या जिसको इश्क़े हकीकी से आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति हो गई हो यदि वह मर भी जाय तो उसे ज़िन्दा समझना चाहिये।

कमल तंतु लो हीन अरु कठिन खड़ग की धार ।

बति लूथो टेढ़ी बहुरि , प्रेम पंथ अनिवार ॥^३

मुसलमानों की धार्मिक पुस्तक हदीस में कहा गया है कि मरने के बाद महाप्रलय होगा। उसमें प्रत्येक मानव को एक पुल (पुल सरात) से गुज़रना होगा वह पुल बाल से अधिक बारीक तलवार की धार से अधिक तेज़ होगा। प्रेमी व्यक्ति (ईश्वर के सच्चे साधक) उसे पार कर लेंगे।^४ रसखान के उपर्युक्त दोहों की रचना हदीस प्रभावित मालूम होती है।

१. प्रेमवाटिका, ४२

२. देखिये - अलतकशुफ़ वन महिम्मातुततसव्वुफ़, पृ० २१८

३. प्रेमवाटिका, ६

४. देखिये - हदीस

साज पढ़ि पंडित घर, के मौखी कुरान ।

जु पे प्रेम जान्यो नही कहा कियो रखान ॥^१

फारसी के रू प्रसिद्ध सुफ़ी कवि नज़ीरी ने भी कहा है -

किताबें छफ़ते मिलत गर बैजुबान्द बादमी बामी वस्त ।

न बुबान्द ता ज़े जुज़ बाश्नार्ह दास्तानीर रा ।^२

अर्थात् अगर इन्सान बातों धर्मों की किताबें पढ़े हैं तो भी जाहिल रहता है

जब तक कि मुख्यबत की किताब से कोई दास्तां (किस्सा) न पढ़े अर्थात् मुख्यबत या इश्क न करे । प्रेम की व्याख्या करते हुए रखान ने कहा है -

काम द्रौध मद मोह भय लोभ द्रोह मात्सर्य ।

इन सब ही तें प्रेम है परे कहत मुनिवर्य ॥^३

प्रसिद्ध फ़ारसी सुफ़ी कवि मौलाना 'रूम' ने भी कहा है -

हर करा जामा ज़े इश्की चाक शुद ।

ऊ ज़े हिरतो जुमलर ऐबी पाक शुद ।^४

अर्थात् जिसने अपना लिबास इश्क में चाक किया । वह लालच और समस्त दुर्गुणों से پاک हो गया ।

प्रेम जगम अनुपम वमित, सागर उरिउ बस्तान ।

जो आवत यहि ढिग बहुरि जात नाहिं रखान ॥^५

यही भाव प्रसिद्ध सुफ़ी कवि हाफ़िज में भी मिलते हैं -

बहरीस्त बहरे इश्क कि हीच किनारा नीस्त ।

बांजा जज़ानीके जाम बैतिपारंद चारा नीस्त ॥^६

१. प्रेमवाटिका, १३

२. नफ़हाते अबीरी शरह दीवाने नज़ीरी, पृ० १००

३. प्रेमवाटिका, १४

४. मसनवी मानवी, पहला भाग, पृ० ४

५. प्रेमवाटिका, ३

६. अलत-इश्क अन मुहिम्मातुततलव्वुफ़, पृ० ४१०

इश्क गहरे सागर की तरह है । उसको और और नहीं है । इश्क की जाग कभी समाप्त नहीं होती । इसे इश्क में फँसने के बाद निकलना कठिन है।

भले बूथा करि पवि मरौ, ज्ञान-गरूर बढ़ाय ।

बिना प्रेम फीकी सबै कौटुक किये उपाय ॥^१

मीलाना रूप ने भी कहा है -

उ दवाइए नख्खती नामूस मा ।

उ तो जफलातूनी जालीनूस मा ।^२

अर्थात् इश्क हमारे गुरू और नंगी नाम की दवा है । ये जफलातून और जालीनूस की तरह समस्त रोगों का इलाज है ।

रसखान ने कहा है -

ज्ञान ध्यान विधामती, मत बित्वाव बिबैक ।

बिना प्रेम सब धूरि हैं जग जा जनेक ॥^३

हाफिज़ ने भी कहा है -

इश्कत रसद बफ़रयाद गर खुद बतान हाफ़िज़ ।

कुरान ज़बर बकुबानी बाचार दह रिवायत ॥^४

अर्थात् यदि तुम इतने बड़े ज्ञानी भी हो कि कुरानमजीद चौदह रिवायतों के साथ तुम्हें कंठस्थ हो तो भी बगैर इश्क के तुम्हारा काम नहीं चलेगा ।

इस प्रकार रसखान का प्रेम सूफी कवियों के इश्क के निकट है । प्रेम-वाटिका में सूफी सिद्धान्त पदः पदः मिलते हैं ।

प्रेम रूप इशति दर्पन जहो रचै बज्जूबी सेल ।

या में अपने रूप कहु लखि परि है जनमेल ॥

सूफियों के अनुसार यह ब्रह्मण्ड हाल की अवस्था है । इसमें इश्क इस सीमा तक पहुँच जाता है कि मनुष्य को अपनी खबर नहीं रहती^५। हाफिज़ ने

१. प्रेमवाटिका, ६

२. मसनवी मानवी, पृ० ४

३. प्रेमवाटिका, २५

४. अलतकशुफ़ वन मुहिम्मातुततसव्वुफ़, पृ० ४१६

५. अलतकशुफ़ वन मुहिम्मातुत तसव्वुफ़, पृ० ५७६

भी कहा है -

सायास माशूक गर उफ़ताद बर जासिक बे शुद ।^१

अर्थात् यदि प्रेमी पर महबूब का साया पड़ जाय तो क्या हौ । अर्थात् बेसुधी की अवस्था होती है ।

सूफियों की तरह रसखान सांसारिक मोह को त्यागने की शिक्षा देते हैं -

लोक-वैद-मरजाद अब , लाज काज सदैह ।

देत बहार प्रेम करि , बेघि निषेध को नैह ।^२

सहनशीलता और अपने को छोटा (छ्कीर, कमतर) समझना सूफियों की विशेषता है , विशेष कर पीर के सामने । रसखान भी कहते हैं -

तुरे सदा चाहै न कुछ सहे तबै जो होर ।

रहे एक रस चाहि कै, प्रेम बखानी सौर ॥^३

सूफियों प्रे^१र्तर्क (सब कुछ त्यागने) को महत्त्व दिया गया है । रसखान ने भी कहा है -

जेहि पारं बैकुंठ बरु , हरिहुं की नहिं चाहि ।

जोह जलौकि बुद बुम, सरस उप्रेम कहाहि ॥^४

इश्क सदा को वश में कर लेता है । रसखान भी कहते हैं -

हरि के सब अधीन , पै हरि प्रेम-आधीन ।

याही तैं हरि आपुहीं, याहि बड़प्पन दीन ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि रसखान का दर्शन सूफी दर्शन है । संक्षेप में उनके काव्य बुजान रसखान की दार्शनिक व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है -

१- शरियत के अनुसार अगले जन्म में भी अपने पीर से सम्बन्ध रखने की भावना प्रथम

१. अलकाशुफ वन मुहिम्मातुत तसवुफ, पृ० १७६

२. प्रेमवाटिका, ७ .

३. प्रेमवाटिका, २२

४. प्रेमवाटिका, २८

पद्य में ।

२- शरीर को पीर की सेवा में लगाने की भावना , द्वितीय और चतुर्थ पद्य में ।

३- मुजाहिद होने की भावना , तर्क (त्याग की भावना) तृतीय पद्य में ।

४- बन्कुल (संतोष) की भावना , पांचवें, बठारहवें, उन्नीसवें पद्य में ।

५- तरीकत की राह पर मन को फ़नाफ़िल शैल (पीर के प्रेम में) में तल्लीन करना , छठे पद्य से लेकर ग्यारहवें पद्य तक ।

तौहीद (एक ईश्वर) की भावना , बारह से लेकर पन्द्रहवें पद्य तक ।

प्रेम की भावना , सोलहवें-उत्तरहवें पद्य में ।

पीर की स्मृति (फ़नाफ़िलशैल) जिसमें रूप वर्णन, बाललीला, गोचारण, रागसरपद रूपी वंशी का प्रभाव , गोपी रूपी साधकों के अज्ञान रूपी चीर हरण की लीला , कृत्व रूपी कुंजलीला तथा रास लीला , पनघटलीला, दानलीला, बनलीला, गोरसलीला, सुकुमारता मन को परवशता आदि के चित्र बीस से लेकर दो सौ चौदह तक हैं

प्रेमसाटिका में स्पष्ट रूप से प्रेम की महत्ता है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार कृष्ण भक्त कहे जाने वाले प्रेम और आत्म समर्पण की महत्ता के गीत गाने वाले रसखान निःसंदेह तुफ़ी साधक हैं । और पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी का यह कहना बिल्कुल सत्य है कि रसखान असंदिग्ध रूप से तुफ़ी सन्तों और फ़ारसी साहित्य से प्रभावित हुए हैं ।^१

उपसंहार

परवर्ती कवि और रसखान

कवि अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति अपनी रचना के माध्यम से करता है। तत्कालीन परिस्थिति, समाज तथा समासमयिक कवि स्वं ऐसी का प्रभाव भी कवि की रचना पर पड़ता है। कभी कभी कवि पूर्ववर्ती कवियों से भी काव्य-प्रेरणा ग्रहण करता है।

कविवर रसखान के काव्य का प्रेरणास्रोत श्रीमद्भागवत, सुरसाहित्य तथा फ़ारसी काव्य है। ब्रज उनका निवास-स्थान था जिसे कृष्ण ने जन्म ले कर पावन पुनीत बनाया था। श्रीमद्भागवत की कथा रसखान ने चुनी थी। इसी से भागवत में वर्णित कृष्ण-कथा को उन्होंने अपनाया। सुरदास की भांति लीला-गान तथा रूप-माधुर्य का विस्तृत विवेचन किया। अन्तर केवल इतना है कि सुरदास की श्रीकृष्ण के बाल सौन्दर्य ने मोहित किया था और रसखान को युवा रूप ने। फ़ारसी कवियों की भांति रसखान ने प्रेम का चित्रण किया। कृष्ण कथा को सुफ़ी चोला पहना कर अपने हृदय के उद्गारों की अभिव्यक्ति की यही उनकी मौलिकता है जो उनके काव्य के अध्ययन से भली भांति विदित हो जाती है।

जिस प्रकार रसखान श्रीमद्भागवत, सुर काव्य तथा फ़ारसी काव्य तथा सुफ़ी उपासना से प्रभावित हुए हैं उसी प्रकार उनके समकालीन तथा बाद के कवियों ने रसखान से प्रेरणा ली जिमें घनानन्द, रहीम ठाकुर, बोधा और देव उल्लेखनीय हैं।

रसखान और घनानन्द

रसखान स्वच्छन्द काव्यधारा के प्रथम कवि माने गये हैं, इसलिए बाद के कवियों का उनसे प्रभावित होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। रसखान के काव्य में कृष्ण भक्ति के साथ ही कृष्ण के मधुर रूप के दर्शन होते हैं। उनके कृष्ण अन्य भक्त-कवियों के कृष्ण से अधिक सुन्दर एवं आकर्षक हैं। गोपियां उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हैं।

रसखानि परी मुसकानि कै पाननि कौन गनै कुलकानि बिचारी ।^१

रसखान के इस भाव की अभिव्यक्ति घनानंद के काव्य में होती है-

अकुलानि के पानि परयो दिन राति तु ज्यौ द्विकौ न कहूं बहरी ।^२
रसखान ने नैत्रीपालंभ को 'मधु की मसिया' कहा है -

रसखान मई मधु की मसियां जब नैह को बन्धन क्यों हूं कुटेना ।^३
घनानंद ने भी इसी भाव को इस प्रकार दर्शाया है -

माधुरी-निधान प्रान - ज्यारी जान प्यारी तैरौ,
रूप-रस बाहैं बाहैं मधुमासी ह्वै गई ॥^४

रसखान ने कृष्ण के रूप सागर में गीतें लगाये हैं तो घनानंद ने अपने प्रिय की रूप निधान बताया है -

रसखान लहें मन बूझि गयी मधि रूप के सिंधु कलौलत है ।^५

+ + + +
रूपनिधान तुजान सखी जब तैं उन नैननि नैकु निहारे ।^६

रसखान के निम्न पद का स्पष्ट प्रभाव घनानंद के काव्य में परिलक्षित होता है-

मन लीन्यौ प्यारे बितै पै कटांक नहिं देत ।

यह कहा पाटी पड़ी दल की पीझी लेत ॥^७

तुम कौन थी पाटी पड़े हो कहीं मन लेहु पै देहु कटांक नहीं ।^८

१. तु० २०, १७३

२. तुजानखित, पद २१६

३. तु० २०, २२६

४. तुजानखित, पद १६८

५. तु० २०, १५७

६. तुजानखित प्रबन्ध, पद १

७. तु० २०, १५०

८. तुजानखित प्रबन्ध, पद २६६

रसखान के निम्न पद का भी पूर्ण प्रभाव मिलता है -

रही चतुर बुजान भयी अजान हि जान कै ।

तजि दीनी पहिचान , जान आपनी जान को ।^१

+ + +

बांझि हूं पहिचान तजी कहु ऐसीई भागनि की लखी है ।

+ + +

जान है होत इते पै अजान जो ती बिन पावक ही दखी है ।^२

रसखान और घनानंद में भाव-साम्य है । घनानंद ने रसखान से प्रेरणा ली किन्तु फिर भी रसखान के प्रेम में संयोग, सादगी, लापरवाही, भाषा की स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं । किन्तु घनानंद का हृदय विरह से पीड़ित है । दुःख ने धारों को गहरा कर दिया है ।

रसखान और रहीम

रहीम और रसखान दोनों कवियों में समान भाव वाले अनेक कवित्त तथा दोहे मिलते हैं । दोनों कवियों के नेत्र कृष्ण-सौन्दर्य को देख कर वश में नहीं रहते। इस दशा का वर्णन करते हुए रहीम कहते हैं -

हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सर पूर ।

सैंचि आपनी और को डारि दियो पुनि दूरि ॥^३

रसखान ने भी कहा है -

मोहन खवि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहिं ।

ऐवे आवत घनुष ते, छूटे ते सर ते जाहिं ॥^४

१. सु० २०, १५३

२. बुजानहित प्रबन्ध, पद ५

३. रहीम रत्नावली, पृ० २३

४. सु० २०, १५३

ईश्वर जिसको रखना चाहता है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इस विश्वास की रहीम इन शब्दों में व्यक्त करते हैं -

रहिमन कौऊ का करै, ज्वारी चौर लवार
जी पत राखनहार दै, माखन चाखन हार ॥^१

इस विश्वास की रसखान ने इन शब्दों में व्यक्त किया है -

कहा करै रसखानि की कौऊ चुगुल लवार ।
जी पै राखनहार है माखन-चाखन हार ॥^२

रहीम ने कहा है -

फलट कली मुसकाय दुति रहीम उपजाय अति ।
बाती की उक्ताय मानों दीनों दीप की ।^३

रसखान ने भी कहा है -

यों जगजोति उठी अंग की उसकाइ दई मनौ बाती दिया की ।^४

रसखान और ठाकुर

ठाकुर कवि सच्ची उमंग के गायक थे । न उनमें कृत्रिम शब्दार्द्धार है न कल्पना की व्यर्थ उड़ान । वे जिस प्रकार अनुभव करते थे भावों को उसी रूप में व्यक्त कर देते थे । रसखान की भांति उन्होंने बोलचाल की चली भाषा को अपनाया । लोकोक्तियों और मुहावरों का भी सफल प्रयोग किया । रसखान की ही भांति थे उदार , भावुक और हृदय के पारखी कवि थे । इन्होंने भी प्रेम-निरूपण के अतिरिक्त फाग, बसन्त और होली वादि उत्सवों का सफल चित्रण किया है । रसखान ने एक पद में कहा है -

१. रहीम रत्नावली, पृ० १६

२. सु० २०, १६

३. रहीम रत्नावली, पृ० ७०

४. सु० २०, ११७

मेरी चित्तौ की मार री लाउ निहारि कै बंसी बजाई ।
 वा दिन तैं मोहिं लागी ठाँरी जो लोग कहैं कोई बावरी जाई ।
 यों रसखानि धरयो विगरी ब्रज जानत वै कि मेरी जियराई ।
 जो कौउ चाहै भली अपनी तो सनेह न काहूँ सों कीजियो मारै ॥^१
 एक पद में ठाकुर ने भी कुछ इसी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति की है -
 हों करि हों हित फुलों फिरै मन जानत नाही अजान हैं ये तो ।
 या पथ पाँव धरे पहिचान वहै रह्ये दुख जाँ सुख के ताँ ।
 ठाकुर जो या कथा सुनि पावतौ, तो सुनिवै कहँ कान न देतौ ।
 जानत जो इतनी परतीति तौ, प्रीति की रीत को नाम न लेतौ ॥^२

ठाकुर ने रसखान की भाँति ही प्रेम मार्ग की कठिनाइयों की चर्चा की है । ये रसखान ने पूर्णतया प्रभावित हुए हैं ।

रसखान और बीधा

रसखान और बीधा दोनों ही प्रेममग्न कवि हैं । उनके काव्य में विरह का ऊहात्मक चित्रण नहीं है । प्रेम का निरूपण सुन्दर है । रसखान लकुटी और कामरिया पर तीनों लोक निश्चावर करने को तैयार हैं -

‘वा लकुटी वरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
 बाठहु सिद्धि नवा निधि को सुख नंद की गाँ बराइ बिसारौं ।
 र रसखानि जौ स्न नैनन तैं ब्रज के बन-बाग निहारौं ।
 कौटिक ये कलघौत के घाम करील के कुंज ऊपर वारौं ॥^३
 बीधा भी सुभान के मुख पर जहान वारने को तैयार हैं -
 एक सुभान के जानन पे, कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को ।
 कैयो वतकुतु की पदवी, लुटिये लखि के मुखकाष्ट ताको ॥

१. सु० २०, १३६

२. ठाकुर ठाक,

३. सु० २०, ३

सौक जरा गुजरा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को ।
 जान मिलै तो जहान मिलै , नहि जान मिलै तो जहान कहां को ।^१
 दोनों कवियों ने प्रेम के सिद्धान्त-महा पर भी कहा है । प्रेम मार्ग के विषय में
 रसखान ने कहा है -

कमल तंतु तो हीन बरु कठिन सङ्ग की धार ।
 बति सूखी टेढ़ी बहुरि प्रेम पंथ बनियार ॥^२
 इसी प्रकार बोधा ने भी प्रेम मार्ग की भङ्करता का उल्लेख करते हुए लिखा है -
 बति हीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पांव दे बावनो है ।
 सुरै नैह के द्वार तकै न जहां परतीति को टांढी लदावनो है ।
 कवि बोधा बनी धनी ने जहू तैं चढ़ि तापै न चित डरावनो है ।
 यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है ।^३
 यह निश्चित है कि बोधा ने काव्य रचना करते समय रसखान से प्रेरणा ली है ।
रसखान और देव

रीतिकालीन कवि देव की कविता पर रसखान का स्पष्ट प्रभाव परि-
 उद्घात होता है । रसखान ने कृष्ण प्रेम की महत्त्व देकर स्कान्त भावमय रूप की
 बपनाया है । उनके प्रेम की तीव्रता और तन्मयता का प्रभाव 'देव' की कविता
 पर भी पड़ा है । रसखान ने गोपियों के लिए 'मधु की मखियाँ' विशेषण का
 प्रयोग किया है -

बाली पगे रगे जे रंग सांवरे मो पै न आवत ठालबी नैन ।
 धावत हैं उतहीं जित मोहन रोके रुकै नहिं धुंघत रेना ।
 काननि कौं कल नाहिं परी सखी प्रेम रों भीजे जुने बिन बैना ।
 रसखानि मई मधु की मखियां अब नैह को बंधन क्यों हूं छुटेना ॥^४

१. विरह-वारीश - बाचार्य शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास से उद्धृत, पृ० ३।

२. प्रेमसाटिका, पद ६

३. बाचार्य शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास पृ० ३७२ से उद्धृत ।

४. सु० १०, १२६

देवकी गोपियां भी विवश होकर कृष्ण प्रेम के लालच में उनकी 'पैरी' हो जाती हैं । उनकी बसिं 'मधु की मखिया' हो जाती हैं -

धार में धारि धंसी निरधार हवै,

जाय फंसी उकसीं न बधैरी ।

री अंगराइ गिरीं गहिरी,

गहि फेरी फिरीं न धिरीं नहिं धैरी ।

देव कहू अपनो बसु ना,

रख लालच लाउ चितै मई पैरी ।

बैगही बूढ़ि गई पंखियां,

बंखियां मधु की मखियां मई पैरी ॥^१

देव ने कृष्ण के रूप माधुर्य का निरूपण भी रसखान से प्रभावित होकर ही किया है । कृष्ण स्वरूप का चित्रण करते हुए रसखान कहते हैं -

मौरपला तिर कानन कुंठल कुंठल तौ कवि गंडनि छाई ।

बंक बिसाल रसाल बिलौकन है दुसमीकन मोहन माई ।

बाली नवीन महा घन तौ तन पीठ पटा ज्यों छटा बनि आई ।

हाँ रसखानि जकी ली रही कहु टोना चलाइ ठाँरी ली लाई ।^२

देव ने कृष्ण के रूप का चित्रण रसखान के रूपांकन से प्रभावित होकर किया है ।

रसखान ने कृष्ण-मुस्कान^३ को रूप-निरूपण में महत्वपूर्ण स्थान दिया है । देव ने भी उनकी मन्द हंसी का निरूपण करते हुए कहा है -

पायनि नूपुर मंजु बजै

कटि किंकनि के क धुनि की मधुराई ।

जांवरे अंग लसै पट पीत,

हिंदे हुलसै बनमाल गुहाई ॥

१. रीति-शृंगार, पृ० ६६

२. पु० १०, १६२

३. देखिये पु० १०, १७२, १७३, १७४, १७६

माथे किरीट बड़े दृग-चंचल,

मंद हंसी मुख बन्द जुन्हाई ।

जै जग - मंदिर - दीपक सुन्दर ,

श्री ब्रजदूत देव तुहाई ॥^१

रसखान के प्रेमदर्शन का भी देव पर प्रभाव पड़ा है । रसखान ने कहा है -

‘प्रेम वगम अनुपम वमित, सागर तरावि बखान

जौ आवत यहि ढिग, बहुरि जात नाहिं रसखान ॥^२

इसी से प्रभावित हो देव ने भी कहा है -

विमल शुद्ध शिगार-रस देव अकास अनंत ।

उड़ि उड़ि लग ज्यों बीर रस बिबस न पावत अंत ॥^३

निस्सन्देह देव रसखान से प्रभावित हुए हैं । इस प्रकार रसखान ने स्वच्छंद काव्यधारा के कवियों को एक नया मार्ग दिखा कर उनका पथ-प्रदर्शन किया । साथ ही रीतिकाल के वनैक वन्य कवियों को भी प्रेरणा प्रदान की ।

१. रीति-शृंगार, पृ० ६४

२. प्रेम्माटिका, ३

३. देव बीर उनकी कविता, पृ० २६४

रसज्ञान और कृष्ण भक्ति-सम्प्रदाय

रसज्ञान का सम्प्रदाय तथा विचार जानने के लिए हमें तत्कालीन भक्ति-सम्प्रदायों की भी जानकारी अपेक्षित है। भक्ति काल में अनेक वैष्णव सम्प्रदायों का उत्तरभारत तथा दक्षिण में उद्भव और विकास हुआ। जिनमें रामानन्दी सम्प्रदाय, श्रीकृष्ण चैतन्य का गौड़ीय सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय (पुष्टि मार्ग) उसी सम्प्रदाय, सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय तथा राधावल्लभ सम्प्रदाय अधिक प्रसिद्ध हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के आदि आचार्य निम्बार्क हैं जिनका समय बारहवीं शताब्दी का अन्त या तेरहवीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है। इसी से निम्बार्क आचार्य सबसे प्राचीन ठहरते हैं। उनके दार्शनिक विचारों में गम्भीर विवेक देखकर उन्हें भक्ति-सम्प्रदायों का अग्रणी मननशील आचार्य कहा जाता है। निम्बार्क कृत 'वैदान्तपारिजात और भ' भाष्य संक्षिप्त होने पर भी प्रौढ़ता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। निम्बार्क आचार्य के प्रमुख पांचों ग्रन्थों (पारिजात और भ, दशश्लोक मंत्ररहस्य षोडशी, प्रपन्न कल्पवली और श्रीकृष्णस्तवराज) में इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का मज़ी भाँति प्रतिपादन हुआ है।^६

निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्तिसिद्धान्त इस प्रकार हैं - शिव ब्रह्मादि जिनकी वन्दना करते हैं वे श्रीकृष्ण-चरण ही जीव के एकमात्र शरण हैं। भक्त जिस भाव से भगवान की उपासना करता है भगवान उसे उसी रूप में मिलते हैं। भगवान दया करने वाले स्वं कृपालु हैं। इस सम्प्रदाय में कृष्ण ही उपास्य, मज्जीय, सेव्य और पूज्य हैं। उनके अतिरिक्त किसी और की भक्ति या सेवा पूजा व्यर्थ है। राधा को भी इष्ट देवी के रूप में स्वीकार किया गया है। राधा को स्वकीया के रूप में स्वीकार करके उनकी समस्त लीलाओं में स्वकीयात्व का आरोप किया गया है। इस

६. देखिये - राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० ५१

सम्प्रदाय के उपास्य राधायुक्त कृष्ण हैं। भक्ति की प्राप्ति में भगवत्कृपा से ही भक्त में दैन्यादि भाव आते हैं। भक्ति श्रवण कीर्तन आदि नौ उपायों से प्राप्त होती है। शान्त, दास्य, सत्त्व, वात्सल्य तथा माधुर्य पांच प्रकार की भक्ति होती हैं।

निम्बार्कचार्य ने युगलरूप की उपासना के साथ-साथ पैम तथा माधुर्य की अधिष्ठात्री, राधा की उपासना पर विशेष बल दिया है। किन्तु रसखान के काव्य में भक्ति के इस स्वरूप के दर्शन नहीं होते। राधा की चर्चा उन्होंने की है, किन्तु उनकी विशेष महत्त्व नहीं दिया। न ही रसखान के काव्य में नवधा भक्ति पूर्णतया परिलक्षित होती है। न ही शान्त, दास्य, सत्त्व, वात्सल्य और माधुर्य भक्ति विकसित रूप में मिलती है। आलिये यह कहना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता कि इस मार्ग में रसखान नामक एक मुसलमान कवि भी हो गया है।^६ रसखान ने श्रीकृष्ण को अपने काव्य का आधार बनाया, यह सत्य है, किन्तु इस आधार पर उन्हें निम्बार्क-सम्प्रदाय का अनुयायी कहना उचित नहीं।

माध्य सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक मध्वाचार्य हैं। उन्हें बानन्दतीर्थ तथा पूर्णप्रज्ञ भी कहते हैं। श्री मध्वाचार्य जी ने अपने सिद्धान्त की स्थापना के लिए प्रस्थानत्रयी पर माध्य लिखे हैं। उनका मत द्वैतवाद पर प्रतिष्ठित है। उन्होंने अपनी मान्यताओं को बहुत ही स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कर भ्रम का कोई अवकाश

१. हिन्दी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट, हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग १९३० में पृष्ठ ४० पर कहा गया है 'कृष्ण भक्ति में जागे चलकर कई शाक्तारं हो गई।

वल्लभाचार्य स्वयं बाल कृष्ण के पुजारी थे और उन्हीं के अनुयायी सूरदास जी हुए। एक दूसरे भक्त निम्बार्क वृन्दावन में हुए जिन्होंने 'गोपीकृष्ण' रूप पर अधिक जोर दिया। जागे चल कर क्रमशः राधाजी की भक्ति पर अधिक जोर दिया जाने लगा। यहाँ तक कि राधा का स्थान कृष्ण के ऊपर हो गया। इस विचार के प्रवर्तक हित हरिवंश जी हुए। इसी मार्ग में रसखान नामक एक मुसलमान कवि भी हो गया है।

नहीं छोड़ा है । एक प्रसिद्ध पद्य में उनके मत का चारांश इस प्रकार है -

श्री मन्मध्वयते हरिः परतरः उत्थं जगत् तत्त्वतो

भेदो जीवव्रणा हरेनुचरा नीचोच्चभावं गताः ।

मुक्तिर्नैकसुखानुभूतिरमला भक्तिश्चतत्त्वायनं ।

ह्युक्ता दिक्त्रयं प्रमाणमखिलाभ्यायैकवैधो हरिः ॥

इसमें हरि (विष्णु) को सर्वोच्च तत्त्व स्वीकार किया गया है । जगत् सत्य है । भेद वास्तविक है । समस्त जीव हरि के अनुचर हैं , जीवों में नीच और उंच का तारतम्य है । अपने वास्तव सुख की अनुभूति ही मुक्ति है, अमला भक्ति ही मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है । प्रत्यक्षा, अनुमान और शब्द तीन प्रमाण ज्ञान के साधक हैं । वेद का समस्त तात्पर्य विष्णु ही है । ये नौ सिद्धान्त मध्वाचार्यजी के अभीष्ट हैं ।^१

रसज्ञान का इस भक्ति-सम्प्रदाय से भी कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। यद्यपि उन्होंने कृष्ण की (जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं) चर्चा की है किन्तु माध्वसम्प्रदाय का प्रभाव उनकी कविता पर परिलक्षित नहीं होता । न ही माध्व सम्प्रदाय में दीक्षा की कोई चर्चा मिलती है ।

चैतन्य सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु हैं । तात्त्विक सिद्धान्त की दृष्टि से इसे अचिंत्य भेदाभेदवादी सम्प्रदाय कहते हैं । इसके अनुसार परमतत्त्व एक ही है जो सच्चिदानंद स्वरूप, अनन्त शक्ति सम्पन्न तथा अनादि है । उपाधि भेद के द्वारा उसको परमात्मा , ब्रह्म और भगवान कहा गया है । परमतत्त्व श्रीकृष्ण ही माने गये हैं । उनकी अनन्त शक्तियां प्रकट हों तो भगवान, अप्रकट हों तो ब्रह्म तथा कुछ प्रकट और कुछ अप्रकट हों तो परमात्मा भेदों का जन्म होता है । इस सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म ज्ञान गम्य है, परमात्मा योगगम्य तथा भगवान भक्ति गम्य होता है । श्रीकृष्ण की तुलना में ब्रह्म की स्थिति ऐसी है जैसे सूर्य की तुलना में उजाले

१. राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ४५ से उद्धृत

की । परब्रह्म के तीन रूप हैं - स्वयंरूप, तदेकात्मरूप तथा आवेशरूप । परब्रह्म का स्वयंरूप श्रीकृष्ण हैं जो अपने पूर्णरूप से द्वारिका में, पूर्णतर रूप से मथुरा में और पूर्णतम रूप से वृन्दावन में विराजते थे । भगवान् के तीन प्रकार के अवतार होते हैं- पुरुषावतार, लीलावतार तथा गुणावतार । भगवान् की तीन प्रकार की शक्तियाँ होती हैं - अन्तरंग, बहिरंग और तटस्थ । अन्तरंग शक्ति ही उनके स्वरूप की शक्ति है । इसके उत्पत्ति, चित् और आनन्द तीन भेद हैं । भगवान् उत्पत्ति से विद्यमान चित् से स्वयं प्रकाशमान तथा ज्ञात के प्रकाशयिता होते हैं । आनन्द से आनन्दमग्न रहते हैं । इसी को बाह्यादिनी शक्ति कहा जाता है । राधा इसी का स्वरूप है । बहिरंग शक्ति माया है जिससे ज्ञात की उत्पत्ति होती है । तटस्थ शक्ति सम्पन्न जीव है जो एक ओर अन्तरंग से तथा दूसरी ओर बहिरंग से सम्बन्धित रहती है ।

रसखान के काव्य में चैतन्य सम्प्रदाय के सिद्धान्त भी नहीं मिलते ।

बल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के वादि प्रवर्तक बल्लभाचार्य हैं । इसे पुष्टि मार्ग कहते हैं । पुष्टि का अर्थ भगवदनुग्रह है । भगवदानुग्रह को यों तो सभी सम्प्रदायों में मान्यता प्राप्त है, किन्तु पुष्टि मार्ग में उस पर विशेष बल दिया गया है । इसलिए इसे पुष्टि सम्प्रदाय भी कहते हैं । पुष्टि की सिद्धि के लिए वेदान्तियों ने ब्रह्म के माया-मूलक दो भेद किये हैं । बल्लभ-मत में उसका खण्डन किया गया । वहाँ माया नाम की कोई वस्तु नहीं मानी गई और ब्रह्म को शुद्ध सर्वधर्माविशिष्ट माना गया है । ब्रह्म में जो विरोधी धर्मों का मान होता है जैसे 'वर्णोत्तरीयान् महती महीयान्' वह इनके अनुसार मायोपाधिक न होकर उसका सहज धर्म ही है ।

इस मत में ब्रह्म के तीन भेद हैं - परब्रह्म, अपारब्रह्म और क्षारब्रह्म । क्षार ब्रह्म ब्रह्मादी वेदान्तियों की माया से विशिष्ट है जिसमें सब प्रकार के विकार-परिणाम होते हैं । सबसे श्रेष्ठ परब्रह्म या पुरुषोत्तम रूप है । उसमें सत्त्व, चैतन्य और आनन्द तीनों वृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं । जीव, ज्ञात, ब्रह्म के ही स्फुरित हैं अतएव वे नित्य हैं । ज्ञात के विषय में बल्लभाचार्य जी ने अविकृत परिणाम-वाद माना है । ब्रह्म ज्ञात रूप में परिणत होकर ही अविकृत ही रहता है । वे उसके

विषय में आविर्भाव तिरोभाव माने हैं। अक्षर ब्रह्म की तीन शक्तियाँ होती हैं - तंघिनी, संवित और बाह्लादिनी। उनमें से तंघिनी शक्ति द्वारा ज्ञत स्वरूप का, संवित शक्ति से चैतन्य का और बाह्लादिनी शक्ति द्वारा अपने आनन्द स्वरूप का आविर्भाव-तिरोभाव वह करता रहता है।

श्रीकृष्ण परब्रह्म या पुरुषोत्तम के अवतार हैं। ब्रह्म के तीन रूपों की उपासना भी भिन्न भिन्न मार्गों से होती है। यह मार्ग इस प्रकार हैं - १. प्रवाह मार्ग २. मर्यादा मार्ग या ज्ञान मार्ग ३. पुष्टि मार्ग या भक्तिमार्ग।

सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना प्रवाह मार्ग है। वेद विहित मर्यादाओं का अनुसरण करना मर्यादा मार्ग है और भगवान् के अनुग्रह के वशीभूत होकर उन्हें समर्पण करना पुष्टि मार्ग है। पुष्टि मार्ग में लौक और वेद दोनों की मर्यादाओं का त्याग हो जाता है। बल्लभ सम्प्रदाय में स्त्री को श्रेष्ठ माना गया है।

‘दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता’ में रसखान की वार्ता होने के कारण रसखान को वैष्णव माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि वे बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। यह सत्य है कि रसखान के काव्य का आधार श्री कृष्ण है। उन्होंने श्रीकृष्ण के परब्रह्म स्वरूप का भी चित्रण किया है, किन्तु रसखान को इन सब बातों के होते हुए पुष्टि मार्ग नहीं कहा जा सकता। पुष्टि मार्ग में नवधा भक्ति को विशेष महत्व दिया गया है किन्तु रसखान ने नवधा भक्ति-निरूपण में विशेष रुचि नहीं दिखाई। उनका भक्ति-विश्वास भी पुष्टि-मार्ग कवियों से भिन्न है। यद्यपि उन्होंने श्रवण, कीर्तन और दर्शन की वर्णना की, किन्तु उसे पुष्टि मार्ग का प्रवाद नहीं माना जा सकता।

शुद्धादित के सिद्धान्त भी पूर्णतया रसखान में नहीं मिलते। जहाँ बल्लभाचार जी ने हृदय के संस्कार और विकास की दृष्टि से ईश्वर-भक्ति अर्थात् जलौकिक प्रेम को ही साध्य माना है वहाँ रसखान जलौकिक प्रेम को भी साध्य मानते हैं।

प्रकार शुद्धादित्वादी पुष्टिमार्ग से अलग हो जाते हैं ।

ब्रज में वास होने, कृष्ण की जन्मभूमि एवं लीला स्थली से निकटता के कारण कृष्ण को आधार बनाना स्वाभाविक ही था । किन्तु काव्य में कृष्ण चर्चा के कारण ही उन्हें किसी सम्प्रदाय का अनुगामी कह दिया जाय , यह उचित नहीं प्रतीत होता बल्लभ-सम्प्रदाय के सम्पर्क में वे अवश्य जाये किन्तु उनके काव्य में तत्कालीन प्रचलित भक्ति सम्प्रदायों की छाप नहीं मिलती ।

रसज्ञान में बल्लभाचार्य जो का शुद्धादित्वाद वाचार्य निम्बार्क का दैतादित वाद , मध्वाचार्य का दैतवाद और चैतन्य महाप्रभु के अतिन्त्यमैदामैदादि और वैधी तथा रागानुगा भक्ति, किसी का भी अनुसरण नहीं किया ।

स्वच्छन्द काव्य धारा

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में तीन प्रकार की काव्य-प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं - पहली शुद्ध भक्ति की, दूसरी काव्य-रीति की, तीसरी स्वच्छन्दता की। भक्त-कवि भक्ति भावना के प्रदर्शन एवं प्रचारार्थ कविता करते थे। रीतिबद्ध कवियों का लक्ष्य काव्य के शास्त्रीय पक्ष की ओर अधिक था। उनकी रुचि कविता-कामिर्न की बाह्य उपकरणों से उजाने में अधिक रही है। इसी से वहाँ स्वाभाविकता के दर्शन कम होते हैं।

स्वच्छन्द कवियों ने रीतिबद्ध ढाँचे को अस्वीकृत कर आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति पर बल दिया। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में ये कविता बनाते नहीं थे उन्हें काव्य का वेग बना देता था। प्रेम में लीन होने पर काव्य का प्रवाह आप से आप बाहर आ जाता था। कोई पञ्चीकारी करने की उन्हें आवश्यकता नहीं थी। प्रवाह के समय ये उसमें तरंगायित होते रहते थे। शब्द शोधन या पद-साधन में माधा नहीं लगाते थे। कला-पक्ष का उनकी जाग्रह नहीं था।^१ रीतिबद्ध परम्परा के त्याग एवं स्कांतिक प्रेम पर बल देने के कारण इन कवियों को 'स्वच्छन्द' माना गया है।

स्वच्छन्द काव्यधारा अविकसित रूप में सभी कालों में मिलती है पर रीतिकाल में इस धारा का अधिक विकास हुआ। डा० बच्चनसिंह स्वच्छन्द धारा को पार्श्वात्यरौमांटिजिज्म से प्रभावित मानते हैं। उनके अनुसार विषयवस्तु, दृष्टिकोण और रूप विन्यास की दृष्टि से इस प्रवृत्ति का स्थूल वर्गीकरण किया जा सकता है। इसकी विषयवस्तु में स्थानीय रंग, सामान्य की अपेक्षा विशिष्ट की ग्राह्यता, आत्मानुभूति-रंजित प्रकृति, भग्नावशेष, समाधि अंतरचेतना आदि का समावेश किया जाता है। रौमांटिक रचना की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है रचयिता की व्यक्तिनिष्ठता (इंडीविजुअलिज्म) की अभिव्यक्ति। जहाँ तक इस अभिव्यक्ति का सम्बन्ध है यह परम्परामुक्त साहित्यिक नियमों और परिपाटियों

को नहीं स्वीकार करती। रोमांटिक अभिव्यक्ति में भावात्मक तन्मयता और अनुमूल्यात्मक चेतना का प्राधान्य होता है। रीतिमुक्त काव्यधारा में उपर्युक्त कतिपय विशेषताएं मिलती हैं।^१

हिन्दी-साहित्य के रीति काल पर पाश्चात्य रोमांटिसिज्म का सीधा प्रभाव संभव नहीं। बाद में १८ वीं १९ वीं शताब्दी में भारत के पाश्चात्य देशों के सम्पर्क में जाने से रोमांटिसिज्म का प्रभाव पड़ा हो यह मुमकिन है किन्तु स्वच्छंद काव्य धारा का प्रारम्भ इसके पहले ही हुआ था। स्वच्छंद मार्ग के विकास का कारण उर्दू फ़ारसी के साहित्य का हिन्दी के साथ संगमन है। ज़क़र के समकालीन ही हिन्दी-संस्कृत तथा फ़ारसी के और बाद में उर्दू के कवि दरबार में साथ-साथ रहते रहते और काव्य बनाते सुनाते आये हैं। भक्ति काल में ही निर्गुण सन्तों तथा कृष्ण-शास्त्रा के भक्तों पर यह स्पष्ट हो गया था। कृष्ण-भक्ति में प्रेम की लौकिकता के समावेश का कारण फ़ारसी का प्रभाव भी था। - - - - स्वच्छंद धारा का मध्यकाल में प्रारम्भ ही फ़ारसी के योग से हुआ है।^२

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने भी कहा है कि "पिछले काटे के कृष्ण भक्त कवि और स्वच्छंद काव्य धारा के रीति-मुक्त कवि रूफ़ी सन्तों और फ़ारसी-साहित्य की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं, यह बसंदिग्ध है।"^३

वास्तव में यह ठीक ही है। स्वच्छंद कवि फ़ारसी-साहित्य से अधिक प्रभावित हुए हैं। उनका प्रेम-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी रूफ़ियों से मिलता जुलता है। इनका प्रेम रीतिबद्ध कवियों की भांति काम-झीड़ा नहीं है। न वे परम्परागत उसका कलात्मक चित्रण करते हैं। उनके काव्य में प्रेम की मधुर टीस और वेदना मिलती है। ये अपने को सहज भाव से प्रिय को गत्तमसर्पण कर देते हैं। इन्होंने प्रेम भाव की अनुभूति पर ही अधिक बल दिया है।^४ इनका प्रेम केवल नारी के स्त्री शरीर-सौन्दर्य तक ही सीमित न रहा। वह और-पर्यन्त ऊंचा उठा और समस्त

१. रीतिकालीन कवियों की प्रेमाभिव्यंजना, २२७

२. घनानंद और स्वच्छंद काव्य धारा, पृ० २६३

३. रसज्ञानि ग्रंथावली, प्रस्तावना, पृ० १४

विश्व का प्रेम इस ईश्वरपरमेश्वरी प्रेम में समाप्त होता । यह दृष्टि की व्यापकता थी । सुषुप्ता के कारण प्रेम के शरीर-संसर्ग की ही रमणीयता से लोग नहीं देखते थे । मानस-संसर्ग की रमणीयता उन्हें अधिक रुचिकर थी । मानस-संसर्ग की रमणीयता के कारण उनकी रचनाओं में बश्लील मुद्रारं, बश्लील चैष्टारं या रूप-तीन्द्र के सुले चित्रण नहीं मिलते ।^१ उनके काव्य में स्वच्छंद प्रेम के दर्शन होते हैं । इनकी दृष्टि प्रेम के लौकिक पक्ष पर न होकर अनुभूति पर अधिक थी ।

इन कवियों ने प्रेम के बीच पड़ने वाले समस्त व्यवधानों को त्याग दिया । विरह तथा मिलन दोनों प्रसंगों में इस धारा के कवियों की वृत्ति अन्तःस्थलों की दशानि में रही है । बाह्य कृत्रिमताओं को विचारना और उनका निरूपण करना उन्हें अच्छा नहीं लगा । प्रेम उनके अन्तःस्थल की पुकार थी । उसके प्रदर्शन में अस्वाभाविक चैष्टारं निरर्थक थीं । बोधा और ठाकुर ने तो अनेक बार कहा कि प्रेम को प्रकट करने से उपहास के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं । उनके काव्य में रीतिबद्ध कवियों की भांति नायक-नायिका की लुकाछिपी, विदग्धा की विदग्धालाप, अभिवारिका के भेद, उखी, दूती आदि का प्रेमिका बनना तथा बैठे चिह्न जैसे माल पर महावर, बाँसों में पान की पीक, अथरों पर अंजन आदि के चिह्न नहीं मिलते । संहिता नायिका का स्वच्छंद कवियों ने वर्णन किया है । रसखान, बालम, ठाकुर, घनानंद सबमें संहिता की उक्तियाँ मिलती हैं । किन्तु उन्होंने संहिता के चिह्नों की उद्धरणों पर ध्यान न देकर उसका हृदय दिखाने का प्रयत्न किया है । सुरतांत या विपरीत रति आदि की कुरुचिपूर्ण रकारं इन कवियों की रचना में कम मिलती हैं । इनको उनकी प्रारम्भिक रचना माना जा सकता है ।

प्रेम की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए रीतिमत्त कवियों ने प्रेम की विषमता की ओर ध्यान दिया । प्रेम की यह विषमता इन कवियों ने सूफियों से ग्रहण की । फारसी-साहित्य में भी प्रेम का वैषम्य स्वीकृत है । वहाँ प्रिय की योजना स्त्री स्वरूप में की जाती है । एक पक्ष तटस्थ रहता है

बीर दूसरा वनुरागयुक्त । संस्कृत काव्य में भी प्रेम का यह स्वरूप नहीं मिलता । रीतिबद्ध कवियों की भांति इनका प्रेम कामभावना से प्रेरित नहीं । प्रेम की एकांतिक उपासना इनके जीवन का साध्य एवं साधन है । ये अपने प्रिय की सहज भाव से आत्मसमर्पण कर देते हैं । कुल कपट की वहां स्थान नहीं मिला । इनके प्रेम का मार्ग कठिन है । उसका अनुगमन वही कर सकता है जो अपने हाथों अपना शीश उतारने के लिए तैयार रहे । बोधा ने इस मार्ग की भयंकरता का उल्लेख करते हुए लिखा है -

‘वति छीन मृगाल के तारहु ते तेहि ऊपर पांव दै बावनो है ।

सुई बेह ते द्वारस कीन तहां परतीति की टांडी लदावनो है ।

कवि बोधा कनी घनी नेजहुं ते चढ़ि तापै न चित् डरावनो है ।

यह प्रेम की पंथ कराल महा तलवार की धार पे धावनो है ।

तलवार की धार पर दौड़ने वाले सभी कवि इस मार्ग की दुरूहता और बीहड़ता से उपरिचित हैं लेकिन इसी का अनुधावन करने में उन्हें जीवन का परम लाभ होता है , यही उनके जीवन का उर्वस्व है ।^१

इन कवियों की विरह भावना भी रीतिबद्ध कवियों से विलक्षण है । संयोग में भी वियोग का डर बना रहता है । ‘प्रेम की पीर सूफ़ी कवियों का प्रतिपाद्य विषय है । अतः स्वच्छंद कवियों ने प्रेम की यह पीर फारसी काव्य धारा की वेदना की विवृति के साथ सूफ़ी कवियों से ही ली है , इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता ।^२ इन कवियों के काव्य-विरह के बाधक्य का कारण फारसी प्रभाव है । विरह-सम्बन्धी कविताओं में इनकी अनुभूतियां तीव्र हो जाती हैं तथा प्रतिभा चमक उठती है । ये विरह ज्वाला से पिघल कर शुद्ध हो गये हैं । इन्होंने प्रिय के विरह में तड़पते हुए हृदय की व्याकुलता, अनुधारा, वेदना भरी उपाश्रम , करुणा पूर्ण, दर्द भरी क्षीम का अत्यन्त आकर्षक चित्रण किया है ।

१. रीतिकालीन कवियों की प्रेमाभिव्यंजना, पृ० २३०

२. रसज्ञानि ग्रंथावली, प्रस्तावना, पृ० १८

स्वच्छन्द कवियों ने लोक-जीवन के मंगलमौद-पक्ष का ग्रहण किया । प्रसिद्ध पर्व-त्यौहारों-होली, दिवाली, बसंत आदि का रीतिमुक्त शैली में स्वाभाविक ढंग से निरूपण किया है ।

काव्यशैली की दृष्टि से भी ये कविभक्तों से अलग हो जाते हैं । कृष्ण भक्त कवियों की अधिकांश रचनाएं गेय शैली में मिलती हैं । स्वच्छंदता की बहुत कम रचनाएं पदों में मिलती हैं । उनकी प्रकृति कवित्त तत्वों में अधिक रमी है । बीच-बीच में दोहे तोरठे और छप्पय भी बागये हैं ।

रीतिमुक्त कवियों की कलापद्धा का वाग्रह नहीं था । काव्य उनके पसीने का फल नहीं था । हृदय रक्त से सिंचा पीथा था । यही स्वच्छंद धारा का प्रमुख गुण होता था । रीतिमुक्त कवियों ने रीतिबद्ध कवियों की भांति अलंकारों की कढ़ी नहीं लगाई । न ही अलंकारों के मोह में पड़ कर उन्होंने भाव-पक्ष को दबाया है । न ही नायिका भेद की लम्बी सूची का दर्शन कराया है । उनकी कविता में स्वाभाविकता अपनी पूर्ण आभा के साथ विद्यमान है ।

इन कवियों की भाषा दुरुह नहीं है । भाषा का परिमार्जन तथा व्यवस्थापन भी इन्होंने किया । ठाकुर ने लोकीक्तियों के प्रयोग द्वारा , रसखान ने मुहावरों द्वारा और घनानंद ने लक्षणा, मुहावरे व्याकरण-शुद्धि द्वारा भाषा के स्वरूप को संवारा ।

सूरदास या अन्य भक्त कवियों की भांति पद के अन्त में 'सूर के प्रभु', सूर के स्वामी, परमानंद के प्रभु, श्रोत के स्वामी आदि पदावली का प्रयोग इन कवियों ने नहीं किया । इन कवियों के भक्त होने में उन्देह है । पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दों में इनकी रचनाएं भक्तिपरक हो गई हैं । इन कवियों का लक्ष्य श्रीकृष्ण ही हैं वो भी नहीं है । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छन्द रखते थे उसी प्रकार भक्तों की साम्प्रदायिक नीति से भी । अतः ये भक्ति मार्गी कृष्ण भक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कवियों सबसे पृथक् स्वच्छन्द-

मार्गी प्रेमोन्मत्त गायक थे । कौई इन्हें उनकी भक्ति विषयक रचना के कारण भक्त कहना चाहें तो कहें पर इतनी व्यतिरेक के साथ कहें कि ये स्वच्छन्द प्रेममार्गी भक्त थे, तो कौई बाधा नहीं है । स्वच्छन्दता उनका नित्य उत्थाण है ।*

रसखान और स्वच्छन्द काव्य धारा

रसखान स्वच्छन्द काव्य धारा के प्रथम कवि कहे जा सकते हैं। ये भक्ति-काल एवं रीतिकाल के संघिस्थल पर खड़े हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी कहा है कि 'ये प्रेमोपमंग के गायक थे। अतः हिन्दी की स्वच्छन्द काव्य धारा के सबसे प्राचीन कवि 'रसखानि' ही ठहरते हैं।'^१

रसखान^२ फारसी काव्य तथा सूफी कवियों का बहुत प्रभाव पड़ा है। परम्परा से आती हुई भक्ति का स्वरूप उनके काव्य में बदल गया।^३ वहाँ के सूफियों से प्रभावित हुए बिना न रह सकें। स्त्री से उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि 'रसखानि में विदेशीयन की कुछ फलक अवश्य दिखाई देती है।'^४

रसखान - काव्य में लौकिक प्रेम के दर्शन होते हैं। उनका यह प्रेम 'इश्क मजाज़ी' कहा जा सकता है। वहाँ बाह्य कृत्रिमताओं के दर्शन नहीं होते, उनके प्रेम में उनके अन्तस्थल की पुकार है। कवि ने प्रेम की पूर्णता के लिए मानसिक तथा शारीरिक एकता की दोनों को जरूरी माना है। शरीर की समस्त इन्द्रियां प्रिय की अनुगामिता करती हैं - अर्थात् आँखें प्रिय को ही देखें, कान प्रिय को ही सुनें, त्वचा प्रिय का ही स्पर्श करें आदि तब प्रेम पूर्ण होता है।^५ शारीरिक अमेद में उन्हें वासना की दुर्गन्ध नहीं आती। आत्मसमर्पण की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। वे दो अन्तःकरणों के एक होने को प्रेम नहीं मानते। उनके अनुसार शरीर को भी प्रिय में लीन कर देना चाहिए।^६ उन्होंने प्रेम को कमलतन्तु से क्षीण और तलवार की धार^७ से कठिन बताया। प्रेम में लौक मर्यादा, लज्जा, विधि-

१. रसखानि ग्रंथावली, भूमिका, पृ० २२

२. देखिये - अष्ट अध्याय में सख्युक्त और रसखान की दर्शन

३. रसखानि ग्रंथावली, प्रस्तावना, पृ० २४

४. पृ० २०, ४

५. पृ० वा०, ३४

६. पृ० वा०, ६

नियम^१ सबको त्याग कर (उनके अनुसार) प्रेम हो सकता है। ये अपने प्रिय में लीन हो जाना चाहते हैं। सर्वात्मना समर्पण उनकी इच्छा है। रूफिनों की शब्दावली में प्रिय में जब (लीन) होकर उसी के लिए फूना (समाप्त) होना चाहते हैं। इस प्रकार के भाव हमें अन्य कवियों में कम मिलते हैं।

स्वच्छन्द काव्य-धारा में विरह की बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है किन्तु रसखान के काव्य में विरह का स्वरूप इस धारा के अन्य कवियों की भांति नहीं मिलता। कहीं-कहीं विरह-भावना का कलता वर्णन उन्होंने अवश्य किया है।

विरह-भावना के निरूपण के अभाव में का कारण इनका अपने प्रिय में लीन हो जाना है।

अन्य स्वच्छन्द कवियों की भांति रसखान के काव्य में ब्रज के लोक-जीवन के दृशन होते हैं। वहाँ दीवाली, हौली, बसन्त के रमणीय चित्र मिलते हैं। उनके कृष्ण पिचकारी चलाते, नैह से भिजाते नज़र आते हैं।^२ वे गुलाल मलते और फाग खेलते दिखाई पड़ते हैं।^३

रसखान के समय में भक्त-कवियों में गीत-रचना की प्रणाली थी। रसखान ने उसे नहीं अपनाया साथ ही प्रबन्ध काव्य की ओर भी रुचि नहीं दिखाई। रसखान ने अपने भावों को पदों में व्यक्त न करके कवित्त-सवैये का सहारा लिया। उनके छन्दोविधान में स्वाभाविकता फलकती है, बाह्य सज्जा नहीं। स्वच्छन्द मार्गी होने के नाते तथा भावबहुल अन्तर्मुख होने के नाते रसखान मुक्तक पद्यों की ओर अधिक आकर्षित हुए।

अभिव्यक्ति के पक्ष में स्वच्छन्द कवियों की प्रवृत्ति भाव-प्रवण भाषा की होती है। वे भाषा को अलंकारों के बोझ से दबाना नहीं चाहते। भावाभिव्यक्ति उनका मुख्य ध्येय रहता है। रसखान में यह प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। उन्होंने सरल भाषा में मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। अलंकारों के

१. पृ० वा०, ७

२. पु० १०, १६४

३. पु० १०, १६७, १६८

मोह में पड़ कर काव्य के स्वरूप को दुरुह नहीं बनाया । भाषा की सरसता के ही कारण रसखान के कविज जैयों का नाम ही रसखानि (रस की खान) पड़ गया ।

स्वच्छन्द मार्ग में भावों की वैयक्तिकता को विशेष महत्व दिया जाता है । कवि स्वयं (उत्तम पुरुष द्वारा) अपने भावों को मार्मिक ढंग से व्यक्त करता है । उनमें शास्त्रीय मर्यादा से बाधा नहीं पड़ने देता । अभिव्यक्ति सीधी होती है । रसखान में ऐसे अनेक पद्य मिलते हैं जिनमें उन्होंने अपना प्रेमाभिलाष स्वयं व्यक्त किया है ।^१ रसखान ने जो अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति का परिचय दिया है , उसे अधिकतर व्यक्तिगत उद्गारों द्वारा ही प्रकट करने की चेष्टा की है ।^२ इनके काव्य में अधिकांश पद्य ऐसे हैं जिनमें कवि में गोपियों की कृष्ण के प्रति अभिलाषा , प्रेमकलह, माधुरी मोहन आदि का वर्णन किया है । इन पद्यों में रसखान ने अपने हृदय के भावों के दर्शन कराये हैं ।

रसखान ने भक्तिकालीन भक्त कवियों की भांति देव्य या दास्य भाव की उपासना नहीं की । इससे उन्हें शुद्ध भक्त कवने में हिक्क होती है । सुरदास या अन्य भक्त कवियों की भांति 'सूर के प्रभु', शीत के स्वामी आदि पदावली का प्रयोग उन्होंने नहीं किया । पं० विश्वनाथ प्रसाद ने स्वच्छन्द कवियों की रचना को तीन खंडों में बांटा है - प्रथम खंड में उनकी रुचि रीतिबद्ध रचना की ओर दिखाई देती है , जिसमें उनकी ऐसी रचनाएं आती हैं जिनमें उन्होंने काव्यक्षेत्र में अपनी वाणी की जांच की है । दूसरे खंड में उन्होंने रीतिबद्ध रचना का त्याग कर दिया है और स्वच्छन्द रूप से प्रेम के पवित्र क्षेत्र में पदार्पण किया है । तीसरे खंड में उनकी रचनाएं भक्तिपरक हो गई हैं । इन कवियों का लक्ष्य श्रीकृष्ण ही हैं , जो भी नहीं है । सबसे अधिक विरोध रसखानि के सम्बन्ध में संभावित है । - - तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छंद रखते थे उसी प्रकार भक्तों की साम्प्रदायिक नीति से भी^३ । इस प्रकार रसखान पूर्णतया स्वच्छन्द हैं ।

१. सु० १०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७ आदि - - -

२. हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह, पृ० ६६

३. रसखानि (ग्रंथावली) प्रस्तावना, पृ० २१

रसज्ञान का हिन्दी साहित्य में स्थान

किसी कवि की कीर्ति उसकी रचनाओं की मात्रा पर न जाग्रित होकर उन रचनाओं के काव्य-सौन्दर्य पर जाग्रित होती है। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में चन्द्रधर शर्मा गुठरी 'उसने कहा था' कहानी लिख कर बमर हो गये हैं, उसी प्रकार रसज्ञान 'सुजान रसज्ञान' तथा 'प्रेमवाटिका' की रचना कर बमर स्थान के अधिकारी हुए। प्रतिभा और व्युत्पत्ति (शास्त्र ज्ञान) साहित्यकार के दो धरातल हैं, जहाँ से साहित्यकार का निर्माण होता है। कहने की आवश्यकता नहीं, रसज्ञान में दोनों धरातल पुष्ट हैं। उनकी प्रतिभा भावुक तथा कवि दोनों ही रूपों में निक्षेपी है।

रसज्ञान भावुक कवि हैं। उनका भाव-पक्ष सबल है। मुख्यतः शृंगार रस के निरूपण में उनकी प्रवृत्ति रही है। शृंगार-निरूपण में कहीं भी भावाभाव तथा रसाभाव के दर्शन नहीं होते। एक के बाद दूसरा भाव धारावाहिक रूप में अभिव्यक्त होता है। उनके काव्य में वन्तर्वृत्ति का निरूपण भी किसी कवि से कम प्रतीत नहीं होता। गोपियों की दशा का चित्रण किसी भी तरह भक्त-शिरौमणि सुरदास से कम नहीं। यद्यपि रसज्ञान ने वात्सल्य सम्बन्धी केवल दो पदों की रचना की, किन्तु मर्मस्पर्शिता के कारण उन्हें सुर के अनेक पदों की तुलना में रखा जा सकता है। रसज्ञान का भावपक्ष किसी भी रूप में सुरदास से हीन प्रतीत नहीं होता।

कला-पक्ष की दृष्टि से भी रसज्ञान महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। साधारणतया कृष्णकाव्य का गान करने वाले कवियों का कलापक्ष पुष्ट है और रसज्ञान में यह विशेषता अपने रमणीय रूप में प्रतिफलित हुई है। उन्होंने मुक्तक शैली को अपना कर कविचतुर्वेदों में रचना की। पिङ्गलशास्त्र की दृष्टि उनमें दोषों के दर्शन नहीं होते। विहंगम दृष्टि से देखने पर रसज्ञान का काव्य अलंकारों की बाढ़ार से दबा हुआ प्रतीत नहीं होता। वास्तविकता यह है कि उन्होंने अलंकारों को सप्रयास संजोने का प्रयत्न नहीं किया। उनके काव्य में स्वाभाविक रूप से अनेक अलंकारों की निबन्धना हुई है। इस प्रकार अलंकार - निरूपण पूर्णतया

स्वाभाविक चित्रण है जो उनके ब्रज-संस्कृति के प्रति आकर्षण की अभिव्यक्ति करता है ।

रसखान की बहुतज्ञता के दर्शन उनकी पौराणिक कथाओं के ज्ञान में भी होते हैं । मुसलमान होते हुए भी वे गन्धर्व, गणिका, गज , गीघ, वजामिल , बहिल्या, प्रह्लाद और द्रौपदी आदि से परिचित थे । सुरेश, दिनेश, गणेश , प्रजेश, धनेश, महेश, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, नारद, व्यास, शुक्रदेव, भवानी, रमा और इन्द्र^१ आदि देवी-देवताओं की चर्चा भी रसखान ने की है । इस प्रकार यह भली भाँति विदित होता है कि रसखान को हिन्दू धर्म और वेद-पुराणों का भी पूर्ण ज्ञान था ।

रसखान ने तत्कालीन मनोरंजन के साधन, बाँगान, चौपड़^२ की भी चर्चा की है , जिससे प्रतीत होता है कि रसखान तत्कालीन समाज से भी सम्पर्क रखते थे । हिन्दी साहित्य में रसखान की अविलम्बणीय मौलिक देन उनका 'प्रेमदर्शन' है । 'प्रेमवाटिका' जैसी छोटी पुस्तक में उन्होंने सूपनी प्रेम को भारतीय चोले से सुसज्जित किया है । यहाँ प्रेम के वास्तविक स्वरूप की समझाने की कोशिश की है। उन्होंने प्रेम को वानन्द का प्रोत माना है । बिना प्रेम के वानन्द की अनुभूति नहीं होती । वानन्द के दोनों द्वार विषयानन्द और आत्मानन्द प्रेम के लौकिक तथा दिव्य रूप माने हैं । रसखान से पहले हिन्दी-साहित्य में इस प्रकार के प्रेम के दर्शन नहीं होते । रसखान के बाद के कवि घनानन्द, बालमुनीषा और देव आदि ने रसखान के इस मार्ग पर चलने का प्रयास किया है ।

रसखान की सबसे बड़ी विशेषता सूपनी भक्त और कृष्ण भक्ति को एकरूपता प्रदान करने में है । भक्ति काव्य की दृष्टि से देखिये तो रसखान का काव्य कृष्ण का लीलागान मात्र प्रतीत होता है , और रसखान कृष्ण के अनन्य उपासक प्रतीत होते हैं । सूपनी भक्त की दृष्टि से देखने पर रसखान का काव्य तत्सूपन के

१. देखिये - सु० १०, १२, १८, ५, १३ आदि ।

२. सु० १०, १०८

३. प्रेमवाटिका, ११

सिद्धान्तों से सुसज्जित दिखाई देता है। उस समय कृष्ण की चर्चा केवल महबूब (इष्ट) के रूप में जाती है और 'प्रेमवाटिका'-सम्बन्धी दोहे 'इश्क हकीकी' (वास्तविक प्रेम) तक पहुँचने का मार्ग प्रतीत होते हैं। क्या यह विशेषता हिन्दी-साहित्य में किसी अन्य कवि में मिलती है कि एक ओर उसे पुष्टिमार्गी वैष्णव कहा जाय और वह दूसरी ओर सूफी सिद्धान्तों का निरूपण करने वाला हो ? इस तादात्म्य के दर्शन हिन्दी-साहित्य के अन्य कवियों में दुर्लभ है। इस दृष्टि से साहित्य में रसखान का एक विशेष स्थान है।

रसखान की एक ध्यान देने योग्य विशेषता स्वच्छन्द काव्यधारा को जन्म देना है। भक्ति काल में उत्पन्न होकर उससे प्रेरणा लेकर एक नई काव्यधारा को जन्म देना साधारण प्रतिभा की देन नहीं हो सकती। रसखान ने भक्तों के विषय (श्रीकृष्ण) को अपनाया, किन्तु भक्तों की काव्य-शैली गीति-पद्धति को त्याग कर कवित्त-सर्वियों में रचना की जिससे बाद के कवियों ने भी प्रेरणा ली। रसखान की अनुपेक्षणीय विशेषता यह है कि वे स्वच्छन्द काव्यधारा को जन्म देकर भी स्वच्छन्द हैं। उनमें स्वच्छन्द कवियों की सी ऊहात्मकता नहीं। उन्होंने किसी पथ का अनुसरण नहीं किया। उनका अपना मार्ग है जिस पर वे अबाध गति से चले हैं। उन्हें किसी की परवाह नहीं।

वस्तुतः हिन्दी साहित्य में अनेक रत्न हैं जिनमें रसखान का अपना स्थान है। उन्होंने बाद के कवियों का पथ प्रदर्शन कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है जो उन्हें हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान का अधिकारी सिद्ध करता है। हिन्दी साहित्य में सूर, तुलसी, बिहारी आदि अनेक महाकवि हैं। उनके अपने विशिष्ट गुण हैं। उनका अपना विशिष्ट स्थान है। परन्तु अपनी उपर्युक्त विशेषताओं के कारण रसखान रसखान ही हैं।

अनुबंध १

परिशिष्ट

रसखान के अप्रकाशित पद्य

१. कंस कुढ़याँ बुनि बानी वकास की ज्यावन हारहि मारन धायी ।
मादव साँवरी बाठई को 'रसखान' महाप्रभु देवकी जायी ॥
रैन वधेरी में लै वसुदेव महावन मे बरलै धरि बायी ।
काहु न ची जुग जागत पायी लो राति ज्ञानीमति जीवत पायी ॥
२. उंमु धरै ध्यान जाको जपत जहान सब ।
तार्ते न महान बौर दुतर अवरेखी में ॥
कहे 'रसखान' वही बालक वरूप धरै ।
जाको कहु रूप रंग अद्भुत अब लेखी में ॥
कहा कहूँ वाली कहु कहती बनै न दसा ।
नन्द जी के अंगना में कौतुक एक देखी में ।
जगत की ठाठी महा पुरुष जी विराटी है, नि
रंजक निराटी ताहि माटी खात देखी में ॥
३. एक तु तीरथ डोलत हैं एक बार हजार पुराण बके हैं ।
एक लगे जप में तप में एक सिद्ध समाधिनि में बटके हैं ।
बैत जु देखत हो रसखान सुमुख महासिगरे बटके हैं ।
साँचहिं वै जिनि आपु पी यह त्याग गुपाल पै बारि बहे हैं ॥
४. है कल की अप्रतीत की मूरति मोद बढ़ावै विनाद कलाय में
हाथ न रैहै कहु 'रसखान' तू क्यों बहके विष पीवत नाम में
है कुच कंचन के कलवा पै वाम को गाँठ पे ठीक की चाम में
बैनी नहीं मृगनैनिन की पै नखनी लगी यमराज के घाम में

५. लाल की बाज कूटी ब्रज लोग अनंदित नंद बढ़यौं अन्धवावत ।
चाहन चारु बधाइन ठै चहुं ओर कुटुंब अघात न गावत ।
नाक्त बाल बडे 'रसखान' हके हित काहु के लाज न बावत ।
तैसीइ मात पिताउ लह्यौ उलह्यौ कुल की कुलही पहिरावत ।
६. ता जुदा कह्यौ धेनु की बोट ढिठौरत ताहि फिरै हरि भूले ।
दुंऊन कुं पग चारि चैं मकलै रज मांहि विधूरि टुकलै ॥
हेरि ह्यो 'रसखान' तबै उर भाल तै टारि के वार लटलै ।
तो ह्वि देखि अनंदन नंद जू अंगनि अंग समात न फूलै ॥
हेरि ह्यो रसखान तबै उर भाल तै टारि के वार लटलै ।
तो ह्वि देखि अनंदन नंद जू अंगनि अंग समात न फूलै ॥
७. मोर किरौट नवीन लौ मकाकृत कुंठत लौल की डोरनि
ज्यों 'रसखान' घने घन में दमकै बिंबि दामिनि चाप केहोरनि ।
मारि है जीव तो जीव बलाय विलौकि बलाय लौं नैन की कौरनि
कौन सुभाय तो बावत त्याग बजावत धेनु नचावत मौरनि ।
८. कौट लटे की लटी लकुटी दुपटी चुफटी लौउ बाधे क धाही
भावते भेष तबै रसखान न जानिये क्यौ बांसिया ललचाही
जोरत नैन मरौरत मांहि निहारत तेन अमेठत बांही
तू कहु जानति या ह्वि को यह कौन है सांवरिया बन माहीं
९. बुधि होत बिदा नर नारिन की दुति दीठ परै वलियां पर की
रसखान विलोकत गुंज कटानि तजै कुल कानि दुहुं घर की
बहराति हियौ फहरात तवां चितैव फहरानि पित्तवर की
यह कौन सरौ इतरात गई बलि की वलियां हलियां वर की

१०. मोर पत्ता धरे चाखि चारु विराजत कौटि अमेटनि फँटो ।
गुंज करे 'रखान' विखाल अनंग लजावत अंग करंटो ॥
ऊंचे अटा बढ़ि रह्यो उंचारे हियौ हुलसाय के ह्यौस लपेटो ।
हौं कब के लखि हौं भरि बांखिन आवत गोधन धूर धुरंटो ॥
११. धीरज क्यों न धरौं उजनी पिय तो तुम सौं अनुरागेइयाँ ।
जब जोग संजोग को जान बनै तब जोग विजोग को भागेइयाँ ॥
निश्चय निरधर धरो जिय में रखान सबै राय पावेइयाँ ।
जिनके मन तो मन लागि रहै तिनके मन सौं तन लागेइयाँ ॥
१२. चंदन सौर पे बिन्दु लगाय के कुंज ते निकस्यो मुखकातो ।
राजत है बन माल गरे अरु मोर पत्ता सिर पे पहरातो ॥
मैं जब ते रखान बिलोक्त हो कहु और न मोहि बुहातो ।
प्रीति की रीति में लाज कहा खसि है सब तो बड़ नैह की नातो ॥
१३. श्री वृषभान की दान धुजा अटकी लरकानि ते जान लई री ।
वा रखान के पानि की जानि बुझावति राधिका प्रेम भई ॥
जीवन मूरि सी नैज लिये इन ह्वं चितयौ उन हूं चितई री ।
लाल लाल दृग जोरत हो सुर फाकि मुझी उर फाय दई री ॥
१४. तीरथ भीर में भूलि परी अली छूट गई मैकु घाय की बांही ।
हो भटकी भटकी निकसी तु कुदंब जगमति की जिहि घांही ॥
देखत हो रखान मनी तु लग्यो हो रह्यो कब को हियराही ।
भांति अनेकन भूली हुती उहि घाँस की मूलनि भूलत नांही ॥

१५. जमुना तट बीर गई जबतैं तबतैं जग के मन मांभ तहाँ ।
 ब्रज मोहन गोहन लागि भट्ट हों लट्ट भई लूट सी लाल लहाँ ॥
 रसखान लला ललचाय रहे गति आपनी हों कहि कायों कहों ।
 जिय वावत यों अब तो सब भांति निरंक है वंक लगाय रहों ॥

१६. प्यारी पै जाह किती परि पाह पची समझाई सखी सौ बेना ।
 वारक नंद किशोर की वोर क्यूँ दृग बोर की बोर करैना ॥
 है निकस्यो रसखान कहूँ उत डीठ परयो पियरी उपरैना ।
 जीव सौ पाय गई पक्काय कियो रुचि नैह गये लचि नैना ॥

१७. वस्तियां मनुहारि के हारि रही मृकुटी को न बोर लली नच्यो ।
 चहुधां धन धोर नयो ब्रज उनयो नम नायक बोर चितै चितयो ॥
 बिकि आप गई पिय मौल लियो रसखानहि तू नहि माँ रिफ्यो ।
 सगरी दुख तीक्ष्ण कोरि कटाक्ष काटि के सौतिन बांति दियो ॥

१८. कान परे मुहु बैन मरु करि मान रही फल अधिक साथे ।
 नंद बबा घर कोँ अकुलाय गई दधि है बिरहानल दाधे ॥
 पाय दुहुनति प्राननि प्रात सौ लाज दबै चित्तै दृग बाधे ।
 नैननि ही रसखान समैह सही कियो लै दही कहि राधे ॥

१९. मैं रसखान की सैलनि जीति के माछती माल उतार लई री ।
 मेरी ये जानि के सुधि सबै चुप ह्वै रही काहु करी न लई री ॥
 भावतै स्वेद की बास सखी ननदी पहिचानि प्रचंड भई री ।
 मैं लखिबो लखि के वस्तियां मुसकाय लचाय नचाय दई री ॥

२०. वृषभान के गैह दिवारी के घौस बहीर बहीरिनि भीर भई ।
 जितही तितही धुनि गोधन की सब ही ब्रज ह्वै रह्यो राग भई ॥

रसखान तबै हरि रायिका यों कहु तेननि ही रस बैरि बेल बई ।
उहि अंजन बांस्तिनि बांज्यौ भट् उन कुंजुम बाइ लिलार दई ॥

२१. बागन में मुरली रसखान सुनी सुनि के जिय रीफि पचैगौ ।
धीर समीर कौ नीर भरौ नहिं पाइ फकै औ बधा सकुचैगौ ॥
वाली दुरैधे की चौटनि नैम कहाँ अब कौन उपाय बचैगौ ।
जायबाँ भाँति कहाँ घर सों परसों वह रास परीस रचैगौ ॥

२२. काहु नयौ इकती बर जेउर दीठ जसोमति राज करचौरी ।
या ब्रज मंडल में रसखान न कहु तब ते रस रास परचौरी ॥
देखिये जीवन कौ फल बाजु ही लाजहि काल सिंगार हो बौरी ।
कैसे दिनानि पै जानति हौं अंतियान के भागनि त्याग नच्यौरी ॥

२३. कीजै कहा जु पै लोग जबाब सदा करिबाँ करि हैं बज मारी ।
सीत न रीकत राखत कागु पुगावत ताहिरी गाँव हारी ॥
बावरी सीरी करै अस्तियाँ रसखान धन धन भाग ह्यारी ।
बावत है फिरि बाज बन्यौ वह राति के रास कौ नायक हारी ॥

२४. बाजु बरसाने बरसाने सब आनंद सौ
लाडिली बरस गाँठि बाई बिबि झार है ।
कौतुक अपार घर घर रंग बिखतार
रक्त निहारि पुष्पबुध बिखराई है ॥
वाये ब्रज राज ब्रजरानी दधि दानी संग
बति ही उमगे रूप रासि छूटि पाई है ॥
मुनी ज्ञ गान धन दान अनमान बाजे
पौरनि निधान 'रसखान' मन भाई है ॥

२५. कैथी रसखान रस कौच दुग प्यास जानि,
जानि के पियूष पूष कीनो विधि चंद घर ।
कैथीं मनि मानिक बैठारिबै को कंचन में,
जरिया जौवन जित गढ़िया चुघर घर ॥
कैथीं कान कामना के राजत वधर चिन्ह,
कैथीं यह भारि ज्ञान बौद्ध गुमान हर ।
सरी मेरी प्यारी दुति कौटि रति रंभा की,
करि डारिं तेरी चित चौरनि चिबुक पर ॥
२६. श्रीमुख यीं न बखान सकै बृषभान सुता जू को रूप उजारो ।
है रसखान तू ज्ञान संभार तरेनि निहार जु रीफन हारो ॥
चारु सिंदूर को लाल रवाल लखै ब्रज बाल को भाल टिकारो ।
गोद में मानो बिराजत घनस्याम के सारे की सारे की सारो ॥
२७. प्यारी के चारु सिंगार तरंगनि जाय लगी रति की दुति कूलनि ।
जौवन जेव कहा कहिये उर पै हवि मंजु अनैक दुकूलनि ॥
कंचुकी सैत में आवक बिन्दु बिलोकि भरे महावानि की सुलनि ।
पूजे है बाजु मनी रसखान तु भूत के भूप बंधक के फूलनि ।
२८. वारति जा पर ज्यौं न धके चहुं और जित्ती नृपति करती है ।
मान सकै धरती तौ कहां जित्ति रूप लखै रति की न रती है ॥
जा रसखान न बिलोक्त काज उदाई उदा हरती बरती है ।
तौ लगि ता मन मोहन की अंखिया निधि पाव हहा करती है ॥
२९. तौ पहिराय गहं जरिया तिहिं को घर बावरी जाय मरीरी ।
व रसखान को ऐतौ अधीन कै मान करै चलि जाहि परै री ॥
बावन को पुतरीनि हहा करै नैननि धार अखंड ढरीरी ।
हाथ निहारि निहारि ला मनिहारिन की मनुहारि करै री ॥

३०. काहे कू जात जगोमति के गृह पौच भली घर हूं तो रहैं ही ।
मानुष को हसिबी अपुनी हंसिबी यह बात उहां न नई ही ॥
बैरिनि तो दृग कौरनि में रसखान जो बात भई न भई ही ।
माखन सो मन ले वह क्यों वह माखन जोर के जोर गई ही ॥
३१. मोहित तो है रसखान क्याकर जानहि जान बजानहि ।
सौउ बजाव चल्या चहुधां चलि री चलिरी स्त तोहि निदानहि ॥
जो बहिये लहिई मरिबाहि हिये बहिई हित काज कहा नहिं ।
जान दे जात रिखान दे नन्दहिं पानि दे मोहि तू कान देता नहि ॥
३२. फूलत फूल सबे बन बागन बोलत मोर बसंत के वावत ।
कोयल की किलकार सुनै सब कंत बिदेसन ते सब घावत ।
ऐसे कठोर महा रसखान जू नैकहु मोरी ये पीर न पावत ।
कूक सी सालत है हिय में जब बैरिन कोयल कूक पुनावत ॥
३३. बाये कहा करि के कहिये बृषमान लली सों लला दृग जोरत ।
ता दिन ते खुवान की धार रुकी नहिं जयपि लीग निहोरत ॥
बैगि चली रसखान न बलाई ली क्यों अभिमान माहि मरोरत
प्यारे पुरंदर होय न प्यारी वावै फल अधिक में ब्रज वोरत ॥
३४. गोकुल के बिहारे को सखी दुखी प्रान ते नैकु गयी नही काढयी ।
सो फिर कोस हज़ार ते वाय के रूप दिखाय दधे पर दाधयी ॥
सो फिर द्वारिका जोर को रसखान है सोच यह जिय गाढ़ी ।
कौन उपाय किये कटि है ब्रज में विरहा कुरुखेत को बाढ़यी ॥
३५. अंजन मंजन त्यागी कली अंग धारि भूत करी अनुरागी ।
बापुन भाग मरयी सज्जी सन बाबरे उषी जू को कहा लागी ॥

चाहे सौ जीर सब करिये जु कहै रसखान सयानम वागे ।
जो मन मोहन ऐसी बली तो सबैरी कही मुख गौरस जागे ॥

स्फुट पद

३६. तू ऐसी चतुराई ठानै , काहे को निकसत या गैल ,
गैल कहा तैरे बाबा की हम निकसी का पक्षि पक्षि ॥
यह पैठो सब दिन बलिबै को , काहे को तू रोकत हैल ।
रसखान की प्रभु सुधी बलि जा देहुं उरखनी नंद गहल ॥
३७. गारी सायगी बरे गंवार ?
ऐसी कौन सिखाई तोहि , पकरत वाय पराई नार ?
जा ना गौरस भै पिय्या , कौन है तू मग रोकन हार ।
एती बार जारी ना कीजै, मोहन सीस दई सत बार ॥
सीजि मटुकिया फटकि तु पट की, गौरस बहि बहि बल्यो पनार ।
रसखान के प्रभु वाज जान दै, कल बांऊ वी यहै करार ॥
३८. बाही दिन वारी बामक बनि बायी उखि फिर वाज ।
गावत तैरी रीझि भावती, संग लिय पुषर समाज ॥
साधु ननंद की कानि करौ जनि उठ किन छेला फाग ।
बंलियां उखियां सुफल करौ किन, झ नैनन के भाग ॥
३९. कान परी जब तान मोहिनी, तबहुं तजि कुल कानि ।
छतरा हंसि बृषभान नंदिनी उतरन छै रसखानि ॥

धमार

४०. मैं कैसे निकसों मोहन छै फाग ।
मेरे संग की सब गई, मोहि प्रगट्यो अनुराग ।

एक रैन तुमनी भयो नंद नंदन भित्त्यो भाई ।
 मैं तबुक घुंघट करयो (उन) मुज मैटी लपटाई ॥

४९. वपुनो रत मोको दयो , मेरो लीनो घुंछि ।
 बैरनि पल्ले झुलि गई (मेरी) गई बास सब दूटि ।
 फिरि मैं बहु तेरी करी , नैकु न लागी बांछि ।
 पल भुंदि परिचो लियो (मैं) जाप एक ली राखि ॥
 मेरे ता दिन ह्वै गयो, होरी डांढी रोपि ।
 बास मनद देखन गई मोहि घर बासी रोपि ॥
 बास उसासन बासई , मनद खरी बनखाय ।
 देवर छा परिचो गने मेरो बोलत नाह रिवाय ॥
 तिल्ले चढ़ि टाढी रहूं लैन कू कन हेर ।
 राति पीत ही ते रहे, बा मुरली की टेर ॥
 क्यों करि मन धीरज धरूं, उल्ल वतिहि कुलाय ।
 कल्लिहनि हियो फाटै नही , तिल भर दुख न समाय ॥
 ऐसी मन मैं बावई, बाडि लाज कुल कानि ।
 जाय मिली कुज ह्वै ली , रति नायक रसखानि ॥

ग्रन्थ-सूची

हिन्दी पुस्तकें

१. कलंकार प्रदीप पहला संस्करण
संसारचन्द , प्र० भारत भारती लि०, दरयागंज, दिल्ली ।
२. वष्ट हाम बीर बल्लभ सम्प्रदाय, प्रथम संस्करण, सं० २००४ ,
दीनदयाल गुप्त, प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
३. वाधुनिक हिन्दी-काव्य में बन्द योजना, प्रथम संस्करण, ,
डै० डा० पुच्छाल शुक्ल, प्र० लखनऊ विश्वविद्यालय ।
४. उत्तरार्द्ध मरुमाल,
डै० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, छावितास प्रेस, बांकीपुर ।
५. काव्य कल्पद्रुम (प्रथम भाग) रत्नमंजरी, कृता संस्करण,
सेठ कन्हैयालाल पौदार, प्र० पं० जान्नाथ प्रसाद शर्मा, बुझीवालौ का मकान,
मधुरा ।
६. काव्य दर्पण, चतुर्थ संस्करण, १९६० ई० ,
पं० रामदत्त मिश्र, प्र० ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना ।
७. कबीर, द्वितीय संस्करण, वर्ष १९४७,
पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।
८. कवितावली, सं० २०००,
गीता प्रेस, गौरक्षपुर ।
९. कामायनी, नवम संस्करण, संवत् २०१३,
जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, झांझाबाद ।
१०. काव्य के रूप, चतुर्थ संस्करण १९५८,
गुलाबराय, बात्माराम रंढ संस, काश्मीरगैट, दिल्ली ।
११. सौज के विवरण,
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

१२. धनानंद वीर स्वच्छंद काव्यधारा, प्रथम संस्करण, सं० २०१५,
डा० मनीहरलाल गौड़, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
१३. धनानंद ग्रन्थावली, पहला संस्करण, सं० २००२,
सम्पादक विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रकाशक प्रसाद परिषद, काशी ।
१४. हंस प्रभाकर, दशम संस्करण, सं० १९६०,
श्री ज्ञान्नाथ प्रसाद मानु, ज्ञान्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, विलासपुर, (मध्यप्रदेश) ।
१५. तुलसी-दर्शन-मीमांसा, सं० २०१८ वि०,
डा० उदयमानुसिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय ।
१६. दरबारी संस्कृति वीर हिन्दी मुक्तक, पहला संस्करण, १९५८,
त्रिभुवनसिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।
१७. देव वीर उनकी कविता, तीसरा संस्करण, अप्रैल १९६०,
डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
१८. दोहावली, सं० २००६,
गीताप्रेस, गोरखपुर ।
१९. नवमकुमाल, १९४३,
राधाचरण गौस्वामी, ब्रजभूषण यन्त्रालय ।
२०. पद्माकर की काव्य-साधना, प्रथम संस्करण, जन्माष्टमी १९६१ वि० ,
श्री अखौरी गंगाप्रसाद सिंह, साहित्य-सेवा-सदन, काशी ।
२१. पद्मावत, पहला संस्करण, २०१२ ,
व्याख्याकार वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगांव फांसी ।
२२. पीदार अभिनन्दन ग्रन्थ, सं० २०१०,
प्रधान सम्पादक वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल,
मथुरा ।
२३. प्रकृति वीर काव्य (हिन्दी मध्य युग), द्वितीय संस्करण, १९६०,
डा० रघुवंश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ६६ दरयागंज, दिल्ली १९६० ।
२४. ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, पहला संस्करण, दिसंबर १९६१,
डा० सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली ।

२५. बिहारी रत्नाकर, नवीन संस्करण , १९६१,
जान्नाथदास रत्नाकर, ग्रन्थकार, शिवाला, बनारस ।
२६. मृगर गीत सार , कृता संस्करण, सं० १९६६,
संपादक रामचन्द्र शुक्ल, प्र० साहित्य सेवा सदन, बनारस ।
२७. भारतीय साधना और दूर साहित्य, द्वितीय संस्करण, सं० १९६६ वि०,
आचार्य शुक्ल साधना-सदन, कानपुर ।
२८. मध्यकालीन प्रेम साधना, पहला संस्करण १९५२ ई०,
परशुराम कुर्वेदी, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, लखनऊ ।
२९. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य,
संकलनकर्ता गंगाप्रसाद पांडेय एम० ए०, स्टूडेंट्स फ्रेंड्स, लखनऊ ।
३०. मतिराम ग्रंथावली, सन् १९५१,
संपादक श्री पं० कृष्णबिहारी मिश्र, प्रकाशक श्री दुलारीलाल बघ्यदा,
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ ।
३१. मित्र बंधु व विनीत, पहला संस्करण, सं० १९७०,
मित्र बंधु, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ ।
३२. मीरा की प्रेम-साधना, तीसरा संस्करण , जुलाई १९५७ ई०,
भुवनेश्वर मिश्र माधव, एम० ए, प्रकाशक श्री वज्रन्ता प्रेस(प्राइवेट) लिमिटेड,
पटना ।
३३. रत्नान और उनका काव्य, दूसरा संस्करण,
चन्द्रशेखर पांडे, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
३४. रत्नान का अमर काव्य, सन् १९५८ ,
दुर्गाशंकर मिश्र, पवन प्रिंटिंग प्रेस लखनऊ ।
३५. रत्नान कवितावली,
भार्गव पुस्तकालय, काशी ।
३६. रत्नान ग्रन्थावली, सं० २०१०,
विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाणी वित्तान भवन काशी ।
३७. रत्नान जीवन और कृतित्व, प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९६२,
देवैन्द्र प्रताप उपाध्याय, आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी ।

३८. रसखान दोहावली,
मार्गव पुस्तकालय, काशी ।
३९. रसखान रत्नावली, १९४१,
संपादक कवि किंकर, बालीक पुस्तकमाला, भारतवासी प्रेस, दारामंज,
छाहाबाद ।
४०. रसखान पदावली, संवत् १९८७,
प्रमुदच ब्रह्मचारी, हिन्दी प्रेस, प्रयाग ।
४१. रस विद्वान्त : स्वरूप-विश्लेषण, १९६०,
बानन्दप्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड प्राइवेट लि०, दिल्ली-६
४२. रहीम रत्नावली, तृतीय संस्करण,
संपादक मायाशंकर याज्ञिक, साहित्य सदन काशी ।
४३. राग रत्नाकर,
संश्लेषार्ता, भाला भक्तराम ।
४४. राधावल्लभ सम्प्रदाय विद्वान्त और साहित्य, प्रथम संस्करण २०२४,
डा० विजयेंद्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
४५. रामचरितमानस, १९४६ ई०,
सं० माताप्रसाद गुप्त डा०, साहित्य कुटीर
४६. रात-मंथाध्यायी, वगस्त १९६०,
डॉ० ले० मन्ददास, संपादक डा० प्रेमनारायण टंडन, प्रकाशक हिन्दी
साहित्य मंदार, लखनऊ ।
४७. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, प्रथमावृत्ति, सं० २०१५,
डा० बकसिंह, नागरी प्रचारिणसि समा वाराणसी ।
४८. रीतिकाव्य की भूमिका, द्वितीय संस्करण १९५३ ई०,
डा० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, नई दिल्ली ।
४९. रीति शृंगार, संपादक डा० नगेन्द्र ।
५०. साहित्य दर्पण, १९५७,
पं० विश्वनाथ, व्याख्याकार डॉ० उत्पलसिंह सिंह, चंसेबा प्रकाशन, वाराणसी ।

५०. वाङ्मय विमर्श, प्रथम संस्करण, सं० २०१४,
पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्माळ, वाराणसी ।
५१. वार्ता साहित्य एक वृहत अध्ययन, २४-१०-६०,
हरिहरनाथ टंडन, भारत प्रकाशन मंदिर, जलौगढ।
५२. विद्यापति की पदावली, द्वितीय संस्करण,
संस्कृतियिता श्री रामकृष्ण बैनीपुरी, पुस्तक मण्डार पटना और लहेरियासराय।
५३. विनयमन्त्रिका , सं० २००६ ,
गीताप्रेस, गोरखपुर ।
५४. साहित्य दर्पण, १९५७,
पं० विश्वनाथ, व्याख्याकार डा० उत्पलव्रतसिंह, बीकाना प्रकाशन, वाराणसी।
५५. सुजान हित, पहला संस्करण सं० २००२,
धनानंद, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद, काशी ।
५६. सूर सागर, तीसरा संस्करण २०१५,
प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
५७. शांडिल्य भक्ति-सूत्र,
सं० म० म० प० गोपीनाथ कविराज, जैकृष्णदास हरिदमनगुप्त काशी ।
५८. श्री भागवत-सुधा-सागर, प्रथम संस्करण २००८,
गीता प्रेस, गोरखपुर ।
५९. श्रीमद्भागवत महापुराणम् , १९५२,
टीकाकार पांडेय रामतैल शास्त्री, पंडित पुस्तकालय, काशी ।
६०. श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी टीका,
डै० बलभावाचार्य, भाषांतरकार रामनाथ शास्त्री, प्रका० विद्याविभाग,
श्रीनाथद्वार ।
६१. शिवसिंह सरोज, १९३४,
शिवसिंह सेंगर, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ।
६२. सूरमीमांसा, १९५२,
डा० वृजेश वर्मा, औरियंटल बुकडिपो, नई सड़क, दिल्ली ।

६३. हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, १९५६,
डा० बीमप्रकाश, भारतीय साहित्य मंदिर, फखारा, दिल्ली ।
६४. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, प्रथम संस्करण, २००६,
किरण कुमारी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
६५. हिन्दी शब्द सागर,
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
६६. हिन्दी कवि चर्चा, १९४८,
चन्द्रवली पाठे, सरस्वती मंदिर, जतनवर, काशी ।
६७. हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा, प्रथम संस्करण, अक्टूबर १९५६,
और महाकवि बिहारी । ड० डा० गण पति चन्द्रगुप्त,
विनोद पुस्तक मन्दिर, वागरा ।
६८. हिंद के मुसलमान कवि,
गंगाप्रसाद सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।
६९. हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेम काव्य, प्रथम संस्करण, नवम्बर १९५७,
गुरुदेव प्रसाद वर्मा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।
७०. हिन्दी में भ्रमर गीत काव्य और उसकी परम्परा, पहला संस्करण,
लैकलता श्रीवास्तव, भारत प्रकाशन मंदिर, जलीगढ़ ।
७१. हिन्दी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट १९३०,
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त प्रान्त ।
७२. हिन्दी साहित्य,
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अक्षरचंद रंढ सन्त, काश्मीरीगेट, दिल्ली ।
७३. हिन्दी साहित्य, १९५६,
श्याम सुन्दर दास, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०, प्रयाग ।
७४. हिन्दी साहित्य का बालौचनात्मक इतिहास, तीसरा संस्करण,
रामकुमार वर्मा, रामनारायण ठाठ, झांझाबाद ।
७५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, ग्यारहवां संस्करण,
वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

७६. हिन्दी साहित्य की भूमिका, कृष्ण संस्करण, जून १९५६,

डा० हजारि प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बंबई।

७७. हिन्दी साहित्यकोश, प्रथम संस्करण, २०१५,

सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, बनारस ज्ञान मंडल लिमिटेड, बनारस ।

संस्कृत पुस्तकें

७८. अग्निपुराण, प्रथम संस्करण,

मनसुखराय मोर , ५ कलाइय रो, कलकत्ता ।

७९. कर्लकार शैल, केशव मिश्र ।

८०. कर्लकार सर्वस्वम् , द्वितीय संस्करणम् ,

पांडुरंग जावाजी इत्यै, स्वीये निर्णयसागराख्यमुद्रणयंत्रालयं मुद्रितित्व,
प्रकाश्यं नीतमुन्मार्द ।

८१. अमिनव भारती जिल्द १,

अमिनव गुप्त, गायकबाड़ बौरियंटल रिजर्व इंस्टीट्यूट, बड़ौदा ।

८२. उपनिषद् वाक्य कोश भाग २, १९४१,

संपादक शास्त्री गजानन शंभुशास्त्र्य, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई ।

८३. उज्ज्वल नीलमणि, द्वितीय संस्करण, १९३२ ई०,

रूपगोस्वामी, सं० महामहोपाध्याय दुर्गाप्रसाद व बौर वासुदेवशरण शास्त्री
पेशीकर, पांडुरंग जावाजी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।

८४. कर्पूर मंजरी, १९५५ ,

राजशेखर कृत, सं० श्री रामकुमार वाचार्य, चौखंबा भवन, चौक बनारस ।

८५. काव्यादर्श, १९८८,

बनु० ब्रजरत्नदास, श्री कमलमणि ग्रंथमाला कार्यालय, बुलानाला, काशी ।

८६. काव्यालंकारसूत्र, १९५४ ई०,

वाचार्य वामन कृत, व्याख्याकार वाचार्य विश्वेश्वर, सं० डा० नगेन्द्र,
आत्माराम एंड संस, दिल्ली ।

८७. काव्य कल्प लता वृत्ति, सं० १९४२, काशी संस्करण ।

८८. काव्य प्रकाश, द्वितीय संस्करण, २०१७,

मम्मट, व्याख्याकार डा० उत्पल्लुत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।

८९. काव्यमीमांसा, तीवरा संस्करण, १९३४,

राजेश्वर, सी० डी० बलाल और पं० वार० २० शास्त्री, बोरियंटल
इंस्टीट्यूट, बड़ौदा ।

९०. कुवलयानन्द, १९५६ ई०,

व्याख्याकार डा० भीलाशंकर व्यक्त, चौखम्बा विद्या भवन, बनारस ।

९१. दश रूपक,

धनंजय, चौखम्बा प्रकाशन, काशी ।

९२. देवर्षि नारद भक्ति सूत्र, कृता संस्करण, २००६,

हनुमान प्रसाद पौदार, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

९३. नाट्यशास्त्र, १९५४,

भरतमुनी, संपादक एम० रामाकृष्ण कवि, बोरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा ।

९४. ब्रह्मूत्र का जणु भाष्य,

वाचार्य बल्लभ, बनारस संस्कृत सीरीज, ब्रजवासीदास एंड कम्पनी, बनारस ।

९५. भक्ति रसायन, १९५० ई०,

भगुसुदन सरस्वती, श्री शंकर शर्मा सांग वैद विद्यालय, काशी ।

९६. रस गंगाधर, पंचम संस्करण, १९३६,

जान्नाथ पंडित, सं० महामहोपाध्याय पं० दुर्गाप्रसाद, पांडुरंग जावाजी,
बम्बई,

९७. संस्कृत महाभारत, प्रथम संस्करण, सं० १९६१,

(हिन्दी अनुवाद सहित)

प्रकाशक महाभारत प्रकाशक मंडल, दिल्ली ।

९८. संस्कृत रामायण (हिन्दी अनुवाद सहित), सन् १९५६ ई०,

प्रकाशक पंडित पुस्तकालय काशी ।

९९. हरि भक्ति रसामृत विष्णु, श्री रूपगोस्वामी, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी ।

उर्दू फ़ारसी पुस्तकें

१००. अलतकशुफ़ वन मौहिम्मातुल्लाह्युफ़ जुलाई १९६०,
हकीमुलउम्मत मौलाना अशरफ़ अली धानवी पैता बख़्शार, सज्जाद
पब्लिशर्स, हुसैन मंजिल, लाहौर ।
१०१. उर्दू मक़्तमाल, १९३४
तुलसीराम, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।
१०२. गुलहाय परेशां, ३० मार्च १९५७,
संपादक इलियास अहमद, कुतबा मुहम्मद समीउल्लाह मुकीम, अलाहाबाद ।
१०३. तज़क़रार ग़ीतिया, १९४६,
सुलतान बुक़दिसी, हैदराबाद, दक्कन ।
१०४. नूरुल्लुगात (उर्दू शब्दकोश), प्रथम संस्करण १९२४,
उ० नूरुल हसन नैयर, नैयर प्रेस पाटानाला, लखनऊ ।
१०५. नफ़्हाते अमीरी शरह दीवाने नज़ीरी, १९४५,
अज़ महबूब अलाही, दिल्ली ।
१०६. मन्तवी मज़ानवी प्रथम भाग, १९२५, बार० निकलसन, लीडिन ।
१०७. मीर नम्बर, नवम्बर १९६२,
दिल्ली कालेज मैगज़ीन (उर्दू) स्वनिंग कलासेज, कौलनूर प्रेस लालकुवां, दिल्ली ।
१०८. वाक़ैयात दारुललुमुमत देहली, १९१६ ई०,
वशीर उद्दीन अहमद देहलवी, शमासी मशीन प्रेस ।
१०९. हिन्दी के मुसलमान शौरा, प्रथम संस्करण १९२६ ई०,
मक़तब ए जाफ़िया, उर्दू बाजार दिल्ली ।
११०. हिन्दी के मुसलमान शौरा, अमीर हसन नूरानी ।

अंग्रेज़ी पुस्तकें

१११. ए हिस्ट्री आफ़ हिन्दी लिटरेचर, दूसरा संस्करण १९३३,
एफ० ई० कै०, वाई० एम० सी० ए० पब्लिशिंग हाउस, ५, रसल स्ट्रीट,
कलकत्ता ।
११२. पर्सियन इन्फ़्लुएंस आन हिन्दी, १९६०, डा० हरदेव बाहरी, भारती प्रेस

पब्लिकेशन, लाहाबाद ।

पत्रिकाएं

१. कल्याण संतवाणी कंक, जनवरी १९५५, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
२. कल्याण - वर्ष १२ संख्या १, भावण १९६४
वर्ष २६ संख्या १, सौर माघ २००८, जनवरी १९५२
संतवाणी कंक, जनवरी १९५५, गीता प्रेस गोरखपुर ।
३. गंगा मासिक पत्रिका, गंगा कार्यालय, बुल्लानगंज, भागलपुर ।
४. नागरी प्रचारिणी सौज रिपोर्ट - चौदहवां त्रैमासिक विवरण,
सौलहवां त्रैमासिक विवरण,
सत्रहवां त्रैमासिक विवरण ।
५. नयादीर (उर्दू) , लखनऊ ।
६. ब्रज भारती, मथुरा ।
७. लक्ष्मी, मई १९०६ ।
८. वीणा, हन्दीर, अक्टूबर १९५७
जून १९५०
सितम्बर १९४८ ।
९. विशाल भारत, कलकत्ता ।
१०. सरस्वती, जुलाई १९२७, प्रयाग ।
११. साहित्य वदेश - ११ जुलाई १९४८-५०
बागरा सितम्बर १९४५
दिसम्बर १९४८
१२. स्वतंत्र भारत पत्रिका , लखनऊ, हौली विशेषांक ।

हस्तलिखित पुस्तकें

१. दो जी बावन वैष्णवन की वार्ता,
हस्तलिखित याज्ञिकगृह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

१. बुजान रसखान,

हस्तलिखित ज्ञान्नाथदास रत्नाकर संग्रह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

२. बुजान रसखान,

हस्तलिखित व्योम्यासिंह उपाध्याय हरिजीय, हरिजीय संग्रह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

३. हिन्दी कृष्ण काव्य धारा में मुसलमान कवियों का योगदान (अप्रकाशित),

डॉ० हरिसिंह नलवा, पी० एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, बलीगढ ।

५. सर्वे आज़ाद (अप्रकाशित) (मजासिरुल किराम) प्रथम संस्करण

मीर गुलाम अली आज़ाद -----

सम्पादक:- अबदुर्रज़ाक व अबदुल्लाहिक एवं शैख़ शाह मुहम्मद ।

कुतुबख़ाना आसिफ़िया हैदराबाद दक्कन १६१३

१. ब्रजभाषा साहित्य नायिका मेघ

द्वितीय संस्करण

प्रमुदयाल मिश्र, अग्रवाल प्रेस कथुरा ।

२. आनंद योग

ब्रजमोहन लाल

३. तारीख़े बिलग्राम

सफ़ीर बिलग्रामी । मृतबा नूरुल अनवार आरह जि० शाहजादाद बिहार ।

४. हस्तलाहाते सूफ़िया

डॉ० अबदुल समद । प्राप्त स्थान:- दिल्ली कालेज दिल्ली-६

५.
